

जैनग्रन्थरत्नाकरस्य—

ॐ

श्रीवीतरागायनम् । ६

स्वर्गीय कविवर बनारसीदासजीरचित

बनारसीविलास

आर

कविवर बनारसीदासजीका मनोहर

जीवनचरित्र ।

देवरीनिवासी नाथूराम प्रेमीद्वारा

सम्पादित ।

जिसको

जैनग्रन्थरत्नाकरकार्यालयके स्वामीने

मुम्बयीके

निर्णयसागर प्रेसमें मुद्रित कराके

प्रकाशित किया ।

श्रीवीरनिर्वाण संवत् २४३२.

प्रथम बार १००० प्रति.]

[मूल्य १॥) ६० मात्र ।

इस प्रश्न और जयनवातवर्गी आवंट २५ मन् १८६४ के
अनुसार गैरिष्टी होगई है, प्रकाशककी आज्ञा बिना
किसेभी भी छापनेका अधिकार नहीं है ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

उत्थानिका ।

कवितायै नमस्तस्यै यद्रसोल्लासिताशयाः ।

कुर्वन्ति कवयः कीर्तिलतां लोकान्तसंश्रयाम् ॥

भाषासाहित्यके आज तक जितने ग्रन्थ प्रकाश हुए हैं, उनका अधिकांश केवल शृंगाररससे ओतपोत मरा हुआ है । और नायकामन्दके ग्रन्थोंकी तो गिनती करना भी कठिन है । इन ग्रन्थोंमें विरही और विरहिणियोंका राना कुलटाओंके कटाइोंकी नोक झोंक, अभिसारिकाओंके संकेतस्थान, विदग्धाओंकी वाक्-क्रियाचातुरी और संयोगियोंकी “ लपटाने दोऊ पटताने परे ” की कथाओंका ही पिष्टपेषण देखा जाता है । राष्ट्रकी उन्नति होनेमें साहित्य एक प्रधान कारण माना गया है, परन्तु हम नहीं कह सकते कि, ऐसे साहित्यसे राष्ट्रको क्षतिके अतिरिक्त क्या लाभ होता होगा । भाषासाहित्यमें गोस्वामी तुलसीदासजी, वाघा सूरदासजी, सुन्दरदासजी, भूषणजी आदि चार छद् श्रेष्ठ कवियोंके ग्रन्थ यदि प्रकाशित नहीं हुए होते तो कहना पड़ता कि, भाषाके कवि शृंगारके अतिरिक्त इतर विषयोंमें कंठे थे, अर्थात् शांत-करुणादि रसोंकी कविता करना एक प्रकारसे जानते ही नहीं थे । आजकलके अधिकांश कवियोंकी भी यही दशा है । उनकी

१ “उस कविता देवीको नमस्कार है, जिनके अनुरागमें बद्धित होकर कविगण स्वर्गादि फलोंकी देनेवाली कीर्तिलताओं लोकरे अन्तका आश्रय करनेवाली अर्थात् त्रैलोक्यव्यापिनी करते हैं । (यग-स्तिलकचम्पुमहाकाव्ये ।)

वाग्देवी द्वियोंके नम्रशिख, तथा छल कपटोंकी प्रशंसामें ही उलझी रहती है। अधिक हुआ तो साधारणसिक्केकी शक्तिमें दाँड़ती है, परन्तु इस भक्तिके व्याजसे यथार्थमें अपनी विषयवासना ही पुष्ट की जाती है और भक्तिका यथार्थ तत्त्व समझनेमें उनकी बुद्धि कुंठित रहती है। हम यह नहीं कहते कि, शृंगाररसमें कविता करनी ही न चाहिये, नहीं! शृंगारके बिना साहित्य फीका रहता है, इस लिये शृंगार एक आवश्यक रस है; परन्तु प्रत्येक विषयके परिमाणकी सीमा होती है। सीमाका उलंघन करना ही दोषास्पद होता है। सारांश यह है कि, अब शृंगाररस बहुत हो चुका; कविवजनोंको अन्य विषयोंकी ओर भी ध्यान देना चाहिये। परमार्थदृष्टिसे शान्त और करुणा ये दो रस परमोत्तम हैं, और इन्हीं रसोंसे परिपूर्ण ग्रन्थ भाषा (हिन्दी) साहित्यमें बहुत थोड़े दिखाई देते हैं। इन रसोंसे कविका आत्मा सुख और शान्ति दोनों प्राप्त कर सकता है।

साहित्य और धर्मसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस लिये प्रत्येक भाषा-साहित्यके धर्मोंकी अपेक्षा अनेक भेद हो सक्ते हैं। जिस कविका जो धर्म होगा, उसकी कविता उसी धर्मके साहित्यमें गिनी जावेगी। परन्तु ग्रन्थोंके पर्यालोचनसे जाना जाता है, कि प्राचीन समयके विद्वानोंमें धर्मोंकी अनेकता होनेपर भी साहित्यकी अनेकता नहीं थी। उस समयका धर्मभेद विनोदरूप था, द्वेषरूप नहीं था; इस लिये प्रत्येक विद्वान् यावद्धर्मोंके ग्रन्थोंका परिशीलन निष्पक्षदृष्टिसे करता था। कविगण धर्मभेदके कारण किसी काव्यका आस्वादन करना नहीं छोड़ देते थे, बल्कि आस्वादन करके यथासमय उनकी प्रशंसा करते थे। वे जानते थे कि, सा-

हित्य कविके धर्मके अनुकूल विषय प्रतिपादन करता है, परन्तु किसीसे यह नहीं कहता कि, तुम्हें हमारा धर्म अंगीकार करना-ही पड़ेगा। महाकवि बाणभट्टने कहा है—

पदघन्योज्ज्वलो हारी कृतवर्णकमस्त्रिधितिः ।

भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते ॥

इसमें जिस महाकविके गद्यबन्ध अन्यको काव्योंका राजा बतलाया है, वे भट्टार हरिचन्द्र जैन थे। जल्दहणकी सूक्तिसुक्तावलीमें महाकवि श्रीधनंजयकी प्रशंसामें कहा है—

द्विसन्धाने निपुणतां स तां चक्रे धनंजयः ।

यथा जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनं जयः ॥

द्विसंधानमहाकाव्यके प्रणेता परम जैन धनंजयका नाम किसीने न सुना होगा? ध्वन्यालोकके कर्ता आनन्दवर्धन और हरचरित महाकाव्यके कर्ता रत्नाकरने भी धनंजय की स्तुति की है। इसी प्रकार महाकवि बाणभट्ट जो जैन थे, उन्होंने कालिदासकी प्रशंसामें कहा है—

नव्यनव्यकमासाद्यानुक्षणं यस्व सूक्तयः ।

प्रभवन्ति प्रमोदाय कालिदासः स सत्कविः ॥

परमभट्टारक श्रीसोमदेवसूरिने यशस्तिलकचम्पूके दूसरे आश्वासमें “सुकविकान्यकथाविनोददोहनमाद्य” पद देके भाव महाकविकी प्रशंसा की है।

इत्यादि और भी अनेक उदाहरणोंसे जाना जाता है कि, प्राचीनकालमें एक दूसरेके ग्रन्थोंके पठनपाठनकी पद्धति बहुततासे थी। परन्तु अब वह समय बहुत पीछे पड़ गया है,

आनकडका समय उसके ठीक प्रतिफल है । विद्यार्थी नूतनता से लगे लगे द्वेषबुद्धि बहुत बढ़ गई है, इस क्रिये से एक दूसरे के ग्रन्थों का पठन पाठन तो बुरा रहे, दूसरे के ग्रन्थों की निन्दा करना और उसके प्रचार में बाधक बनना ही ज़रूरी धर्म समझते हैं ।

यदि धर्म की बोझा यहाँ के संस्कृतसाहित्य के भेद क्रिये जाये तो मुख्यतः वैदिक, जैन, और बौद्ध ये तीन हो सकते हैं । परन्तु नाना (हिन्दी) साहित्य के वैदिक और जैन बहुत दूर ही हो नक़्क़े । क्योंकि—जिस समय भाषासाहित्य का प्रारम्भ हुआ था, उस समय भारत में बौद्धधर्म का प्रादुर्भाव ही हुआ था, और यदि वहाँ थोड़ा बहुत ज़ा भी हो तो उसकी भाषा हिन्दी नहीं थी । संस्कृतसाहित्य को छोड़ कर हम यहाँ भाषासाहित्य के सम्बन्ध में ही कुछ कहेंगे—

काशी, आगरा आदिकी नागरीप्रचारिणीसभायें भाषासाहित्य के ग्रन्थों का प्रकाशन, आलोचन परिचायनादि करती हैं, और उनका उद्देश्य भी यही है । इन सभाओं के द्वारा भाषासाहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुँचा है, परन्तु चेद है कि, इनमें भी धर्म के प्रचार तथा ध्वंसन नहीं हो सका है और साहित्यसभाओं में हिन्दी गुणता और उदात्तव्यवस्था होनी चाहिये, इनमें नहीं है । इस बातकी पुष्टिक्रिये इतना ही प्रमाण बहुत है कि, आज तक इन सभाओं में विद्वाने ग्रन्थों का प्रकाशन—आलोचन हुआ है, उनमें जैनसाहित्य का एक भी ग्रन्थ नहीं है । जहाँ तक हमको विदित है, इन सभाओं का कोई ऐसा नियम नहीं है कि, वैदिकसाहित्य के अतिरिक्त अन्यसाहित्य का प्रकाशन आलोचन किया जावेगा, परन्तु वैदिकधर्म के अनुयायी सज्जनों का सच्चा उक्त सभाओं में

अधिक हैं, इस कारण उनकी मनस्तुष्टिकेलिये ही ऐसा किया जाता है। और इसलिये हम कह सकते हैं कि, उक्त समाजें भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये नहीं, किंतु एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नतिकेलिये स्थापित हैं। अब तक वाणभट्ट और वाग्भट्ट सरीखे उदार हृदयवाले उक्त समाजोंके सम्य नहीं होंगे, तब तक साहित्यकी यथार्थ सेवा करनेके उद्देशका पाठन कदापि नहीं हो सक्ता।

उक्त समाजोंके अतिरिक्त हिन्दीभाषाके साप्ताहिक मासिक-पत्र भी भाषासाहित्यकी उन्नति करनेवाले गिने जाते हैं। परन्तु उनमें जितने प्रतिष्ठ पत्र हैं, वे किसी एक धर्मके कट्टर अनुयायी और दूसरोंके विरोधी हैं; अतएव उनके द्वारा भी एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है, सामान्य भाषासाहित्यकी नहीं। यह ठीक है, कि प्रत्येक धर्मके साहित्यकी उन्नति उसी धर्मके अनुयायियोंको करना चाहिये, और वे ही इसके यथार्थ उत्तरदाता हैं। परन्तु जिन पत्रोंकी सृष्टि सर्वसामान्य राष्ट्रकी उन्नतिकेलिये है, और जो निरन्तर सबको एकदृष्टिसे देखनेकी डींग मारा करते हैं, उनके द्वारा किसी एक समूहकी उन्नतिमें सहायता मिलनेके बदले क्षति पहुंचना क्या कलककी बात नहीं है? मूर्खताके कारण जैनियोंका एक बड़ा समूह ग्रन्थोंके मुद्रित करानेका विरोधी है, इसलिये जैनग्रन्थ प्रथम तो छपते ही नहीं, और यदि कोई जैनी साहस करके किमी तरह छपाता भी है, तो उसका यथार्थ प्रचार नहीं होता। समाचार पत्रोंकी समालोचना ग्रन्थप्रचारणमें एक विशेष कारण है, परन्तु जैनग्रन्थ समालोचनासे सर्वथा वंचित रहते हैं। क्योंकि जैनियोंके जो एक दो पत्र हैं, उनमें तो विरोधियोंके मयसे मुद्रित

ग्रन्थोंकी बात ही नहीं की जाती, और हिन्दीके सामान्य पत्रोंमें जो समालोचना होती है, वह प्रचार होनेमें बाधा देनेके अभि-
प्रायसे होती है। “छपाई सफाई उत्तम है, मूल्य इतना है, ग्रन्थ
जैनियोंके कामका है।” जैनग्रन्थोंकी समालोचना इतनेमें ही पत्र-
सम्पादकगण समाप्त कर देते हैं। और यदि विशेष कृपा की,
तो दो चार दोष दिखला दिये ! दोष कैसे दिखलाये जाते हैं,
उनका नमूना भी लीजिये। एक महानुभाव सम्पादकने दौलत-
विलासकी आलोचनामें कहा था “बड़ी नीरस कविता है !”
परन्तु यथार्थमें देखा जावे तो दौलतविलासकी कविताको नीरस
कहना कविताका अनादर करना है। हमारे पढ़ासी एक दूसरे
सम्पादकशिरोमणिने स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षाके भाषा टीकाकार
जयचन्द्रजीके साथ स्वर्गीय, शब्द लगा देखकर एक अपूर्व तर्क
की थी, कि “जैनियोंमें स्वर्ग तो मानते ही नहीं हैं, इन्हें स्वर्गीय
क्यों लिखा ” धन्य ! धन्य !! त्रिवार धन्य !!! पाठकगण जान
सक्ते हैं, कि सम्पादक महाशय जैनियोंके कैसे शुभेच्छुक हैं. और
जैनधर्मसे कितने परिचित हैं। जिस ग्रन्थकी समालोचनामें यह तर्क
किया गया है, यदि उसीके दो चार पत्रे उलट करके आलोचक
महाशय देखते, तो स्वर्ग है कि नहीं विदित हो जाता। पूर्ण
ग्रन्थमें १०० स्थानोंसे भी अधिक इस स्वर्ग शब्दका व्यवहार हुआ
होगा। परन्तु देखे कौन ? जैवी नास्तिक कैसे बने ? लोग उनसे
घृणा कैसे करें ? सारांश यह है कि, हृदयकी संकीर्णतासे आलो-
चकगण कैसी ही उत्तम पुस्तक क्यों न हो, उसमें एक दो
लान्छन लगाके समालोचनाकी इतिश्री कर देते हैं, जिससे पुस्तक-
प्रचारमें बड़ा भारी आघात पहुंचता है। और सामान्य भाषासा-

हित्यकी उन्नति न होकर एक विशेष भाषासाहित्यकी उन्नति होती है ।

भारतवर्षमें वैदिक धर्मानुयायियोंके मिलानमें जैनियोंकी संख्या शतांश भी नहीं है, और जबसे भाषासाहित्यका प्रचार हुआ है, तबसे प्रायः यही दशा रही है । राज्यसत्ता न रहनेसे इन ४००-५०० वर्षोंमें जैनियोंकी किसी विषयमें यथार्थ उन्नति भी नहीं हुई है, परन्तु आश्चर्य है कि, इस दशामें भी जैनियोंका भाषासाहित्य वैदिक भाषासाहित्यसे न्यून नहीं है । समयके फेरसे जैनियोंके संस्कृतसाहित्यके अस्तित्वमें भी लोगोंको शंकाये होने लगी थी, परन्तु जब काव्यमालाने जन्म लिया, डा० भांडारकर और पिटर्सनकी रिपोर्टें जैनियोंके सहस्रावधि ग्रन्थोंके नाम लेकर प्रकाशित हुईं बंगाल एशियाटिक सुसाइटीने जैनग्रन्थोंका छापना प्रारंभ किया; और जब विद्वानोंके हाथोंमें यशस्तिलकचम्पू, धर्मशर्माभ्युदय, नेमिनिर्वाण, गद्यचिंतामणि, काव्यानुशासन आदि काव्यग्रन्थ, शाकटायन कातंत्रप्रभृतिव्याकरण, सप्तभंगीतरंगिणी, स्वाद्धादमंजरी, प्रमेयपरीक्षादि न्यायग्रन्थ मुद्रित होकर मुद्रोभित हुए; तब धीरे २ उनकी ये शंकाये दूर हो गई । इसी प्रकार वर्तमानमें भाषासाहित्यके ज्ञाता जैनियोंके भाषासाहित्यसे अनभिज्ञ हैं परन्तु उस अनभिज्ञताके दूर होनेका भी अब समय आ रहा है । हमलोग इस विषयमें यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे हैं ।

प्रत्येक भाषाके साहित्यके गद्य और पद्य दो भेद हैं, इनमेंसे वैदिक साहित्यमें जिस प्रकार पद्यग्रन्थोंकी बहुलता है, उसी प्रकार जैनसाहित्यमें गद्यग्रन्थोंकी बहुलता है । भाषासाहित्यके विषयमें कमी २ यह निर्देश किया जाता है कि, भाषाकवियोंमें गद्यलिखने-

की ग्रथा नहीं थी। हम समझते हैं, यह दोष जनसाहित्यपर सर्वथा नहीं लगाया जावेगा, गद्यके सैकड़ों ग्रन्थ जैनियोंके पुस्तकालयोंमें अब भी प्राप्य हैं। पद्यग्रन्थोंकी भी त्रुटि नहीं है, परन्तु उनमें नायकाओंका आमोद प्रमोद नहीं है। केवल तत्त्वविचार और आध्यात्मिकरस की पूर्णताका उज्ज्वलप्रवाह है। संभव है कि, इस कारण आधुनिक कविगण उन्हें नीरस कहके समालोचना कर डालें परन्तु जानना चाहिये कि, शृङ्गाररस को ही रससंज्ञा नहीं है।

जिस समय भाषाग्रन्थोंकी रचनाका प्रारंभ हुआ है, उस समय जैनियोंके विलासके दिन नहीं थे। वे बड़ी २ आपदायें झेलकर बड़ी कठिनतासे अपने धर्मको जर्जरित अवस्थामें रक्षित रख सके थे। कहीं हमारे अलौकिक-तत्त्वज्ञानका संसारमें अभाव न हो जावे, यह चिन्ता उन्हें अहोरात्र लगी रहती थी, अतएव उनके विद्वानोंका चित्त विलास-पूर्ण-ग्रन्थोंके रचनेका नहीं हुआ और वे नायकाओंके विभ्रमविलासोंको छोड़कर धर्मतत्त्वोंको भाषामें लिखनेकेलिये तत्पर हो गये। धर्मतत्त्वोंको देशभाषामें लिखने की आवश्यकता पढ़नेका कारण यह है कि, उस समय अविद्याका अंधकार बढ़ रहा था और गीर्वाणवाणी नितान्त सरल न होनेसे लोग उसे भूलने लगे थे, अथवा उसके पढ़नेका कोई परिश्रम नहीं करता था। ऐसी दशामें यदि धर्मतत्त्वोंका निरूपण देशभाषामें न होता, तो लोग धर्मशून्य हो जाते। एक और भी कारण है वह यह कि, हमारे आचार्योंका निरन्तर यह सिद्धान्त रहा है कि, देश काल भावके अनुकूल प्रवृत्ति करनी चाहिये, इसलिये देशमें जिस समय जिस भाषाका प्राधान्य तथा प्राबल्य रहा है, उस समय उन्होंने उसी भाषामें ग्रन्थोंकी रचना करके समयसूचकता व्यक्त की है।

प्राकृत, मागधी, शौरसेनी आदि भाषाओंके धर्मग्रन्थ इनके साक्षी हैं। देशभाषाओंमें ग्रन्थरचनेका प्रारंभ हमारे आचार्योंके द्वारा ही हुआ है, यदि ऐसा कहा जावे तो कुछ अत्युक्तिकर न होगा। कर्णाटक भाषाका सबसे प्रथम व्याकरण परममहाराज श्रीमद्भट्टाकलंकदेवने गीर्वाण भाषामें बनाया है, ऐसा पाश्चात्य-पंडितोंका भी मत है। मागधीके अधिकांश व्याकरण जैनियोंके ही हैं। भाषाग्रन्थोंके बनजानेसे लोगोंकी अभिरुचि फिर बढ़ने लगी और उनके स्वाध्यायसे समाजमें पुनः ज्ञानकी वृद्धि होने लगी।

अभी तक यह भलीभांति निश्चय नहीं हुआ है कि, भाषाकाव्यका प्रचार कबसे हुआ। ज्यों ज्यों शोध होती जाती है, त्यों त्यों भाषाकी प्राचीनता विदित होती जाती है। कहते हैं कि, संवत् ७७० में अवंतीपुरीके राजा भोजके पिताने पुण्यकवि बन्दीजन-को संस्कृतसाहित्य पढ़ाया और फिर पुण्यकविने संस्कृत अलंकारोंकी भाषा दोहोंमें रचना की, तबहीसे भाषाकाव्यकी जड़ पड़ी। इसके पश्चात् नैवमी, ग्यारहवीं, बारहवीं, और तेरहवीं श-

१ चित्तोरगढ़के महाराज खुमानसिंह सीमादियाने संवत् ९००में खुमानरायसा नामक ग्रन्थकी नानाछन्दोंमें रचना की।

२ संवत् ११२४ से चन्द्रकवीश्वरने पृथ्वीराजरायसा बनाना प्रारंभ किया और ६९ खंडोंमें एकलक्ष श्लोक प्रमाण ग्रन्थ संवत् ११२० से ११४९ तक पृथ्वीराजका चरित्र वर्णन किया।

३ संवत् १२२० में कुमारपालचरित्र नामका एक ग्रन्थ महाराज कुमारपालके चरित्रका बनाया गया। कहते हैं कि, इसका बनानेवाला जैन था।

४ संवत् १३५७ में शारंगधरकविने हमीररायसा और हमीरकाव्य बनाया।

ताब्दीमें भाषाके चार पांच ग्रन्थ निर्मित हुए, परन्तु भाषाकाव्यकी यथार्थ उन्नति सोलहवीं शताब्दीमें कही जाती है । इस शताब्दीमें अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थोंकी रचना हुई है । अन्येषण करनेसे जाना जाता है कि, जैनियोंके भाषासाहित्यने भी इसी शताब्दीमें अच्छी उन्नति की है । पंडित रूपचन्द्रजी, पंडि हेमराजजी, बनारसीदासजी, भैया भगवतीदासजी, भूधरदासजी, दानतरायजी आदि श्रेष्ठ कवि भी इसी सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दीमें हुए हैं । इन दो शताब्दियोंके पश्चात् बहुतसे कवि हुए हैं और ग्रन्थोंकी रचना भी बहुत हुई है, परन्तु उक्त कवियोंके तुल्य न तो कोई कवि हुए और न कोई ग्रन्थ निर्मापित हुए । सब पूर्वकवियोंके अनुकरण करनेवाले हुए ऐसा इतिहासकारोंका मत है ।

हम इस विषयमें अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं कि, जैनियोंमें भाषासाहित्यकी नींव कबसे पड़ी और सबसे प्रथम कौन कवि हुआ । और न ऐसा कोई साधन ही दिखता है कि, जिससे आगे निश्चय कर सकेंगे । क्योंकि जैनियोंमें तो इस विषयके शोधनेवाले और आवश्यकता समझनेवाले बहुत कम निकलेंगे और अन्य-भाषासाहित्यके विद्वान् वैदिकसाहित्येतर साहित्यको साहित्य ही नहीं समझते । परन्तु यह निश्चय है कि, शोध होने पर जैनभाषासाहित्य किसी प्रकार निम्नश्रेणीका और पश्चात्पद न गिना जावेगा ।

जैनधर्मके पालनेवाले विशेषकर राजपूताना, युक्तप्रान्त, मध्य-प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटक प्रान्तमें रहते हैं । हिन्दी, गुजराती, मराठी, और कानडी ये चार भाषाएँ इन प्रान्तोंकी मुख्य भाषाएँ हैं । परन्तु इन चार भाषाओंमेंसे प्रायः हिन्दी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें जैनधर्मके संस्कृत प्राकृतग्रन्थोंका अर्थ

सरल और बोधप्रद लिखा गया है, अथवा उनके आधारने नवीन सरल-बोधप्रद ग्रन्थ लिखे गये हैं। कर्णाटकी भाषामें अनेक जैन-ग्रन्थ सुने जाते हैं, परन्तु वे सबको सुलभ नहीं हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक ग्रन्थके जैनीको अपने धर्मतत्त्वोंको जाननेकेलिये हिन्दीका ही आश्रय लेना पड़ता है। जैनियोंके आवश्यक पट्कर्ममें शास्त्रस्वाध्याय एक मुख्य कर्म है, इसलिये प्रत्येक जैनीको प्रतिदिन थोड़ा बहुत शास्त्रस्वाध्याय करना ही पड़ता है, जो हिन्दीमें ही होता है। इसप्रकार जैनसाहित्य और जैनियोंके द्वारा हिन्दी भाषाकी एक विलक्षणरीतिसे उन्नति होती है। जो जैनी धर्मतत्त्वोंका थोड़ा भी नर्मज होगा, चाहे वह किसी भी ग्रन्थका हो, हिन्दीका जाननेवाला अवश्य होगा। हिन्दी प्रचारकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि, जैनियोंके एक जैनमित्र नामक हिन्दी मासिकपत्रके एक हजार ग्राहक हैं, जिनमें ५०० उत्तर भारतके और शेष ५०० गुजरात, महाराष्ट्र और कर्णाटकके हैं। नागरीप्रचारिणी सभाओं और हिन्दी हितैषियोंको इस ओर ध्यान देना चाहिये। जिस जैनसाहित्यसे हिन्दीकी इस प्रकार उन्नति होती है, उसको अप्रकट रखने की चेष्टा करना, और उसके प्रचारमें यथोचित उत्साह और सहायता नहीं देना हिन्दी हितैषियोंको शोभा नहीं देता।

जैन-भाषा-साहित्य-भंडारको अनुपम रत्नोंसे सुसजित करनेवाले विद्वान् प्रायः आगरा और जयपुर इन दो स्थानोंमें हुए हैं। आगरा की भाषा बृजभाषा कहलाती है, और जयपुर की डूँडारी। वृजभाषाका परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हिन्दीकी पुरानी कविता प्रायः इसी भाषामें है, जो सबके पठन पाठनमें आती है। यह बनारसीविलास ग्रन्थ जो पाठकोंके हाथमें उपरिबत है, इसी

भाषामें है । वृजभाषाके पद्यसे लोग जितने परिचित हैं उतने गद्यसे नहीं हैं । वृजभाषाका गद्य जाननेकेलिये इस ग्रन्थकी आध्यात्मवचनिका और उपादाननिमित्तकी चिट्ठी पढ़नी चाहिये । हुंढारी भाषा जयपुर और उसके आसपास हुंढार देशकी भाषा है । इसमें और वृजभाषामें इतना ही अन्तर है कि, हुंढारीमें प्राकृतशब्दोंका जितना बाहुल्य रहता है, उतना वृजभाषामें नहीं रहता । और वृजभाषामें फारसी शब्दोंके अपभ्रंश अधिक व्यवहृत होते हैं । हुंढारी भाषाके गद्य ग्रन्थ बहुत सरल हैं, प्रत्येक ग्रन्थका थोड़ी सी भी हिंदी जाननेवाला उन्हें सहज ही समझ सकता है ।

जैनग्रन्थरत्नाकरमें जो स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा ग्रन्थ निकला है, उसकी टीका इसी भाषामें है, पाठकगण उसे मंगानेके हुंढारी भाषासे परिचित हो सके हैं ।

भाषागद्य लिखनेवाले जैनविद्वानोंमें पं० टोडरमलजी, पं० जयचन्द्ररायजी, पं० हेमराजजी, पांडे रूपचन्द्रजी, पं० भागचन्द्रजी और पद्यलिखनेवालोंमें पं० बनारसीदासजी, पं० धानतरायजी, पं० भूधरदासजी, पं० भगवतीदासजी, पं० वृन्दावनजी, पं० देवीदासजी, पं० दौलतरामजी, पं० बिहारीलालजी और सेवारामजी आदि कविवर उत्कृष्ट गिने जाते हैं । इनके बनाये हुए ग्रन्थोंके पढ़नेसे इनकी विद्वत्ता अच्छी तरह व्यक्त होती है । आश्चर्य है कि, इनमेंसे किसी भी कविने शृंगाररसका ग्रन्थ नहीं बनाया । सभीने आध्यात्म और तत्त्वोंका निरूपण करके अपना कालक्षेप किया है । पं० भूधरदासजीने कहा है,—

राग उदै जग अंध भयो, सहज सव लोगन लाज गमाई ।
सीखविना सव सीखत हैं, विषयानके सेवनकी सुचलाई ॥
तापर और रचैं रसकाव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई ।
अंध असूझनकी अँखियानमें, मेलत हैं रज राम दुहाई ! ॥

(भूवरशतक)

सच है ! जिन महात्माओंके ऐसे विचार थे, उन्हें आध्यात्मिक रचनाके अतिरिक्त केवल शृंगारकी रचना कुछ विशेष शोभा नहीं देती । परमार्थदृष्टिसे शान्तरसकी समता शृंगाररस नहीं कर सका । क्योंकि शान्तरसकी ऊर्ध्व गति है, शृंगारकी अधो ! परन्तु ऐसा कहनेसे यह नहीं समझना चाहिये कि, इनकी कविता नवरस-रहित और काव्यके किसी अंगसे हीन होवेगी, नहीं ! एक आध्यात्ममें ही नवरसघटित करके इन्होंने अपने ग्रन्थोंको नवरस-युक्त बनाये हैं । कविवर बनारसीदासजीने अपनी आत्मामें ही नवरस घटित किये हैं ! देखिये—

गुणविचार शृंगार, वीर उद्दिम उदार रुख ।

करुणा सम रसरीति, हास हिरद उछाह सुख ॥

अष्टकरम दलमलन, रुद्र वरतै तिहि थानक ।

तन विलेच्छ बीभत्स, द्वन्द्व दुखदशा भग्यानक ॥

अद्भुत अमंतवल चितवन, शान्त सहज धैराग ध्रुव ।

नवरस विलास परकाश तव, जव सुबोध ब्रट प्रगट हुच ॥

परब्रह्म आत्माका यह नवरसयुक्त अपूर्व धितवन विद्वानोंको अनूत-पूर्व आनन्दमय कर देता है । पाठकगण इसे एकबार अवश्य ही पाठ करें ।

भाषासाहित्यके विषयमें इतना ही कह कर अब यह उत्थानिका पूर्ण की जाती है । आशा है कि, यह जिस इच्छासे लिखी गयी है, पाठकोंके द्वारा वह किसी न किसी रूपमें फलवती होगी । पाठकोंके एक बार ध्यानसे पढ़लेनेमें ही हम अपनी इच्छाको फलवती समझ सके हैं । इत्यलम् विद्वद्वरेषु—

जीयाजैनमिदं मतं शमयितुं कूरानपीयं कृपा ।

भारत्या सह शीलयत्वविरतं श्रीः साहचर्यव्रतम् ॥

मात्सर्यं गुणिषु त्यजन्तु पिशुनाः संतोषलीलाञ्जुषः ।

सन्तः सन्तु भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कधीनां जनाः॥

चन्दावाडी—ग्रन्थ, }
१४—४—१९०५. }

विदुषां चरणसरोरुहसेवी—
नाथूरामप्रेमी,
देवरी (सागर) निवासी ।

कविवर वनारसीदासजी ।

मातृस्वामिस्वजनजनकभ्रातृभार्याजनया
दातुं शक्तास्तदिह न फलं सज्जना यद्वदन्ते ॥
काचित्तेषां वचनरचना येन सा ध्वस्तदोषा
यां शृण्वन्तः शमितकलुषा निर्वृत्तिं यान्ति सत्त्वाः ॥ ४६५
(सुभाषितरत्नसन्दोहे ।)

इस संसारमें सजनजन जो फल देते हैं, वह नाता, स्वामी, स्वजन, पिता, भ्राता, स्त्रीजनादि कोई भी देनेको समर्थ नहीं है। दोषोंको विध्वंस करनेवाली उनकी वचनरचनाको सुनकर जीवघारी शमित-कलुष (पापरहित) होकर निर्वृत्तिको प्राप्त करते हैं।

पाठकगण ! कविवर वनारसीदासजीकी शुभफलको देनेवाली संगति हमलोगोंको प्राप्य नहीं है। क्योंकि वे अब इस लोकमें नहीं हैं। किन्तु हमारे शुभकर्मके उदयसे उनकी निर्मल-वचन-रचना (कविता) अब भी अक्षरवती होकर विद्यमान है, जिससे सम्पूर्ण सांसारिक कलुष (पाप) क्षय हो सके हैं। उन अक्षरोंसे कविवरकी कीर्तिकौमुदी कैसी प्रस्फुटित हो रही है! वह उज्ज्वल चाँदनी आत्माका अनुभवन करनेवाले पुरुषोंके हृदयमें एक अलौकिक शीतलताका प्रवेश करती है, जिससे उन्हें संसारकी मोहज्वाला उत्तापित नहीं करती।

जिस महाभाग्यकी वचनरचना ऐसी निर्मल और सुन्दर है, उसकी जीवनकथा जाननेकी किसकी इच्छा न होगी? और वह जीवनकथा कितनी सुंदर और रुचिकर न होगी? और उसके मं-ग्रह करनेकी कितनी आवश्यकता नहीं है? ऐसा सोच कर हमने

नारसीदासजीकी जीवनकथाका शोध करना प्रारंभ किया । जिस समय नारसीदासके मुद्रित करानेका विचार हुआ है, उसके बहुत पहिले हम इस विषयके प्रयत्नमें थे । हर्षका विषय है कि हमारा थोडासा परिश्रम एक बड़े फलरूपमें फलित हो गया है । अर्थात् स्वयं कविवर नारसीदासजीके हाथका लिखा हुआ ५५ वर्षका जीवनचरित्र प्राप्त हुआ है । इस जीवनचरित्रका नाम उन्होंने अर्द्ध-कथानक रक्खा है, और ५५ वर्षके पश्चात् शेषजीवन-कथानक लिखनेकी प्रतिज्ञा की है । परन्तु बहुत शोध करने पर भी उनके शेषजीवनके वृत्तसं हम अनभिज्ञ रहे । अर्द्धकथानक में जो कुछ लिखा है, उसको हम गद्यप्रेमी पाठकोंकी प्रसन्नताकेलिये अपनी आलोचनासहित यहां प्रकाश किये देते हैं । अर्द्धकथानक पद्य-बन्ध है । इस चरित्रमें उसके अनेक सुन्दर पद्य भी यथावसर दिये जावेंगे ।

पाश्चात्य पंडितोंका यह एक बड़ा भारी आक्षेप है कि, भारतके विद्वान् जीवनचरित्र अथवा इतिहास लिखना नहीं जानते थे । परन्तु आजसे ३०० वर्ष पहिले जब पाश्चात्यसभ्यताका नाम निशान नहीं था, भारतका एक शिरोमणि कवि अपने जीवनके ५५ वर्षका वृत्तान्त लिखकरके रखगया है, इतिहासमें यह एक आश्चर्यकारी घटना है । हम निर्भय होकर कह सके हैं कि, कविशिरोमणि नारसीदासजी एक ही कवि थे, जिन्होंने अपने जीवनकी सच्ची घटनायें लिखकर अच्छे स्पष्ट शब्दोंमें गुणदोषोंकी आलोचना की है । दोषोंकी आलोचना करना साधारण पुरुषोंका कार्य नहीं है ।

भाषासाहित्यमें अनेक संस्कृत तथा भाषा कवियोंके जीवनचरित्र लिखे गये हैं, परन्तु उनमें तथ्य बहुत थोड़ा है । क्योंकि किंवद-

नित्योक्ति आधारसे उनमें अनेक असंभव घटनाओंका समावेश किया गया है, जिनपर एकाएक विश्वास नहीं किया जा सका । ऐसी दशामें चरित्रसे जो लोकोपकार होना चाहिये, वह नहीं होना । क्योंकि चरित्रका अर्थ चारित्र्य अथवा आचरण है, और आचरणोंमें अन्तर्वास दोनोंका समावेश होना चाहिये । जिनचरित्रोंमें यह बात नहीं है, वे पूर्ण चरित्र नहीं हैं । कविवर बनारसीदासजीके जीवनचरित्रसे मायासाहित्यकी इन एक बड़ी भारी त्रुटिकी पूर्ति होनी । क्योंकि अन्तर्वास चरित्रोंका इसमें अच्छा चित्र मीचा गया है ।

प्रारंभ ।

पानि—जुगलपुट शीस धरि, मान अपनपो दास ।

आनि भगत चित्त जानि प्रभु, यन्हीं पांस मुपोस ॥ १ ॥

यह मंगलाचरण अर्धकथानकका है । कविवर पार्श्वनाथ और मुपार्श्वनाथके विशेष भक्त थे, इनलिये कवितामें यत्र तत्र उक्त जिनेन्द्रद्वय की ही स्तुति की है । आपका जन्मनाम विक्रमार्जात था, परन्तु आपके पिता जब पार्श्वनाथमुपार्श्वनाथकी जन्मनूमि बनारस (काशी) की यात्राको गये थे, तब भक्तिवश बनारसी-दास नाम रखदिया था, इसका विशेष विवरण आगे दिया गया है । बनारसीदासजी को भी अपने नानक के कारण बनारस और उक्त जिनेन्द्रद्वयके चरणोंमें विशेषातुराग हो गया था । बनारसी-नगरी की व्युत्पत्ति देखिये आपने कैसी सुन्दर की है—

१ पार्श्व । २ मुपार्श्व ।

कवित्त ।

गंगा माहिं आय धँसी, द्वै नदी चरुना असी
बीच वसी वानारसी नगरी बखानी है ।

काशिवाग्देश मध्य गांव तातें काशी नांव,
श्रीसुपास-पासकी जनमभूमि मानी है ॥

तहां दोऊ जिन शिवमारग प्रकट कीन्हों,
तवसेती शिवपुरी जगतमें जानी है ।

ऐसीविधि नाम भये नगरी बनारसीके,
और भांति कहैं सो तो मिथ्यामतवानी है ॥१॥

और भी अर्धकथानक की भूमिका बांधते हुए कहा है:-

जिन पहिरी जिन जनमपुरि, नाम मुद्रिकाछाप ।

सो बनारसी निज कथा; कहै आपसों आप ॥ ३ ॥

भगवान् पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथकी स्तुति नाटकसमयसारक
प्रारंभमें कैसी अच्छी की है—

(सर्व ह्रस्वाक्षर) मनहरण ।

करमभरमजगतिमिरहरनखग,

उरगलखनपग शिवमगदरसि ।

निरखत नयन भविक जल वरपत,

हरपत अमित भविकजन सरसि ।

मदनकदनजित परमधरमहित,

सुमिरत भगत भगत सब डरसि ।

सजलजलदतन मुकुट सपत फन,

कमठदलनजिन नमत चनरसि ॥ २ ॥

(सर्वं ब्रह्मकारान्त) पदपद ।

सकलकरमखलदलन, कर्मठशठपवनकनकनग ।

धवलपरमपदरमन, जगतजनअमलकमलखग ॥

परमतजलधरपवन, सजलधनसमतन समकर ।

परअघरजहरजलद, सकलजननत भवभयहर ॥

यमदलन नरकपदछयकरन, अगमअतदभवजलतरन ।

वर सवलमदनवनहरदहन, जय जय परमअभयकरन ॥ ३ ॥

मनहरण ।

जिनके वचन उर धारत जुगलनाग,

भये धरणेंद्र पदमाचति पलकमें ।

जाकी नाम महिमा सो कुचातु कनक करे,

पारस पापान नामी भयो है जलकमें ॥

जिनकी जनमपुरी नामके प्रभाव हम,

थापुनो स्वरूप लख्यो भानुसो मलकमें ।

तेई प्रभु पारस महारसके दाता अब,

दीजे मोहि साता दगलीलाकी ललकमें ॥

रक्त तीन छन्द विशेष मनोहर और युक्ति पूर्ण हैं, इसलिये हम-
को दृष्टात् उद्धृत करना पड़े है । चरित्रसन्ध्यामें इनसे केवल इतना
ही सारांश लेना है कि, कविवर पार्श्वमुपार्श्वनाथको दृष्ट मानते थे ।

१ मूलं कमठ ह्यपी वायुको अवल मुनेरकं समान ।

पूर्व वंशधरोंकी कथा ।

मध्यभारतमें रोहतकपुर नामक एक नगर है । उसके निकट विहोली नामका एक ग्राम है । विहोलीमें राजपूतोंकी बस्ती है । वहां कारणवश एक समय किसी जैनमुनिका शुभागमन हुआ । मुनिराजके विद्वत्तापूर्ण उपदेशों और लोकोत्तर आचरणोंसे सुगंध होकर ग्रामवासी सम्पूर्ण राजपूत जैनी हो गये, और—

पहिरी माला मंत्रकी, पायो कुल श्रीमाल ।

थाप्यो गोत विहोलिआ, वीहोली-रखपाल ॥

अर्थात् नवकारमंत्रकी माला पहिनके श्रीमालकुलकी स्थापना की और विहोलिया गोत्र रक्खा । वीहोलिया कुलने खूब वृद्धि पाई और दूर २ तक फैल गया । इस कुलमें परंपरागत बहुतकालके पश्चात् गंगाधर और गोसल नामके दो पुरुष हुए । गंगाधरके वस्तुपाल, वस्तुपालके जेठमल, जेठमलके जिनदास और जिनदासके मूलदास उत्पन्न हुए । मूलदासजी हिन्दी फारसीके ज्ञाता थे । यथा,—

मूलदास जिनदासके, भयो पुत्र परधान ।

पढ्यो हिन्दुंगी फारसी, भागवान बलवान ॥

मूलदासजी की वणिक् वृत्ति थी । अपनी विद्वत्ता और सचाईके कारण वे मुगलबादशाहके परम कृपापात्र हो गये थे । मालवा के नरवर नामके नगरमें हुमायूँ के किसी उमराव को वहां जागीर प्राप्त हुई थी । यथा—

तहां मुगल पाई जागीर ।

१ संवत् १६०८ में मालवा हुमायूँके मातहत नहीं था । उस समय हुमायूँ हिन्दुस्तानमें नहीं था, काबुलमें था । संवत् १६०८ में हि जरी सन् १०८ था, और उस समय मालवेमें शेरशाहका अमल था उसकी तरफसे शुजाखां शक्तिम था ।

मालवेका यह हाल है कि वहां भी मुहम्मदतुगलकके यक़्तमें अलग यादशाही हो गई । आखरी यादशाह महमूदखिलजी था, उससे गुजरातके सुलतान बहादुरने ९ श्रावान सन् १३७ (चित्र सुदी ११ संवत् १५८७) को मालवा छीन लिया था ।

सन् ९४१ (संवत् १५९२) में हुमायूँबादशाहने सुलतानबहादुरको भगाकर मालवा लिया । सन् ९४२ (संवत् १५९३) में जब यादशाह मालवेसे आगरे और आगरेसे बंगालेको शेरखां पठानसे लड़ने गये, तो महमूदखिलजीके गुलाम मल्लूखाने मुगलोंको निकालकर मालवेमें अमल कर लिया और कादरशाह अपना नाम रख लिया ।

सन् ९४९ (संवत् १५९९) में शेरखाने कादिरशाहको निकालकर शुजाखांको मालवेमें रक्खा ।

सन् ९६२ (संवत् १६१२) में शुजाखां मर गया । उसका बेटा चापजीद मालवेका मालिक होकर राजबहादुर कहलाने लगा ।

संवत् १६१८ में अकबरबादशाहके अनाराने राजबहादुरको निकालकर मालवेको दिल्लीके राज्यमें मिला दिया ।

इस व्यवस्थासे मालूम होता है कि, संवत् १६०८ में जो शुजाखां मालवेका मालिक था, वह हुमायूँका सरदार नहीं शेरखांका सरदार था और उस समय शेरखांके बेटे सलीमशाहके मातहत था ।

जानना चाहिये कि, कालपी और गवालियर याचरके समयमें हुमायूँ बादशाहके अधिकारमें थे । कालपी में बादशाहका बच्चा यादगार-

शाह हुमायूँको वरवीर ॥ १५ ॥

मूलदासजी उक्त नरवर नगरमें शाहीमोदी बनकर गये और अपना कार्य प्रतिष्ठापूर्वक करने लगे । कुछ दिनके पश्चात् अर्थात् सावन सुदी ५ रविवार संवत् १६०२ को आपको एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ । जिसका नाम खरगसेन रक्खा । दो वर्षके पश्चात् धनमल नामके दूसरे पुत्रने अवतार लिया । परन्तु तीन वर्ष जीवित रहेके,—

धनमल धनदल उडि गये, कालपवनसंजोग ।

मातपितातरुवर तये, लहि आतप सुतसोग ॥ १९ ॥

धनमलके शोक को मूलदासजी झेल नहीं सके और संवत् १६१३ में पुत्रके कुछदिन पीछे पुत्रकी गति को प्राप्त हो गये ।

मूलदासकी मृत्युके पश्चात् उनकी स्त्री और बालक दोनों अनाथ हो गये, अनाथिनीको पतिके बिना संसार स्मशान सा दिखने लगा परन्तु इतनेसे ही कुशलता न हुई; मुगलसरदार मूलदासका काल सुनकर आया, और उसने इनका घर खालसा करके सब जायदाद

नासिरमिरजा और गवालियरमें अबुलकासिम हाकिम था । नरवर गवालियरके नीचे था, सो वहां कोई मुगलहाकिम रहता होगा, जिसके मोदी बनारसीदासजीके दादा मूलदास थे । परन्तु संवत् १६०८ में नरवरका हाकिम मुगल नहीं पठान था, संवत् १६१३ में मुगल होगा, क्योंकि संवत् १६१२ से फिर हुमायूँका राज्य दिल्लीमें हो-
गया था ।

१ अर्द्धकथानकड़ी जो प्रति हमारे पास है, उसमें वरवीर शब्दपर 'उमराव' ऐसी टिप्पणी है ।

२ कदाचित् धनसे कविराजने नमका भाव रक्खा है ।

जन्त करली! अनाधिनी और भी अनाधिनी होगई। मुगलमरदार की निर्दयताका कुछ ठिकाना था? "भरेको नारै शाह मदारः"।

अनाधविधवा इस घोर विपत्तिको वहां रहकर सहन न कर सकी, और अनाध बालकको पीठपर बांधके पूर्वदेशकी ओर चले पड़ी। और नानाप्रकारके पथसंकटोंको झेळती हुई, कुछ दिनोंके पश्चात् जौनपुर शहरमें पहुंची। जौनपुरमें अनाधिनीका पीहर था। यहां के प्रतिष्ठित रहीस चिनालिया गोत्रज मदनसिंहजी जौहरी की यह भतीजी थी। मदनसिंहजी पुत्रीको पाकर प्रसन्न हुए और उनकी दुर्दशा सुनकर बहुत दुःखी हुए। पीछे दिवासा देके पुत्रीको सम-ज्ञाया कि, एक पुत्रसे सब कुछ हो सच्चा है, सुखदुःख वृत्तकों छायाके समान हैं। पुत्र की रक्षा कर और सुखमें रह। यह घर द्वार सब तेरा है।

जौनपुर गौमती नदीके किनारे बसा हुआ है। पटान वंशोद्भव जोनाशाह सुलतानने इस नगरको बसाया था; इस कारण इसका नाम जौनपुर हुआ। उस समय जौनपुरराज्यका विस्तार पूर्वमें पटना पश्चिममें इटावा दक्षिणमें विंध्याचल और उत्तरमें हिमालय तक था। कविवरने इस नगरका वर्णन स्वतः देवकर बहुत लिखा है। परन्तु विस्तारमयसे हम उसे छोड़े देते हैं, और बादशाहों की नामावली जो एक जानने योग्य विषय है, लिखे देते हैं,—

प्रथमशाह जोनाशाह जानि ।

दुतिय बबककर शाह बखानि ॥ ३२ ॥

त्रितिय भयो सुरहरसुलतान ।

चौथो दोस्तमुहम्मद जान ॥

पंचम भूपति शाह निजाम ।
 छठमशाह बिराहिम नाम ॥ ३३ ॥
 सत्तम साहिब शाह हुसेन ।
 अठम गाजी सजितसैन ॥
 नवमशाह वख्यासुलतान ।
 वरती जासु अखंडित आन ॥ ३४ ॥

१ बनारसीदासजीने जोनपुरके बादशाहोंके ये ९ नाम लिखे हैं—

१ जोनाशाह	२ बबकर	३ सुरहर
४ दोस्तमुहम्मद	५ शाहनिजाम	६ शाहबिराहीम (इब्राहीम)
७ शाहहुसेन	८ गाजी	९ वख्यासुलतान

इन बादशाहोंका पतालगानेकेलिये फारसीतवारीखोंमें जोनपुरका हाल ब्रह्मकर लपरके लेखसे मिलाया तो, कुछ और ही पाया, और नाम भी कुछ और ही पाये । नाम उन तवारीखों के ये हैं—

१ आईनअकबरी २ तारीख निजामी ३ तारीख फारि-
 शता ४ तारीख फीरोजशाही ५ सेरलमुताखरीन ६ जुगरा-
 फिये व तारीखजोनपुर वगैरः—

इनमें सबसे पुरानी फीरोजशाही है । इन तवारीखों में जो विवरण जोनपुरकी सल्तनतका लिखा है, उसका सारांश यह है कि—

खिलजियोंका राज्य जानेपर तुगलकजातिका दिल्लीमें उदय हुआ । पहिला बादशाह इस घरानेका गाजी तुगलक पंजाबका सूबेदार था, जो कि—ता० १ शवान सन् ७३१ (भादोंसुदी ३ संवत् १३५८) को सब अमीरोंकी सलाहसे दिल्लीके सिंहासनपर बैठा था । और रबीउलअवल सन् ७३५ (फाल्गुण सुदी और वैश्वदी संवत् १३८१) में मरा ।

उसका बेटा मलिक फखरुद्दीनजोना सुलतान नासिर-

उलदीन मुहम्मदशाहके नामसे तख्तपर बैठा। शमीको मुहम्मद-
तुगलक भी कहते हैं। यह २१ सुहरम सन् ७५९ (चैतवदी ८ संवत्
१४०७) को सिंधमें मर गया।

मुहम्मदतुगलकके बेटा नहीं था, इसलिये उसके काका सालार
रज्जबका बेटा फीरोजशाहयारबुक बादशाह हुआ। इसने सन
७७४ (संवत् १४२९) में बंगालसे लोटते हुए, गोमतीनदीके तीरपर १
अच्छी समचारस जमीन देखकर वहां शहर बसाया, और उसका नाम
अपने चचेरेभाई मुहम्मदतुगलकके असली नाम मलिकजोनाके
नामसे जोनपुर रक्खा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिकजोनाको यह
कहते हुए देखा था कि, इस शहरका नाम मेरे नामपर रखना।

फीरोजशाह १३ रमजान सन् ७९० (भादों सुदी १५ संवत्
१४४५) को ९० वर्षका होकर मरा। उसका पोता दूसरा ग्यासुद्दीन
तुगलक बादशाह हुआ। यह २१ सफर सन् ७९१ (फागुण वदी ८ सं०
१४४५) को मारा गया। उसका चचेराभाई अवृत्तक उसकी जगह
बैठा। वह भी २० जिलहिज सन् ७९१ (पाप वदी ७ संवत् १४१७)
को मर गया। तब उसका काका नासिरउलदीन मुहम्मदशाह
बादशाह हुआ। वह १७ रबीउलअव्वल सन् ७९६ (फागुण वदी ४
संवत् १४५०) को मर गया। उसका बेटा हुमायूँखां १९ को तख्त
पर बैठा और १॥ महीने पीछे ही मर गया। तब उसके भाई नासिर-
उलदीन महमूदशाहको ख्वाजाजहां बजोरने उसकी जगह बैठाया।
इसने पूर्वके हिन्दुओंका स्वतंत्र हो जाना सुनकर ख्वाजाजहांको उनके
ऊपर भेजा। यही पहिला बादशाह जोनपुरका हुआ। इसका नाम मलिक
सरवर था और फीरोजके समयमें ज्योटीका दारोगा था। नासिरउद्दीन-
मुहम्मदशाहने इसको बजीर बनाकर ख्वाजाजहांका गिताय दिया था
और जब नासिरउद्दीन महमूदशाहने इसे पूर्वको भेजा, तो सुलतान-
लशर्कका गिताय भी उसको दे दिया था, जिगका अर्थ होता है पूर्वका
बादशाह।

जोनपुरके शाह ।

१ मुलतानउलशर्क ख्वाजाजहाँने हिन्दुओंपर जीत पाकर जोनपुरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने कोल से तिरहुत तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६।५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, फरनफल नाम १ लड़केको बेटा बनाया था। वहीं उसके पीछे जोनपुरका बादशाह हुआ और मुबारिकशाह नाम रक्खा।

२ मुबारिकशाह—तुगलकोंकी बादशाही दिन २ गिरती देखकर पूरा स्वतंत्र होगया। २ वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८।५९) में मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तख्तपर बैठा।

३ इब्राहीमशाह (मुबारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिल्ली तुगलकोंसे सैयदोंने ले ली। पहिले सैयद खिज्रखाँ और फिर सैयद मुहम्मदशाह वहाँका बादशाह हुआ। इब्राहीम दोनोसे ही लड़ता लड़ता सन् ८४४ (संवत् १४९६ में) मर गया।

४ महमूदशाह (मुलतान इब्राहीमका बेटा)—इसके समयमें दिल्लीका बादशाह मुहम्मदशाह मर गया और अलाउद्दीनशाह बैठा। अमीरोंने उससे नाराज होकर महमूदशाह को बुलाया, तब अलाउद्दीन पंजाबके हाकिम बहलोललोदीको दिल्ली सौंपकर वदालं चला गया। बहलोलसे और महमूदसे लड़ाई होती रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत् १५१४।१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तख्त पर बैठा।

५ मुहम्मदशाह (महमूदका भाई)—इसने बहलोलसे मुल्ह कर ली, परन्तु फिर लड़ाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयों के सगड़में मारा गया। ५ महीने राज्य किया। उसका भाई हुसेनशाह बादशाह हुआ।

६ हुसेनशाह—इससे और बहलोलसे भी बड़े २ युद्ध हुए, निदान बहलोलने जोनपुर लेकर अपने बड़े बेटे वारसुक्को दे दिया। हुसेनशाह विहारमें चला गया।

७ वारसुकशाह लोदी—सन् ८९४ (संवत् १५४५।४६) में बहलोल

मरा और छोटा चेटा निजामखां दिल्लीमें बादशाह हुआ और मुलतान सिकंदर कहलाया। पारसुक उससे लड़ने गया और हारा। सिकंदरने जोनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिन के मुलमोंसे जोनपुर राज्यके आश्रित राजोंने तंग होकर मुलतान हुसैन-को बुलाया। वह सन् ८९५ (संवत् १५४६।४७) में आकर सिकंदरसे लड़ा, परन्तु हारकर बंगालमें चला गया। सिकंदर अपने बेटे जलाल-खांको जोनपुरमें बैठाकर चला गया।

८ जलालशाह लोदी—७ जीकाद सन् ९२३ (मंगसर सुदी ८ संवत् १५७३) को सिकंदर मरा और जलालशाहका भाई इब्राहीमशाह दिल्ली तख्तपर बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जोनपुर दरियाखां-लोहानीको दे दिया।

९ दरियाखांलोहानीके समयमें बाबर बादशाहने मुलतान इब्राहीमको मारकर दिहो लेली। उसी समय दरियाखां भी मर गया।

१० बहादुरशाह (दरियाखांका चेटा)—बाबके पीछे बादशाह हो गया। क्योंकि पठानोंकी बादशाही दिल्लीसे जाती रही थी। बाबर बादशाहने शाहजादे हुमायूँको भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर हिंदूबेगको जोनपुरमें रख दिया। उसके पीछे बाबाचैग उसका चेटा जोनपुरमें हाकिम हुआ।

११ बाबाचैगको, शेरखांसूरे, हुमायूँ बादशाहने बादशाही लेनेके पीछे जोनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे आदिलखांको जोनपुरका हाकिम बनाया।

१२ आदिलखांसूर—१२ खंडेल अब्दुल सन् १५२ (जेठ सुदी १४ संवत् १६०२) को शेरशाहके मरनेपर सलीमशाह तख्तपर बैठा, उसने आदिलखांको बुलाकर बयानेका फिदा दे दिया और जोनपुर रालमें कर लिया। फिर जोनपुर स्वतंत्र राज्य नहीं हुआ, पठानोंके पीछे मुगलोंके राज्यमें भी यहां हाकिम रहते रहे।

वह जोनपुरका संक्षिप्त इतिहास है। जितने शक्तिमान नहीं देगा है,

वे यही जानते हैं कि, जोनपुर जोनाशाह (मुहम्मद तुगलक) ने बसाया था, और यही मुनमुनाकर बनारसीदासजीने भी पहिलवादशाह जोनाशाह लिखा है। यह बात कविवरके ३०० वर्ष पहिले की थी, और सो भी किसी इतिहासके साधारसे नही लिखी थी, पुराने लोगोसे पूछ पाछे लिखी थी, उसमें इतनी भूल होना संभव है। उन्होंने इस विषयमें खतः संशक्ति बित्त होकर लिखा है।

“हुते पूर्व पुरुषा परधान । तिनके वचन सुनं हम कान ।

वरनी कया यथाश्रुत जेस । मृपादोष नहि लागे एम” ३७८ ॥

(अर्थकथानक)

इस प्रकार प्रथम बादशाह जोनाशाह नहीं, किन्तु फीरोजशाहको समझना चाहिये। दूसरा जो वक्करशाह लिखा है, वह फीरोजशाह वारवुक है। वारवुकका अपभ्रंश वक्करशाह हो सका है।

तीसरा—जो सुरहर मुल्तान लिखा है, वह ख्वाजाजहां है, जिसका नाम मलिक सरवर था, सरवर ही गलतीसे सुरहर लिखा गया है।

चौथा—जिसको दोस्तमोहम्मद लिखा है, वह मुबारिकशाह है, जिसका नाम करनफल था। शायद जोनपुरवाले उसे दोस्तमुहम्मद कहते थे।

पांचवां—जिसको शाहनिजाम लिखा है, उसका पता मुबारिकशाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता।

छठा—जो शाह्वाहीम लिखा है, वह इब्राहीमशाह ही है।

सातवां—जिसे शाहहुसेन लिखा है, वह इब्राहीमशाहके बेटे महमूद और पोते मुहम्मदशाहके पीछे हुआ था। बीचके इन दो बादशाहोंको बनारसीदासजीने नहीं लिखा है।

आठवां—जो गाजी लिखा है, वह सैय्यद बहलोललोदी है। शाहहुसेनके पीछे वही जोनपुरका मालिक हुआ था।

नवमाँ जो बह्यासुलतान लिखा है, यह बहलोलका बेटा वारवुकशाह हो सका है। जिसे बापने जोनपुरका तख्त दिया था।

बालक खरगसेन अपने नानाके घर सुखमें रहने लगा । आठ वर्षकी उमर होने पर उसने पढ़ना प्रारंभ किया और धीरे ही दिनोंमें हिसाब किताब चिट्ठीपत्रीकेकार्यमें व्युत्पन्न हो गया । योग्य वय होनेपर नानाके साथ सोना चांदी और जवाहिरातका व्यापार सीखने लगा और व्यापार कुशल होनेपर ग्रामान्तरोमें भी आने जाने लगा । एक दिन खरगसेनने अपनी मातासे मंत्र लेकर नानाकी मम्मतिके बिना ही एक घोड़ेपर सवार होकर बंगालकी ओर कूच कर दिया, और वह कई मंजिलें तय करके इच्छित स्थानपर जा पहुंचा । उस समय

इस तरह बनारसीदासजीके लेखकी विधि मिल सकती है ।

१ जोनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो भी सही है क्योंकि जोनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था, और जय वहां बादशाही थी, उस वक्त तो दूरी दिनों ही बना हुआ था, ४ कोसमें बसता था ।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जोनपुर उसके नाँचे कर दिया गया था ।

आइने अकबरीमें जोनपुरके ५९ मुहाल लिखे हैं, परन्तु अब आंगरेजी अमलदारीमें जोनपुर ५ ही तहसीलोंका जिला रह गया है ।

जोनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुग्राफिये (भूगोल) जोनपुरसे मिलता है । उसमें लिखा है कि, अकबर बादशाहने गरीबोंकी आँखोंका इलाज करनेकेलिये एक हकीमको भेजा था, वह गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था । तब भी हजार पंद्रहसौ रुपये रोजकी उसको आमदनी हो जाती थी । एक दिन उसके गुनाहोंने जब उससे कहा कि, आज तो ५०० का ही गुग्गुलु बिका है, तब उसने एक बड़ी आह भरी और कहा हाय ! जोनपुर बोरान (ऊजड़) हो गया । फिर वह उसी दिन आंगरेको चला गया ।

बंगालमें सुलेमान सुल्तान राज्य करता था। सुलेमान अपने साले लोदीखानपर बहुत प्यार करता था, और उसे अपने पुत्रके स्थानापन्न मानता था। सुलेमानके कोई पुत्र नहीं था। उक्त लोदीखानके दीवानका नाम धन्नाराय श्रीमाल था। दीवान बड़ा उदार-शील और कृपालु था। उसका आश्रयपाकर ५०० श्रीमाल वहाँ निवास करते थे। खरगसेननी इन्हींकी सेवामें जाकर उपस्थित हुए। खरगसेनकी आदु अब भी छोटी थी। परन्तु बाष्पदुता और विचारशीलता देखके थोड़े दिन अपने आश्रितरसके दीवान साहिबने इन्हें चार परगनोंका पोतदार बना दिया। खरगसेन परगनोंमें जोके अमलदारी करने लगे। छह सात महीनेके पीछे दीवान साहिबने शिल-रजीकी यात्राका संघ चलाया, और कुछ दिनोंमें वे यात्रासे लौटके घर आ गये। उस दिन सामायिक करते २ उदरशूल उत्पन्न हुआ, और तत्काल ही उनका प्राण पखेरू उड़ गया। कविवर कहते हैं—

पुण्यसंजोग जुरे रथपायक, भाते मतंग तुरंग तबेले ।
मात्रि विमौ अगयो सिरभार, कियो विसतार परिजह लेले॥
बंध बढ़ाय करी यिति पूरन, अन्त चले रठि आप अकेले ।
हारि हमालकी पोटसी डारिकै, और दिवालकी आँद बूँद खेले

१ सुलेमान किरानी जातिका पठान था। वह हिजरीसन् ९५६ (संवत् १६०६ से सन् १८१ (संवत् १६३०) तक बंगालका स्वतंत्र शासक रहा था। उसकी राजधानी गौड़में थी, जो बंगालका एक पुराना शहर था और जिसपरसे बंगालमें अब तक गोड़बंगाल कहते हैं, और पहिले गौड़देश भी कहते थे। कविवरने संवत् १६२५ में बंगालका राजा ब्राह्म-सुलेमानको लिखा है, जो बहुत ठीक है। पोंछे सन् १८३ (संवत् १६३२) में अकबरकी फौजने सुलेमानके बेटे दाऊदखानसे बंगाला और उड़ीसा जीन लिया।

खरगसेन अपनी मातासे नरवरकी विपत्तिका हाल सुन चुके थे, रायसाहबके शरीरपात होनेपर उन्हें वही बात स्मरण हो आई, इसलिये जो कुछ जमा पूंजी साथमें थी; उसे लेकर एक दुागी दरिद्रीका बेप बनाकर वहांसे निकल पड़े। कई दिनमें मार्ग चलके जौनपुरमें आये। माताके चरणोंकी पूजा की। जो कुछ द्रव्य था, उन्हें सौंप दिया और विपत्तिका कारण बतलाया। इस समय खरगसेनकी वय केवल १४ वर्षकी थी, माताने आंनू भरके रो दिया।

चार वर्ष जौनपुरमें रहके संवत् १६२६ में खरगसेन आगरा में व्यापार निमित्त आये। सुन्दरदास पीतिया नामक किसी व्यापारीके सांक्षेमें व्यापार किया। उक्त सांघीदारसे ऐसी मित्रता हुई कि, दोनोंकी प्रीति देखकर लोग दोनोंको पितापुत्र समझते थे। चार वर्षके सांक्षेमें बहुतसा द्रव्य एकत्र किया, और पांचवें वर्ष माता और गुरुजनोंके प्रयत्नसे मेरठनगरके सूरदासजी श्रीमालकी कन्याके साथ खरगसेनका विवाह हो गया। विवाह होनेके पश्चात् फिर अर्गलपुर (आगरा) आकर व्यापार में दत्तचित्त हो गये।

इसी समय अर्थात् संवत् १६३१ में मित्रवर्ध सुन्दरदासजी अपनी भार्याके सहित परलोकयात्रा कर गये, और अपने पीछे मात्र एक पुत्री छोड़ गये। खरगसेनजी उदारचरित्र पुरुष थे, उन्होंने अपनी ओरसे बड़े साजवाजसे मित्रकी पुत्रीका विवाह कर दिया, और पंचोंके सम्मुख सुन्दरदासजीकी सम्पूर्ण सन्तति पुत्रीको सौंप दी।

संवत् १६३३ में खरगसेनने आगरा छोड़ दिया और वे विपुल सम्पत्तिके अधिकारी होकर जौनपुरमें रहने लगे। पीछे जौनपुरके प्रसिद्ध

धनिक लाला रामदासजी अग्रवालके साथ सांझमें जवाहिरात का बंदा करने लगे ।

संवत् १६३५ में एक पुत्र उत्पन्न हुआ, परन्तु आठ दस दिन जीवित रहके अपनी माट लग गया । पुत्रके भरनेका खुरगसेनको बहुत शोक हुआ । थोड़े दिनके पीछे पुत्रलाभकी इच्छासे वे रोहतकपुरकी सती की यात्रा करनेको सज्जुटुम्ब गये । परन्तु मार्गके फेरसे मार्गमें चोपेने सर्वस्व छूट लिया, एक फूटी कांडी भी पास में नहीं रही । दम्पती बड़ी कठिनतासे अपने शरीरको लेकर घर छोटके आये । कविवर कहते हैं—

गये हुते मांगनको पूत । यह फल दीनों सती अऊत ।

प्रगट रूप देखें सब लोग । तऊ न समुझैं मूरसलोग ॥

खुरगसेनके नाना मदनसिंघजी बहुत वृद्ध हो गये थे, इसलिये उन्होंने सब कार्य खुरगसेनको सौंप दिया था, और आप शान्तिवावसे कालयापन करते थे । संवत् १६४१ में शान्तिवावके साथ उनका शरीर छूट गया । नानाकी मृत्युके दो वर्षके पश्चात् अर्थात् संवत् १६४३ में खुरगसेनजी पुत्रलाभकी इच्छासे फिर सतीकी यात्राको गये । अबकी बार कुशल हुई कि, आनन्दसे छोट आये । और थोड़े दिनके पीछे उनकी मनःकामना भी पूर्ण हो गई । आठ वर्षके पश्चात् पुत्रका सुंह देखा, इस लिये सविशेष आनन्द मनाया गया । दम्पति सुखसमुद्रमें गोते लगाने लगे । पुत्रका जन्मकाल और नाम नीचेके पद्यसे प्रगट होगा,—

संवत् सोलह सौ तेताल । माघमास सितपक्ष रसाल ।

एकादशी वार रविनन्द । नखत रोहिणी धृपको चन्द ॥

रोहिनि त्रितिय चरनअनुसार। खरगसेन घर सुत अवतार।

दीनों नाम चिक्रमाजीत। गावहिं कामिनि मंगलगीत ॥

पुत्र जब छह सात महीनेका हुआ, तब खरगसेन सकुटुम्ब पार्श्वनाथकी यात्राको काशी गये। भगवत्की भावपूर्ण पूजन करके उनके चरणोंके समीप पुत्रको डाल दिया और प्रार्थना की,—
चिरंजीवि कीजे यह बाल। तुम शरणागतके रखपाल।

इस बालकपर कीजे दया। अब यह दास तुम्हारा भया ८८

प्रार्थना करते समय मन्दिरका पुजारी वहां खड़ा था। उसने थोड़ी देर कष्टरूप पवनसाधने और मौनधारण करनेके पश्चात् कहा कि, पार्श्वनाथ भगवानका यक्ष मेरे ध्यानमें प्रत्यक्ष हुआ है, उसने मुझसे कहा है कि, इस बालककी ओरसे कोई चिन्ता न करनी चाहिये। परन्तु एक कठिन्ता है, सो उसके लिये कहा है कि,—

जो प्रभु पादर्वज्जन्मको गांव। सो दीजे बालकको नांव॥९१॥

तो बालक चिरजीवी होय। यह कहि लोष भयो मुर सोय ॥

खरगसेनने पुजारीके इस मायाजालको सत्य समझ लिया और प्रसन्न होकर पुत्रका नाम बनारसीदास रख दिया। यही बनारसीदास हमारे इस चरित्रके नायक हैं।

बाल्यकाल।

हरपित कटै कुटुम्ब सब, स्वामी पास सुपास।

दुहुंको जनम बनारसी, यह बनारसीदास ॥९२॥

बालक बड़े लाट चावके साथ बढ़ने लगा। मातापिताका पुत्र पर निःसीम प्रेम था। एक पुत्रपर किस मातापिताका प्रेम नहीं होता!

संवत् १६४८ में पुत्र संग्रहणीरोगसे ग्रसित हुआ। मातापिताके शोकका ठिकाना न रहा। ज्यों त्यों मंत्र यंत्र तंत्रोंके प्रयोगोंसे संग्रहणी उपशान्ति हुई कि, शीतलाने आ घेरा। इस प्रकार १ वर्षके लगभग बालक अतीव कष्टमें रहा। शीतला शान्त होनेपर उक्त बालककी पीठपर एक बालिकाका जन्म हुआ।

संवत् १६५० में बालकने चटशालामें जाकर पाँडे रूपचन्द-जीके पास विद्या पढ़ना प्रारंभ किया। पाँडे रूपचन्दजी अध्यात्मके विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। उनका बनाया हुआ पंचमंगलपाठ एक हृदयग्राही श्रेष्ठ काव्य है। सारे जैनसमाजमें इसका प्रचार है। जैनी मात्रको यह कंठस्थ रहता है। बालककी बुद्धि बहुत तीव्र थी, वह दो तीन वर्षमें ही अच्छा व्युत्पन्न हो गया।

जिस समयका यह इतिहास है, उस समय मुसलमानोंका प्रताप-सूर्य मध्याह्नमें था, उनके अत्याचारोंके भयसे देशमें बालविवाहका प्रचार विशेषतासे हो रहा था। अतएव ९ वर्षकी वयमें अर्थात् संवत् १६५२ में खैराबादके शेट कल्याणमलजीकी कन्याके साथ बालककी सगाई कर दी गई। संवत् १६५३ में एक बड़ा भारी दुष्काल पड़ा, लोग अन्नकेलिये बेहाल फिरते दिखाई दिये। अतः इस वर्ष विवाह नहीं हुआ। जब दुष्काल क्रम २ से शान्त हो गया, तब संवत् १६५४ में माघ सुदी १२ को बनारसीदास-की वरात खैराबादको गई। विवाह शुभमुहूर्तमें आनन्दके साथ हो गया। वरात लौटके घर आ गई। जिस दिन वरात घर आई उसदिन खरगसेनजीके एक पुत्रीका और भी जन्म हुआ, और उसी दिन बृद्धा नानीने कूच कर दिया। कवि कहते हैं,—

नानीमरन सुतज्जनम, पुत्रवधू आगौन ।

तीनों कारण एक दिन, भये एक ही मौन ॥ १०७ ॥

यह संसारविडम्बना, देख प्रगट दुख वेद ।

चतुरचित्त त्यागी भये, मृद न जानाहि भेद ॥ १०८ ॥

उस समय विवाह होनेपर बरातके साथ ही दुल्हिन ध्वमुगल्यमें आती थी, उसी प्रथाके अनुसार दो महीने वधू जैनपुरमें रही, पश्चात् अपने काकाके साथ लिव्राई हुई, विशालयको चली गई।

एक बड़ी भारी विपत्ति आई । जैनपुरके हाकिम कुलीचने

१ कुलीच तुर्की भाषाका शब्द है, इसका अर्थ मालूम नहीं है।

जिस नवाब कुलीचका कुलम जीहरीयोंपर बनारसीदासजीने लिखा है, उस कुलीचखांका अकबरनामे और जहागीरनामेके संकटों पक्ष उलट पुलट करनेसे इतना पता लगा है कि, कुलीचखां ईदुजानका रहनेवाला जानीकुबखानी जातिका एक तुर्क था। ईदुजान नूरान देशका एक शहर है। जो अब शायद रूस या अमीरकाबुलके कब्जेमें है।

कुलीचखांके पाप दादा मुगल बादशाहोंके नोकर थे। कुलीचखांको अकबरयादशाहने सन् १७ जलशी (संवत् १६२९) में सूरतकी किलेदारी, और सन् २३ (संवत् १६३५) में गुजरातकी सूबेदारी दी थी। सन् २५ (संवत् १६३७) में उसे वजीर बनाया। सन् २८ (संवत् १६४०) में फिर गुजरातको भेजा और सन् १९७ (संवत् १६४६) में राजा तोडरमलके मरनेपर वह दीवान बनाया गया, सो सन् १००२ (संवत् १६५०) तक रहा। इसी बीचमें सन् १००० (संवत् १६४८) में जैनपुर भी उसकी जानीरमें दे दिया गया। सन् १००५ (संवत् १६५३) में बादशाहने शाहजादे दानियालको इलाहाबादके सूबेमें भेजा, तो कुलीचखांको उसका अतादीक (शिक्षक) करके साथ किया। उसकी बेटी शाहजादेको व्याही थी।

फिर सन् ४६ (१६५६) में आगरेकी, और सन् ४६ (१६५८) में लाहौर तथा काबुलकी सूबेदारी उनको दी गई।

सम्पूर्ण जौहरियोंको पकड़वाके बुलवाया, और एक बड़ा मारी नग मांगा, परन्तु उस समय जौहरियोंके पास उतना बड़ा जितना हाकिम चाहता था, कोई नग नहीं था। इसलिये वेचारे नहीं दे सके। इसपर हाकिमका क्रोध और भी उबल उठा। उसने सबको एक कोठरीमें कैद कर दिये। और जब कुछ फल नहीं हुआ तब सबेरे सबको कोठोंसे (दुरोंसे) पीट २ के छोड़ दिया। इस अत्याचारसे अतिशय व्यथित होकर सम्पूर्ण जौहरियोंने सम्मतिपूर्वक नगर छोड़ दिया और सब यत्र तत्र चले गये। खरगसेनजीने भी अपने परिवारसहित पश्चिमकी ओर गमन किया। हाय! उस राज्यमें कैसा अन्याय था!

गंगापार कडामाणिकपुरके निकट शाहजादपुर नगर है। वहां तक आते २ मूसलाघार पानी बरसने लगा, घोर अंधकार छा गया। मार्ग कीचड़से पूर्ण हो गये, एक पैदल चलना भी कठिन हो गया। लाचार शाहजादपुरकी सरायमें डेरा डालना पड़ा। उस

सन् १०१४ (संवत् १६६२)में जहांगीर बादशाहने उसको गुजरातमें बदल दिया, और सन् १०१६ (संवत् १६६२) में वह फिर लाहोर भेजा गया।

सन् ६ जहांगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहां सन् १०२३ (संवत् १६७१) में मर गया।

वनारसीदासजीने जो संवत् १६५५ में कुलीचखांका जोनपुरमें होना लिखा है, सो सही है। क्योंकि प्रथम तो जोनपुर कुलीचखांकी जागीरमें ही था। दूसरे संवत् १६५३ में उसकी तईनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जोनपुर भी था।

समयके कष्टसे कातर होकर खरगसेन दीन अनाथोंकी भाई रोदन करने लगे। उन्हें स्त्री पुत्र कन्या और विपुलसम्पत्तिकी रक्षा असंभव प्रतीति होने लगी। परन्तु उदय अच्छा था। उस नगरमें करमचन्द नामक माहुरशणिक था। वह एक परमसज्जन पुरुष था, और खरगसेनकी पहिचानका था। वह इनकी विपत्तिकी टोह पाकर दौड़ा हुआ आया, और प्रार्थना करके खरगसेनको सपरिवार अपने गृह ले गया। करमचन्दने बड़े आग्रहसे अपना धनधान्यपूर्णगृह खरगसेनको सौंप दिया और आप दूसरे गृहमें रहने लगा। खरगसेनने गृहकी धान्यादि प्रचुरसामग्री न लेनेके लिये बहुत प्रयत्न किये, परन्तु सच्चे मित्रके प्रेमके आगे उनके आग्रहका कुछ फल नहीं हुआ। कविवर कहते हैं—

धन वरसै पावस समै, जिन दीनों निजभौन ।

ताकी महिमाकी कथा, मुखसों चरनै कौन ? ॥१२८॥

शाहजादपुरमें खरगसेन सपरिवार सुखमें रहने लगे, और मित्रके अगाध प्रेमका उपभोग करने लगे। पूर्व की विपत्ति मर्यादा भूल गये। इस भूलनेपर अध्यात्मके रसिया कविवरने कहा है—

वह दुख दियो नवाव कुलीच ।

यह सुख शाहजादपुर चौच ॥

एकदृष्टि बहु अन्तर होय ।

एकदृष्टि सुख दुख सम होय ॥

जो दुख देखे सो सुख लहै ।

सुख भुंजै सोई दुख लहै ॥

सुखमें मानै मैं सुखी, दुखमें दुःखमय होय ।

मृदुपुरुषकी दृष्टिमें, दीसै सुख दुःख होय ॥

बानी संपत्ति विपत्तिमें, रहै एकसी भांति ।

ज्यों रवि ऊगत आधवत, तजै न राती कांति॥१३०॥

खरगसेनजी शाहजादपुरमें १० महीने रहकर प्रयागको जिसे उस समय इलाहाबास भी कहते थे और जो त्रिवेणीके तटपर बसा है, व्यापारके लिये गये । परन्तु कुटुम्बको शाहजादपुरमें ही छोड़ गये । उस समय अकबरका शाहजादा (जहांगीर) प्रयागमें ही रहता था ।

पिताके चले जानेपर इधर बनारसीदासने कौड़ियां बट्टे से खरीदकर बेचनेका व्यापार सीखना प्रारंभ किया । प्रतिदिन टके दो टके कमाना और चार छह दिन पीछे अपनी दादीके सम्मुख लाकर रखना, ऐसा नियम किया । कौड़ियोंकी कमाईको भोली दादी अपने पौत्रकी प्रथम कमाई समझकर उसकी शीरानी और निकूती लाकर सतीके नामसे बाँट देती थी । दादीके भोलेपनके विषयमें कविवरने बहुत कुछ लिखा है । उसका सारांश यह है कि “हमारी दादीके मोह और मिथ्यात्वका ठिकाना नहीं था, वे समझती थीं, कि यह बालक (बनारसी) सती जी की कृपासे ही हुआ है । और इसी विचारमें रात्रि दिवस मग्न रहती थीं । रात्रिको नित्य नये २ स्वप्न देखती थीं, और उन्हें यथार्थ समझके तदनुसार आचरण भी करती थीं ।”

तीन महीनेके पीछे खरगसेनजीका पत्र आया कि, सबको लेकर फतहपुर चले आओ । ऐसा ही हुआ, दो डोली किरायेसे करके और सब सामान लेके बनारसी पिताकी आज्ञानुसार फतहपुर आ गये । फतहपुरमें दिगम्बरी ओसवाल जैनि-

योंका बड़ा समूह था, उनमें वासुसाहजी मुख्य थे। वासुसाह अध्यात्मके अच्छे विद्वान् थे। इनके पुत्र भगवतीदासजीने बनारसीदासजीका सत्कार किया, और एक उत्तम स्थान रहनेको दिया। खरगसेनजीका कुटुम्ब फतहपुरमें आनन्दसे रहने लगा परन्तु कुछ दिन पीछे ही उन्होंने पत्र लिखके बनारसीदाससहित इलाहाबाद बुला लिया। इलाहाबादमें उस समय जवाहिरातका व्यापार अच्छा चटका था। दानाशाह सरकारकी जवाहिराती फरमावशको खरगसेन ही पूरी करते थे। पितापुत्र चार महीने इलाहाबाद रहे, पश्चात् फतहपुर आके कुटुम्बसे मिले। इसी समय खबर लगी कि, नवाबकुलीच आगरेको चला गया है, जौनपुरमें सब

१ ये भगवतीदासजी कविता भी करते थे, परन्तु ब्रह्मविलास के निर्माता ये नहीं हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासके कर्ताके पिताका नाम लालजी था, और इनके पिताका नाम वासुसाह था। ब्रह्मविलासके कर्ता आगराके रहनेवाले थे, और ये जौनपुरके थे। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविलासग्रन्थकी रचना संवत् १७५० में हुई है और यह सुनय १६५० का है। पुरुषका इतना बड़ा जीवन होना असम्भव है। नाट्य समयसारके अन्तमें भी एक भगवतीदासका नाम आया है, जो आगरेमें रहते थे, और उक्त कविवरके पांच मित्रोंमें अन्यतम थे।

रूपचन्द्र पंडित प्रथम, द्वितीय चतुर्भुजनाम ।

तृतीय भगवतीदास नर, कैचरपाल गुणधाम ॥ ११ ॥

धर्मदास ये पांचजन, x x x x x

अथवा जौनपुरके भगवतीदासजी ही कदाचित् ये हों, और आगरेमें आ रहे हों।

२ दानाशाह कौन! कहीं शाहदानियाल तो नहीं जो अकबर बादशाहका छोटा भाइयादा था और इलाहाबादमें कुछ दिनों तक रहा था। कुलीचखान उसका अतानीक (गाहियन) था।

प्रकार शांति है । खरगसेनजी सकुटुम्ब जौनपुर चले आये । अन्य जौहरी आदि जो भाग गये थे, वे भी सब आ गये थे, और जौनपुर फिर ज्यों का त्यों आबाद हो गया था । सब लोग अपने-अपने कृत्यों में लग गये, और प्रायः एक वर्ष तक जौनपुरमें शान्ति रही । यह समय संवत् १६५६ का था । इसके थोड़े दिन पीछे ही एक नवीन विपत्ति आई ।

अकबरका शाहजादा सलीमशाह जो पीछे जहांगीरके नामसे विख्यात हुआ, कोल्हूवनकी आखेटको निकला था । कोल्हूवन जौनपुरके पास है । जौनपुरके नूरमसुलतानके पास इसी समय शाहीफरमान आया कि, शाहजादा तुम्हारे तरफ आ रहा है, कोई ऐसा उपाय करो, जिसमें उसका कोल्हूवनका जाना बन्द हो जावे । नूरमसुलतानने शाहीफरमान सिरपर चढ़ाया, और एक विचित्र उपाय बनाया । जहां तहांके सब मार्ग रोक दिये । शहरके आवागमनके दरवाजे बन्द करा दिये । गौमतीमें नौकायें चलाना बन्द करा दी, और आप गढ़में जाके बैठ गया । बुजोंपर तोपें चढ़वा दीं । बन्दूक गोलीबारूदोंका भंडार खोल दिया । इस प्रकार विग्रहका ठाठ देखके प्रजाने भागना प्रारंभ किया । कुछ समझदार धनाढ्य लोगोंने मिलकर सुलतानसे प्रार्थना की, परन्तु उसका कुछ फल नहीं हुआ, इसलिये वे लोग भी भागे । और थोड़े ही समयमें वह महानगर ऊजड़ हो गया । खरगसेनजी भी सकुटुम्ब

१ सुलतान सलीमको वापने ६ मुहर्रम सन १००८ (आसोजवदी १४ संवत् १६५५) को राना अमरसिंहके ऊपर जानेका हुक्म दिया था, मगर वह वागी होकर इलाहाबाद चला गया और फिर वागी ही रहा ।

२ नूरमसुलतान कुलीचके पीछे जौनपुरका हाकिम हुआ था ।

भागनयानोंके साथी हुए, और लछमनपुर नामक ग्राममें चापंगे लछमनदासजीके आश्रयमें जा टहरे और विपत्तिके दिन गिनने लगे ।

सलीम शाहजादा जैनपुरके पास आ पहुंचा, परन्तु जब गौ-मती उतरने लगा, और यह विग्रह देखा, तो कुछ भित्ति हुआ और अपने वकील लालवेगको नर्मसुलतानके पास भेजा । वकीलने सुलतानके पास जाकर दश पांच नर्म नर्म बातें कहीं और शाहजादेके पास उसे ले आया । नर्मसुलतान शाहजादेके पैरोंपर पड़ गया, तब शाहजादेने गुनह माफ करके अभयदान दिया । नगरमें फिर शान्ति हो गई, मांग हुए लोग पुनः आ गये । खुरान-सेनजी भी ६-७ दिन लछमनपुरमें रहकर लौट आये, और अपने व्यवसायमें निरत हो गये ।

१ यह विग्रह क्यों किया गया ? इसका फल क्या हुआ ? और शाहजादा कैसे मान गया ! तुजकजहांगीरी की भूमिकामें जो हाल जहांगीर बाद-शाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सका है । उसमें लिखा है कि, तारीख ६ महर सन् १००७ (आगोजवदी १४ संवत् १६५५) को अकबर बादशाह तो दरसन फतह करनेके लिये गये और अजमेरका सूबा शाहसलीमको जागीरमें देकर रानासे नर करनेका हुक्म दे गये । शाहकुलीचखा महारम और राजा मानसिंहकी नोकरी इनके पास बोली गई । बंगालका सूबा जो राजाको सौंपा हुआ था, राजा अपने बड़े बेटे जगतसिंहको खोंकर शाहसी गिठनतमें रहने लगा ।

शाहसलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिखर चलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड़ गया था, और गिराहियोंको पहाटीमें भेजकर रानाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे ।

यहां खुशामदी और खार्यी लोग जो नीचे नहीं बैठ करते हैं, इनके कान भरा करते थे कि, बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुक्त एकाएकी हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी वगैर लिये पीछे आनेवाले नहीं है। इसलिये हजरत जो यहांसे लौटकर आगरेसे परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका किसान भी कि जिसकी खरों आ रही हैं और जो वगैर जाने राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजामानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इस वास्ते उसने भी हमें हां मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

शाहसलीम इन बातोंसे रानाकी मुहिम अधूरी छोड़कर इलाहाबादको लौट गये। जब आगरेमें पहुंचे तो वहांका किलेदार कुर्लीचखां पेशवाईको आया, उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकड़लेसे आगरेका किला जो खजानोंसे भरा हुआ है, सहजमें ही हाथ आता है, मगर इन्होंने कुबूल न करके उसको रखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबादका रस्ता लिया। इनकी दादी हौदमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिये किलेसे उतरी थी कि, ये नावमें बैठकर जलदीसे चल दिये और वे नाराज होकर लौट आईं।

१ सफर सन् १००९ (द्वि० सावन सुदी ३ संवत् १६५७) को शाहसलीम इलाहाबादके किलेमें पहुंचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। विहारका सूबा कुतबुद्दीनखांको दिया। जौनपुरकी सरकार लालाबेगको, और कालपीकी सरकार नसीमबहादुरको दी। घनसूर दीवानने तीन लाख रुपयेका खजाना विहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाहसलीमने जो लालाबेगको जौनपुर दिया था, नूरमसुलतान लालाबेगको लेने नहीं देता होगा;

वनारसीदासजीकी यय इस समय १४ वर्ष की हो चुकी थी, बाल्यकाल निकल गया था, और युवावस्थाका प्रारंभ था। इस समय ५० देवदत्तजीके पास पढ़ना ही उनका एक मात्र कार्य था।

धनंजयनाममालादि कई ग्रन्थ वे पढ़ चुके थे। यथा—

पढी नाममाला शतदोय । और अनेकारथ अवलोय ।

ज्योतिष अलंकार लघुकोक । खंडस्फुट शत चार श्लोक ॥

यावनकाल ।

युवावस्थाका प्रारंभ बहुत बुरा होता है, अनेक लोग इस अवस्थामें शरीरके भदसे उन्मत्त होकर कुलकी प्रतिष्ठा संपत्ति संतति आदि मयका चौका लगा देते हैं। इस अवस्थामें गुरुजनोंका प्रयत्न मात्र रक्षाकर सक्ता है, अन्यथा कुशल नहीं होती। हमारे चरित्रनायक अपने माता पिताके इकलौते लडके थे, इसलिये माता-पिता और दादीका उनपर अतिशय प्रेम होना स्वाभाविक है। सो अनाधारण प्रेमके कारण गुरुजनोंका पुत्रपर जितना मय होना चाहिये, उतना वनारसीदासजीको नहीं था। फिर क्या था ?

तजि कुलकान लोहकी लाज ।

भयो वनारसि आसिद्धबाज ॥ १७० ॥

और—

करं आसिखी धरित न धीर ।

दरदयन्द ज्यों शेष फकीर

इकटक देख ध्यानसौ धरै ।

पिता आपुनेको धन हरै ॥ १७१ ॥

जिसपर शाहसलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरम-वेगके हानिरहनेपर लालावेगछे वहां रत आया होगा।

१ शुद्ध शब्द दशकशत्रु है।

चोरै चूनी माणिक मनी ।

आने पान मिठाई घनी ॥

मेजे पेशकशी हित पास ।

आप गरीब कहावै दास ॥ १७२ ॥

हमारे चरित्रनायक जिस समय इस अनंगरंगमें सराबोर हो रहे थे, उसी समय जौनपुरमें खडतरगच्छीय यति भानुचन्द्रजीका आगमन हुआ । यति महाशय सदाचारी और विद्वान् थे, उनके पास सैकड़ों श्रावक आते जाते थे । एक दिन बनारसीदासजी अपने पितृके साथ, यतिजीके पास गये । यतिजीने इन्हें सुबोध देखकर स्नेह प्रगट किया । बनारसीदास प्रतिदिन आने जान लगे । पीछे इतना स्नेह बढ़ गया कि, दिनभर यतिके पास हीं पाठ-शालामें रहने लगे । केवल रात्रिको घर आते थे । यतिके पास पंच-संधिकी रचना, अष्टौन, सामायिक, पडिकोण (प्रतिक्रमण), छन्द-शास्त्र, ध्रुतबोध, कोष और अनेक स्फुटश्लोक आदि विषय कंठस्थ पड़े । आठ मूलगुण भी धारण कर लिये, परन्तु इश्क नहीं छुटा—यथा—

कवहं आइ शब्द उर धरै ।

कवहं जाइ आसिखी करै ।

१ यति भानुचन्द्रजी श्वेताम्बर थे, ऐसा जान पड़ता है । क्योंकि खडतरगच्छ श्वेताम्बरसम्प्रदायका ही हैं, और अष्टौन आदि विषय भी मुख्यतासे श्वेताम्बरीय हैं, जो कविवर ने उनके पास से पड़े थे । परन्तु जान पड़ता है कि, उस समय दिगम्बर श्वेताम्बरोंमें आजकलके समान शत्रुभाव नहीं था ।

गोपी एक यनाई नई ।

मिन हजार दोन मोयई ॥ ६३८ ॥

नामं नयन्य राना मिर्ग ।

पै विशद यमन भागिनी ॥

ऐमे कुपति यनारनि भये ।

मिथ्या मन्त्र यनाये नये ॥ ६३९ ॥

कै यदना कै भागिनी, मगन दुहुंगममति ।

मानमानकी मुधि नही, मेजगाय वरु नाहि ॥ ६४० ॥

विद्या जी अविद्या-पदक प्रमोदीकी । एतेक २ प्रमाण
अंशमें नमने हुए । अष्टमीकी आहुति दो वर्ष इस प्रकार होनी
चाहिये ॥ १५ वर्ष १० माह की उमरे साठवां वर्ष, पुनः पा-
वनेके दिने प्रभु मैरायाद आता रहा । बड़े दयनीय मनु-
ष्यमें पहुँचे । समुदायके प्रेरणक आदर साक्षीमें एक रूप ही
रहा । इनमेंमें पूर्व भागमें, अमन पदमें वैराग्य, अष्टमी
अमृतहारी यनामीके वाद्वैतिविद्या अंशकी दूध प्रभुके
पर भैरव दिया । कुशलपणा मनेहमयके अविद्या की मदा
मोग देग २ के साथ भेट प्रियेदे मने । विरहित रूप की
मासुरे अविद्या नमने साथ होइ दिया । १५-

भयो यनारनिदास नन, कुएरुय मयंग

हाइ हाइ टपजी कृपा, बंस मेन भुवनेन ॥ ६४१ ॥

विनहोयक भवनिन भये, हस्त पदक चैमेन ।

कोरु नर माने समुद्र, भोजन करि न भोग ॥ ६४२ ॥

ऐसी अशुभ दशा भई, निकट न आवै कोइ ।

सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥२२७॥

खैरावादमें एक नाई कुष्ठरोगका धन्यन्तरि था । वह बनारसीकी टहल चाकरी और साथ ही औषधि करता था । उसने दो महीने जी तोड़ परिश्रम करके हमारे चरित्रनायकके राहुग्रसित शरीरको संसारके गगनमंडलपर पुनः निर्मल प्रकाशित कर दिया । नाईको यथोचित दान देकर स्वास्थ्यलाभ करके बनारसदासजी घरको लौटे । परन्तु सासससुरने अपनी लडकौकी विदाई नहीं की । घर आके—

आय पिताके पढ़ गहे, मा रोई उर ठोकि ।

जैसी चिरी कुरीजकी, स्यों सुतदशा विलोकि ॥

खरगसेन ललित भये, कुवचन कहे अनेक ।

रोये बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ २२८ ॥

दश पांच दिनके पश्चात्; फिर पाठशालामें पढ़नेको जाने लगे और—

“कै पढ़ना कै आसिखी, पहिली पकरी चाल ।”

खरगसेनजी इसी समय व्यापारके निमित्त पढ़नेको चले गये । चार महीने वीत जानेपर बनारसीदासजी फिर समुदासको गये, और भार्याको लेकर घर आ गये । अब आप गृहस्थ हो गये, इस कारण गुरुजन उपदेश देने लगे ...

गुरुजन लोग देहिं उपदेश ।

आसिखबाज सुनें दरवेश ॥

बहुत पढ़ें वामन अरु भाद ।

वनिक पुत्र तो बैठें हाट ॥

बहुत पढ़ें सो मांगें भीख ।

मानहु पृथ ! चडोंकी सीख ॥ २०० ॥

परन्तु गुरुजनोके वचनवृन्दरूप ओमके कनूके बनारसीके हृदय-
कमलपर उन्मत्तताकी प्रबल वायुके कारण कब ठहरनेवाले थे ?
बढ़ते हुए यौवन-पयोधिके प्रवाहको क्या कोई रोक सका है ?
सबका कहा सुना इस कानसे सुना और उस कानसे निकाल दिया,
फिर हलकेके हलके हो गये । गुरुजीसे विद्या पढ़ना और इद्रकवाजी
करना ये दो कार्य ही उन्हें सुखके कारण प्रतीत होते थे । मतिके
अनुसार गति हुआ करती है । कुछ दिनोंके पीछे विद्या पढ़ना भी
बुरा जैचने लगा । ठीक ही है, विद्या और अविद्याकी एकता
कैसी ? संवत् १६६० में पढ़ना छोड़ दिया । इस संवत् में आपकी
बहिनका विवाह हुआ और एक पुत्रीने जन्म लिया । पुत्री ६-७
दिन रहके चल बसी । विदाईमें पिताको बीमार करती गई । बना-
रसीदासजीको बड़ी भारी बीमारी लगी । बीस लंघनें करनी पड़ी ।
२१ वें दिन वैद्यन और भी १०-५ लंघनें करानेकी बात कही,
और यहां बुधाके मारे प्राण जाते थे, तब एक विचित्र रंग खेला,
रात्रिको घर सूना पाकर आप आधसेर पूरी चुगके लडा गये ॥
आश्चर्य है कि, वे पूरी आपको पचका काम कर गई, और आर
शीघ्र ही निरोग हो गये । इसी संवत् में खरगसेनजीने एक बडा
भारी व्यापार किया, जिसमें कि सौगुणा लाभ हुआ ! सम्पत्तिसे घर
भर गया ।

संवत् १६६१ में एक संन्यासी देवता आये । उन्होंने बड़े
आदमीका लडका समझे बनारसीको फैसानेके लिये जाल वि-

१ इस पुत्रीका नाम टिप्पणीमें वीरवाई लिखा है ।

छाया । जाल काम कर गया । बनारसी फांस लिये गये । सन्यासीने रंग जमाया कि, मेरे पास एक ऐसा मंत्र है कि, यदि कोई उसे एक वर्षतक नियमपूर्वक जपे, तथा किसीपर प्रगट न करे, तो साल वीतनेपर गृहद्वारपर प्रतिदिन एक सुवर्णमुद्रा पड़ी हुई पावे । इस्कबाजोंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है । इस कल्पद्रुम मंत्रकी बातसे उनकी लाल टपक पड़ी । लगे सन्यासीकी सेवा सुश्रूषा करने, उधर सन्यासी लगा पैसे ठगनेकी बातें बनाने । निदान भरपूर द्रव्य खर्च करके सन्यासीसे मंत्र सीख लिया, और तत्काल ही जप करना प्रारंभ कर दिया । इधर सन्यासीजी भौंका पाकर नौ दो ग्यारह हो गये । मंत्र जपते २ एक वर्ष बड़ी कठिनातासे पूर्ण हुआ । प्रातःकाल ही स्नान ध्यान करके बनारसी महाशय बड़ी उत्कंठासे प्रसन्न होते हुए गृहद्वारपर आये । लगे जमीन सूंघने, परन्तु वहां क्या खाक पड़ी थी ? । आज्ञा बुरी होती है, सोचा कि कहीं दिन गिननेमें मेरी भूल न हो गई हो, अस्तु एक दो दिन और सही । और भी चार छह दिन सिर पटक परन्तु मुहर तो क्या फूटी कौड़ी भी नहीं मिली । सन्यासीकी तरफसे अब कुछ २ आंखें खुली । आपने एक दिन यह अपन-बीती गुरु भानुचंद्रजीको कह सुनाई । गुरुजीने सन्यासीके छल कपटोंको विशेष प्रगट कर कहा, तब आप सचेत हुए ।

बोहे दिन पीछे एक जोगीने आकर अपना एक दूमरा ही रंग जमाया । एक बार शिक्षा पा चुके थे, परन्तु भोले बनारसी-पर फिर भी रंग जमते देर न लगी । जोगीने एक शंख तथा कुछ पूजनके उपकरण दिये और कहा कि, यह सदाशिवकी मूर्ति है । इसकी पूजासे महापापी भी शीघ्र ही शिव (मोक्ष) प्राप्त करता

है। मोले बनारसीने जोगीकी बात सिर आंखोंसे मान ली और जोगीकी सेवा सुश्रूषा करना शुरू कर दी। यथायोग्य भेदादि देके उसे स्वयं संतुष्ट किया। दूसरे दिनसे ही सदाशिवकी पूजन होने लगी। पूजनके पश्चात् शिव शिव—कहकर एकसौआठ बार जप भी होने लगा। पूजन और जपमें इतनी श्रद्धा हुई कि, पूजन जप किये बिना भोजन नहीं होते थे। यदि किसी कारणवत् किसी दिन पूजन नहीं की जा सके, तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप लूखा भोजन करनेकी प्रतिज्ञा थी। परन्तु ध्यान रहै, यह पूजन गुप्तरूपसे होती थी, कोई गृहकुटुम्बी जानता भी नहीं था। अनेक दिनों यह पूजन होती रही। संवत् १६६१ में मुकीम हीरानंदजी ओसवालने शिखरजीको संघ चलाया, गांव २ नगर २ में संघकी पत्रिकायें भेज दीं। हीरानंदजी सलीम शाहजादेके जौहरी थे, अतः उस समय इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। खरगसेनजीके पास हीरानंदजीका विशेष पत्र आया, इसलिये ये गंगाके किनारे हीरानंदजीसे मिले और हीरानंदजीके आग्रहसे वहींके वहीं यात्राको चले गये। जब यह समाचार बनारसीको लगे, तब उन्होंने घर सूना पाकर चैनकी गुड्डी उड़ाना शुरू किया। पिताके जानेपर पूत निरंकुश हो गये, और नित्य घरमें कलह मचाने लगे। एक दिन बैठे २ एक सुबुद्धि सूझी कि, पार्श्वनाथकी यात्राको चलना चाहिये। मातासे आज्ञा मांगी, परन्तु जब उसने सुनी अनसुनी कर दी, तब आपने दही, दूध, घी, चावल, चना, तैल, ताम्बूल और पुष्पादि पदार्थोंको छोड़ दिया, और प्रतिज्ञा की कि, जब तक यात्रा नहीं करूंगा, तब तक ये पदार्थ भोगमें नहीं लाऊंगा। इस प्रतिज्ञाको ६ महीनें बीत गये। कार्तिकी पूर्णिमा आ गई। शैव लोग गंगास्नानको और जैनी पार्श्वनाथकी यात्राको चले,

तब बनारसी भी अवसर पाकर किसीसे बिना पूछेताछे उनके साथ हो लिये । बनारसमें पहुंच कर गंगास्नान पूर्वक भगवान् पार्श्वसु-पार्श्वकी पूजन दशदिन तक बड़े हावभावसे की । स्मरण रहै कि, सदाशिवकी पूजन वहां भी छोड़ नहीं दी थी, वह नियमसे होती थी । यात्रा करके संखोली लिये हुए बड़े हर्षके साथ घर आ गये । कविवरने अपने जीवनचरित्रमें सदाशिवपूजनको उत्प्रेक्षा और आक्षेपालंकारमें इस प्रकार कहा है....

शंखरूप शिव देव, महाशंख वानारसी ।

दोऊ मिले अबेच, साहिव सेवक एकसे ॥ २३७ ॥

रलेतारके कारण जैसी आजकलकी यात्रा सरल हो गई है, ऐसी उस समय नहीं थी । जो यात्रा आज १० दिनमें पूरी हो जाती है, उस समय उसमें १ वर्ष बीत जाता था । अतः मुकीम हीरानन्द-जीका संघ बहुत दिनके पीछे लौटके आया । आते २ अनेक लोग मर गये, अनेक बीमार हो गये, और अनेक लुट गये । खरगसेनजीको उदर रोगने घर दबाया । ज्यों त्यों बड़ी कठिनतासे संघके साथ अपने घर जौनपुर तक आये । जौनपुरमें संघका खरगसेनजीकी ओरसे यथोचित आतिथ्यसत्कार किया गया, पश्चात् यहीसे संघ बिखर गया, सब लोग अपने २ ग्राम नगरोंकी राह लग गये—

संघ फूटि चहुंदिशि गयो, आप आपको होय ।

नदी नाव संजोग ज्यों, बिछुर मिलै नहिं कोय २३३

खरगसेनजी घर रहकर धीरे २ स्वास्थ्य लाभ करने लगे । हाट-बाजारमें जाने आने लगे और पश्चात् प्रसन्नतासे रहने लगे । यात्रासे आनेके पहिले आपके एक पुत्रने जन्म लिया था, परन्तु वह दो

चार दिनसे अधिक नहीं ठहरा। इसी समय बनारसीदासके पुत्र हुआ। परन्तु उसकी भी वही दशा हुई।

संवत् १६६२ के कार्तिकमें बादशाह अलालुद्दीन अकबरकी मृत्यु आगरामें हो गई। यह खबर जिस समय जौनपुरमें आई, प्रजाके हृदयमें असीम आकुलताका उदय हुआ। इस आकुलताके अनेक कारण थे। एक तो आजकलकी नाई उस समय एक सम्भ्राट्का शरीरपात हो जानेपर दूसरा सम्राट् शान्तिताके साथ राज्यासनपर नहीं बैठ सकता था। विना खूनखराबी हुए तथा प्रजापर नाना अत्याचार हुए विना बादशाहत नहीं बदलती थी। दूसरे मुसलमानोंमें अकबर सरीखे प्रजाप्रिय बादशाह बहुत थोड़े होते थे। यद्यपि अकबरकी राजनीति अतिशय कूट कही जाती है, परन्तु प्रजा उसके राजत्वकालमें दुःखी नहीं रही, यह निश्चय है। आज उस प्रजावत्सल नरनाथकी परलोकयात्रासे प्रजा अनाथ हो गई। चारों ओर कोलाहल मच गया। लोगोंको विपत्ति मुंह फाड़के मय दिखाने लगी। सबने अपनी-२ जमा पूंजीकी रक्षामें चित्त लगाया—

घर घर दर दर दिये कपाट।

हटबानी नहिं वैठें हाट।

हँडवाई(?) गाढी कहुं और।

नकद माल निरभरमी ठौर॥

१ अकबरका देहान्त कार्तिक सुदी १४ संवत् १६६२ मंगलवारकी रात्रिको हुआ था, और दूसरे दिन बुधवारको उत्तरक्रिया हुई थी।

भले वल्ल अरु भूपन मले ।
 ते सब गाढे धरती तले ॥
 घर घर सबनि विसाहे शल्ल ।
 लोगन पहिरे मोटे वल्ल ॥
 ठाढो कंवल अथवा खेस ।
 नारिन पहिरे मोटे वेस ॥
 ऊंच नीच कोउ न पहिचान ।
 धनी दरिद्री भये समान ॥
 चोरि घाट् दीसै कहुं नाहिं ।
 यौं ही अपभय लोग डराहिं ॥ २५५ ॥

यह अशान्तिकी हवा दश बारह दिन बडे जोर शोरसे चलती रही । तेरहवें दिन शान्तिसूचक बादशाही चिट्ठियां आईं और घर २ बांट दी गईं । चिट्ठियां बांटते ही अशान्तिने विदा ले ली । सबाटा खिंच गया । घर २ जयजयकार होने लगा । जो धनी और गरीबोंका भेद उठ गया था, वह अब फिर आ डेंटा । धनियोंके वल्ल वेष चमकमाने लगे, बेचारे दरिद्री भीख मांगते हुए नजर आने लगे । चिट्ठीमें समाचार इस प्रकार थे—

प्रथम पातशाही करी, यावनवरप जलाल ।
 अब सौलहसै वासठै, कार्तिक हूथो काल ॥
 अकबरको नन्दन बड़ो, साहिब शाह सलेम ।
 नगर आगरेमें तख्त, बैठो अकबर जेम ॥ २६८ ॥

नाम धरायो नूरदी, जहांगीरसुलतान ।

फिरी दुहाई मुलकमें, जहँ तहँ वरती आन ॥ २६९ ॥

कविवर बनारसीदासजीका हृदय बहुत कोमल था, वे अकबरके घर्मरक्षादि गुण सुनकर बहुत प्रशंसा किया करते थे। अकबरकी मृत्युकी खबर जिस समय जौनपुर आई, उस समय ये घरकी सीढ़ीपर बैठे हुए थे, सुनते ही भूच्छा आ गई। शरीर सीढ़ीसे नीचे ढुलक गया, माथा फूट गया, खून बहने लगा और उसमें कपड़े सराबोर हो गये। माता पिता दौड़े हुए आये, पुत्रको गोदमें उठा लिया। पंखा करके पानीके छौंटे डालके भूच्छा उपशान्ति की गई; घावमें कपड़ा जलाके भरदिया गया। थोड़े समयमें अच्छे हो गये। नवीन बादशाहके तिलककी खुशीमें घर २ उत्सव मनाया गया। राज्यभक्त प्रजाने मिस्वारियोंको बहुत सा दान दिया।

पाठकोंको स्मरण रहै कि, अभी तक सदाशिवकी पूजन निरंतर हुआ करती थी, उसमें बनारसीने कमी भूल नहीं की। उस दिन एकान्तमें बैठे २ सोचने लगे।...

जयमें गिख्यो परख्यो मुखझाय ।

तय शिव कछु नहिं करी सहाय ! ॥

इस विकट शंकाका समाधान जब उनके हृदयमें न हुआ, तब उन्होंने सदाशिवजीका आसन कहीं अन्यत्र लगा दिया, और पूजन करना छोड़ दिया। बनारसीके नानारसी हृदयने इस समयसे ही पलटा खाया। उनके शरीरमेंसे बालकपन कभीका निकल गया था। युवावस्था विराजमान थी। विद्यादेवीने युवावस्थाकी सहचरी उन्मत्ततासे बहुत झगडा मचा रक्खा था, परन्तु कुसंगति और

स्वतंत्रताके कारण वह विजयलाम नहीं कर सकी थी । अब स्वतंत्रता गृहजंगलको देखके रफूचकर हो गई थी, बेचारी कुसंगतिको सदा साथ रहनेका अवकाश नहीं था । अतएव विद्यादेवी अपना काम कर गई । उसने कोमल हृदयमें कोमल शान्तिरसका बीज बो दिया । कविवर वनारसीदासजीके पास अब केवल शृंगाररसका गुजारा नहीं रहा ।

एक दिन संध्याके समय गोमती नदीके पुलपर वनारसीदास अपनी मित्रमंडलीके साथ समीरेसेवन कर रहे थे, और सरिताकी तरल-तरंगोको चित्तवृत्तिकी उपमा देते हुए कुछ सोच रहे थे । वगलमें एक सुन्दर पोथी दब रही थी । मित्रगण भी इस समय चुपचाप नदीकी शोभा देख रहे थे । कविवर आप ही आप बड़बड़ाने लगे “लोगोंसे सुना है कि, जो कोई एक बार भी झूठ बोलता है, वह नरकनिगोदके नाना दुःखोंका पात्र होता है । परन्तु न जाने मेरी क्या दशा होगी, जिसने झूठका एक पुंज बनाके रखा है । मैंने इस पोथीमें स्त्रियोंके कपोलकल्पित नखशिख हावमाय विभ्रमविलासोंकी रचना की है । हाय ! मैंने यह अच्छा नहीं किया- मैं तो पापका भागी हो ही चुका, अब परंपरा लोग भी इसे पढकर पापके भागी होंगे” । इस उच्चविचारने कविवरके हृदयको डगमगा दिया । वे आगे और विचार नहीं कर सके, और न किसीकी सम्मतिकी प्रतीक्षा कर सके । तत्क्षण गोमतीके उस अथाह और भीषण-वेगवृत्तप्रवाहमें उस रसिकजनोंकी जीवनरूपा स्वकृत नव्य-निर्मित पोथीको डालकर निश्चित हो गये । पोथीके पन्ने अलग २ होकर बहने लगे, और मित्र हाय २ करने लगे, परन्तु फिर क्या होता था ? गोमतीकी गोदमेंसे पोथी छीन लेनेका किसीने साहस नहीं

किया । सब लोग मन मारके अपने २ घर चले आये । कविवर भी प्रसन्नतासे अपने घर गये । पाठक ! एक बार विचार कीजिये, अमूल्य-रस-रत्नको इस प्रकार तुच्छ समझके फेंक देना और तत्काल विरक्त हो जाना, क्या रसिकशिरोमणिकी सामान्य उदारता हुई ? नहीं ! यह कार्य बड़ी उदारहृदयता और स्वार्थत्यागका हुआ । उस दिनसे कविवरने एक नवीन अवस्था धारण की—

तिस दिनसों बनारसी, करी धर्मकी चाह ।

तजी आसिखी फाँसिली; पकरी कुलकी राह ॥

खरगसेनजी पुत्रका उक्त वृत्तान्त सुनकर बहुत हर्षित हुए । उन्हें आशा हो गई कि, मेरे कुलका नाम जैसा आज तक रहा है, वैसा आगे भी रहेगा । पुत्रकी पूर्वावस्थासे साम्प्रत अवस्थाका मिलान कर वे चकित हो गये । निश्चय किया कि,—

कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाय ।

जैसे बालककी दृशा, तरुण भये मिट जाय ॥२७२॥

और—

उदय होत शुभकर्मके, भई अशुभकी हानि ।

तातें तुरत बनारसी, गही धर्मकी वानि ॥ २७३ ॥

थोड़े ही समयमें क्या से क्या हो गया । जो बनारसी संसारके एक क्लेशजन्यरसके रसिया थे, वे ही अब जिनेन्द्रके शान्तरसके वशमें हो गये । अबौस पडौसके लोग तथा कुटुम्बीजन जिसको कल गली कूचोंमें मटकते देखते थे, आज उसी बनारसीको जिन-मन्दिरको अष्टद्रव्ययुक्त जाते देखते हैं । जिनदर्शन किये बिना

१ आशिकी । २ फासिकी अर्थात् पापकर्म ।

भोजनके त्यागकी प्रतिज्ञायुक्त देखते हैं। चतुर्दश नियम, व्रत, सामा-
यिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमणादि नामा आचार-विचार-युक्त देखते हैं।
और देखते हैं, सचे हृदयसे सम्पूर्ण क्रियाओंको करते। स्वभावका
इस प्रकार पलटना बहुत थोड़ा देखा जाता है।

तव अपजसी वनारसी,

अव जस भयो विख्यात ॥

खरगसेनजीके दो कन्या थी, जिसमेंसे एक तो जौनपुरमें
विवाही गई थी, दूसरी कुमारी थी। इस वर्ष अर्थात् संवत् १६६४
के फाल्गुणमासमें पाटलीपुर (पटना)में किसी धनिकके पुत्रसे
उसका भी विवाह कर दिया गया। कन्याका विवाह सानन्द हो
चुकनेपर इसी वर्ष—

बानारसिके दूसरोः भयो और सुतकीर ।

दिघस कैकुमें उड़ि गयो, तज पिंजरा शरीर ॥ २८० ॥

इस पोतेके मरनेसे खरगसेनजीको विशेष दुःख रहा। परन्तु
तीन वर्षतक पुत्रके रंग ढंग अच्छे रहे, यह देखकर उन्हें बहुत कुछ
शान्तवन भी मिलता रहा। संवत् १६६७ में एकदिन खरगसेनजीने
पुत्रको एकान्तमें बुलाके कहा “बेटा! अब तुम सयाने हो गये।
हमारा वृद्धकाल आया। पुत्रोंका धर्म है कि, योग्य-वय-प्राप्त होनेपर
पिताकी सेवा करें, इस लिये अब तुम यह घरका सब कार्यभार
संभालो और हम दोनोंको रोटी खिलाओ” यह सुनके पुत्र लज्जावनत
हो रहा, उससे कुछ कहा नहीं गया। पिताका प्रेम देखके आंखोंमें आसू
भर लाया। उसी समय पिताने अपने हाथसे पुत्रको गोदमें लेके हरि-
द्राका तिलक कर दिया, और घरका सब काम सौंप दिया। पीछे

दो मुद्रिका, चौबीस माणिक, चौतीस मणि, नौ नीलम, बीस पद्मा, और चार गांठ फुटकर चुनी, इस प्रकार-तो जवाहिरात, और २० मन धीव, दो कुप्पे तैल, दौ सौ रुपयाका कपडा इस प्रकार माल और कुछ नकद रुपया देकर व्यापारके लिये आगराको जानेकी आज्ञा दी। पुत्रने आज्ञा शिरोधार्य करके सब माल गाड़ियोंपर लदाके अनेक साथियोंके साथ आगरेकी यात्रा कर दी। प्रतिदिन ५ कोसके हिसाबसे चलके गाड़ियां इटावाके निकट आई, वहां मंजिल पूरी हो जानेसे एक ऊजड़ स्थानमें डेरा डाल दिया। थोड़े समय विश्राम कर पाये थे, कि मेघ उमड़ आये, अंधकार हो गया, और लगा मूसलधार पानी बरसने। साथके सब लोग गाड़ियां छोडके इधर उधर भागने लगे। कुछ लोग पयादे होकर शहरकी सरायमें गये, परन्तु सरायमें कोई उमराव ठहरे हुए थे, इससे स्थान खाली नहीं मिला। बाजारमें भी कोई जगह खाली नहीं देखी, आंधी और मेघकी झड़ीके मारे घर २ के कपाट बन्द थे, कहीं खड़े होनेका भी ठिकाना नहीं पडा। कबिबर कहते हैं—

फिरत फिरत फावा मये, बैठन कहै न कोय ।

तलैं कीचसों पग भैं, ऊपर बरसत तोय ॥ २९४ ॥

अंधकार रजनी विपै; हिमरितु अगहनमास ।

नारि एक बैठन कह्यो; पुरुष उछ्यो लै बाँस ! ॥ २९६ ॥

नगरमें जब रातनिकालनेका कहीं भी ठीक न पडा, तब लाचार होके गोपुरके पार एक चौकीदारकी झोपडी थी, वहां आये, और चौकीदारोंको अपनी सब आपत्ति कह सुनाई। चौकीदारोंका

हृदय इन बेचारोंकी कथा सुनके पिघल आया। उन्होंने कहा अच्छा आज रातभर आप लोग यहां आनन्दसे रहो, हम अपने घर जाके सोवेंगे। परन्तु इतना ध्यान रखना कि, सबेरे नगरका हक्किम आवेगा, वह बिना तलाशी लिये नहीं जाने देगा, इस लिये उसे कुछ दे लेके राजी कर लेना। चौकीदार चले गये, इन लोगोंने पानी लाके हाथ पैर धोये, गीले कपड़े सूखनेको ढाल दिये और प्याल विछाके सबके सब विश्रामकी चिन्तामें लगे। लोगोंकी आँखें झपती ही जाती थीं, कि इतनेमें एक जवर्दस्त आदमी आया, और रुग्णा डांट डपट बतलाने। तुम लोग किसके हुक्मसे यहां आये? कौन हो? यहाँसे अब शीघ्र चले जाओ, नहीं तो अच्छा नहीं होगा इत्यादि। इस नवीन आपत्तिसे भयभीत होके बेचारे उठ बैठे, और बिना कुछ कहे हुन चलेने लगे। परन्तु इन लोगोंकी तत्कालीन दशा देखके पत्थर भी पसीजता था, नवागन्तुक तो आदमी ही था। इनके सीधेपनको देखके उससे न रहा गया, जाते हुए छोट्टा लिया और अपना एक टाट विछानेको दे दिया। चौकीमें जगह इतनी थोड़ी थी कि, सोना तो दूर रहा, चार आदमी सुभीतेसे बैठ भी नहीं सकते थे। तब टाटपर नीचे तो दुखिया बनारसी तथा उनके साथी सोये और ऊपर छाट विछाके नवागन्तुक अपने पांव फैलाके सोया। समय पडनेपर इतनी ही गनीमत है! ज्यों त्यों राति पूरी हो गई, सबेरे देखा तो, वर्षा बंद हो चुकी थी, आकाश निखरके निर्मल हो गया था। उठके अपनी २ गाड़ियोंपर आये, और मार्गका सुभीता देखके गाड़ी चला दीं। आगरा निकट आ गया। बनारसीदासजी सोचने लगे, कहां जाना चाहिये? माल कहां उतराना चाहिये? और मुझे कहां ठहरना चाहिये? क्योंकि उन्हें

व्यापारके लिये घरसे बाहिर निकलनेका यह पहिला ही अवसर था । निदान चित्तमें कुछ निश्चय करके गाड़ियोंको पीछे छोड आप मोतीकटलेमें पहुंचे । आपके छोटे बहनेठ, वन्दीदासजी चांपसी-के घरके पास रहते थे, उन्हींके यहां गये । बहनेऊने सालेका यथोचित सत्कार किया । दो चार दिनमें बहनेऊकी सम्मतिसे एक दूसरा मकान किराये से लिया और उसमें सब माल असबाब रखके बेचना खर्चना आरंभ कर दिया ।

पहिले कपडा बेचके उसका हिसाब तयार किया तो, आजमूल देके कुछ घाटा रहा, पश्चात् धीव तैल बेचा, उसका भी यही हाल हुआ, केवल चार रुपया लाभमें रहे । कपडा और धी तैलकी विक्रीका रुपया हुंडीसे जौनपुर भेज दिया और सबके पीछे जवाहिरातपर हाथ लगाया । बनारसीदास व्यापारसे अभी तक एक तो प्रायः अनभिज्ञ थे, दूसरे आगरेका व्यापार ! । अच्छे २ ठगा जाते हैं, इनकी तो बात ही क्या थी । जिस तिसको साधु असाधुकी जांच किये बिना ही आप जवाहिरात दे देते थे, और उसके साथ जहां चाहे तहां चले जाते थे । जौहरियोंके लिये यह बर्ताव बड़े धोखेका है । परन्तु अच्छा हुआ कि, किसी लुच्चे लकंगेकी दृष्टि नहीं पड़ी । तौ भी अशुभ कर्मका उदय था, इजारबन्दके नारेमें कुछ छूटा जवाहिरात बांध लिया था, वह न मालूम कहां खिसककर गिर गया । माल बहुत था, इससे चोट भी गहरी लगी, परन्तु किसीसे कुछ कहां नहीं । आपत्तिपर आपत्तियां प्रायः आती हैं । किसी कपडेमें कुछ माणिक बंधे थे, वे डेरेमें रक्खे थे उन्हें चूहे कपडे समेत ले गये । दो जबाऊ पहुंची किसी शेटको बेचीं थी, दूसरे दिन उसका दिवाला निकल गया ! एक जबाऊ मुद्रिका थी, वह

सबकपर गांठ लगाते हुए बीचों बीच गिर पड़ी, परन्तु जब बीचों देखा तब कुछ भी पता नहीं लगा, न जाने किस उठाड़गैरेके हाथमें सफाईमें पड़ गई । इन एकपर एक आई हुई अनेक आपत्तियोंमें बनारसीदास कोमलहृदय क्रमिषित हो गया । और संघाको सूच जोरमें ज्वर चढ़ आया । चिन्ताके कारण बीमारी बढ़ गई । वैद्यने दश कौरी लंघनें करवाई, पीछेसे पथ्य दिया । पथ्यके पश्चात् अशक्तिके कारण महीने भर तक बाजारका आना जाना नहीं हुआ । इस बीचमें सित्तके अनेक पत्र आये, परन्तु किसीका भी उत्तर नहीं दिया । तौ भी बात छुपी नहीं रही । उत्तमचन्द्र जौहरी जो आपके बड़े बहनेक थे, उन्होंने खरगसेनजीको अपने पत्रमें लिख भेजा कि, बनारसीदास जमा पूंजी सब खोके भिखारी हो गये हैं ! उस खबरसे खरगसेनजीके घरमें रोना पीटना होने लगा । उन्होंने अपनी स्त्रीकी सम्मतिसे बनारसीको घरका और बांधा था, इसलिये लोभसे कलह पूर्वक कहने लगे कि "मैं तो पहिले ही जानता था कि, शूत धूल लगावेगा, परन्तु तूरे कहनेसे तिरक किया था, उसका यह फल हुआ—

कहा हमारा सब धया, भया भिखारी पूत ।

पूंजी खोई बेइया, गया बनज गय सूत ॥ ३३१ ॥

यहां बनारसीदासजी जो कुछ वस्तु पासमें थी, सो सब बेच २ के खाने लगे, और इसतरह जब पासमें केवल दो चार टके रह गये, तब हाट बाजारका जाना भी छोड़ दिया । दिन व्यतीत

करनेके लिये मृगावती और मधुमालती नामक पुस्तकोंको डेरमें बैठे हुए पढ़ा करते थे। पोथियोंको सुननेके लिये दो चार रसिक-पुरुष भी पास आ बैठते थे, और प्रसन्न होते थे। श्रोताओंमें एक कचौड़ीवाला था, उसके यहांसे आप प्रतिदिन दोनों वक्त कचौड़ी उधार लेके खाया करते थे। जब उधार खाते २ बहुत दिन बीत गये, तब एक दिन पोथी सुनकर जाते हुए कचौड़ीवालेको एकान्तमें बुलाकर लजित होते हुए आपने कहा कि,—

तुम उधार कीन्हों बहुत, आगे अब जिन देहु।

मेरे पास कछू नहीं, दाम कहांसों लेहु? ॥

१ मृगावती यह एक कल्पित कथा है। इसके बनानेवाले कविका नाम कुतुबन था। कुतुबन जातिके मुसलमान थे और विक्रम संवत् १५६० के लगभग विद्यमान थे। शेख बुरहानके दो चले थे, एक कुतुबन और दूसरा मलिक मुहम्मदजायसी। ये दोनों ही हिन्दीके अच्छे कवि हो गये हैं। मलिक मुहम्मदजायसीका पद्मावतकाव्य हिन्दीमें एक उत्कृष्ट श्रेणीका ग्रन्थ है। यह काव्य मृगावतीसे २७ वर्ष पीछे बनाया गया है। मृगावतीकी कथा जिस प्रकार देव और परियोंकी असम्भववातोंसे भरी है, उस प्रकार पद्मावतकी कथा नहीं है। पद्मावत ऐतिहासिक कथाके आधारपर लिखा गया है, और मृगावती केवल कल्पनाका प्रवन्ध है। परन्तु मृगावती कल्पितप्रवन्ध होनेपर भी सुन्दरता और सरलतासे कूट २ कर मरा है, इससे रसिकोंका जी उसे बिना पढ़े नहीं मानता। विपत्तिके समय कविवरके चित्तको इससे अवश्य विधान मिलता होगा। कुतुबन जैनपुरके बादशाह शेरशाहसूरके पिता हुसैनशाहके आश्रित थे, ऐसा समालोचक भाग ३ अंक १७-२८-२९ में प्रकाशित हुआ है, परन्तु शेरशाहको हुसैनशाहका वेदा बतलानेमें भूल हुई जान पड़ती है। क्योंकि शेरशाहका जैनपुरके हुसैनशाहसे कुछ

कचौरीवाला मला आदमी था, वह जानता था कि, बनारसीदास कोई अविश्वस्त पुरुष नहीं है, किन्तु एक विपत्तिका मारा हुआ व्यापारी है। उसने कहा कि, कुछ चिन्ताकी बात नहीं है। आप उधार लेते जावें, मेरे द्रव्यकी परवाह न करें, और जहां जी चाहे, आवें जावें। समयपर मेरा द्रव्य वसूल हो जावेगा। इस सज्जनकी बातका बनारसीदास और कुछ उत्तर न दे सके, और पूर्वोक्त क्रमसे दिन काटने लगे। छह महीने इसी दशमं बीत गये। एक दिन मृगावतीकी कथा सुननेको तावीताराचन्दजी नामके एक पुरुष आये। यह रिस्तेमें बनारसीदासजीके श्वसुर होते थे। कथाके हो चुकनेपर उन्होंने बनारसीदासजीसे पहिचान निकालके बड़ा रोह प्रगट किया और एकान्तमें ले जाके प्रार्थना की कि, कल प्रभातकाल

सम्बन्ध नहीं था। वह शूर जातिका पठन था और उसका असली नाम फरीद, बापका हसन और दादाका इमाहीम था। इमाहीम घोड़ोंका व्यापार करता था, परन्तु उसका बेटा हसन व्यापार छोड़के सिपाही बना और बहुत दिनोंतक रायमल खेखावतकी नौकरी करता रहा। वहांसे मुलतान सिकन्दर लोदीके अमीर नसीरखाने पास नौकर रहा। फरीद बापसे रूठकर पहिले लोदी पठानों और फिर बाबरयादशाहके मुगल अमीरोंके पास रहा। बाबरने इसकी आंखोंमें फसाद देखकर पकड़नेका हुक्म दिया, जिससे वह भागकर सहस्रमके जंगलोंमें छुट मार करने लगा। फिर बिहार और बंगालेका मुल्क दबाते २ हुमायूँ बाहशाहसे लड़ा और उनको निकालके संवत् १६९७ में हिन्दुस्थानका बादशाह बन बैठा।

२ मधुमालती इसारे देखनेमें नहीं आई, इसके बनानेवाले कवि चतुर्भुजदासनिगम (कावस्थ) हैं। इस ग्रन्थकी रचना भी संवत् १६०० के लगभग हुई जान पड़ती है। मधुमालतीको श्लोकसंख्या १२०० है। कहते हैं कि, यह एक प्राचीनपद्धतिका पद्यबन्ध उपन्यास है।

मेरे घरको आप अवश्य ही पवित्र करें। ऐसा कहकर चले गये और दूसरे दिन फिर लिबानेको आ पहुंचे। बनारसीदासजी साथ हो लिये, इधर श्वसुर महाशय अपने एक नौकरको गुप्तरीतिसे आज्ञा दे गये कि, तू इस मकानका भाड़ा वगैरह चुकाकर और डेरा डंडा उठाकर अपने घर पीछेसे ले आना। नौकरने आज्ञाकी पूरी २ पालना की। भोजनोपरान्त बनारसीदासजीपर जब यह बात प्रगट हो गई, तब श्वसुरने हाथ जोड़के कहा कि, इसमें आपको दुःखी नहीं होना चाहिये। यह घर आपका ही है, आप यदि प्रसन्नतासे रहें, तो मैं अत्यन्त प्रसन्न होऊंगा। संकोची बनारसीदासजी कुछ कर न सके और श्वसुरालयमें रहने लगे। दो महीने बीत गये। व्यापार करनेकी चिन्ता रात्रि दिन सताती रही, निदान धरमदास जौहरीके साझेमें व्यापारका प्रयत्न किया। जसू और अमरसी दो भाई थे, यह जातिके ओसवाल थे। अमरसीका पुत्र धरमसी अथवा धरमदास जौहरी था। धरमसीका चालचलन अच्छा नहीं था, थोड़ीसी उमरमें ही उसके पीछे अनेक व्यसन लग चुके थे। इन व्यसनोसे पीछा छुड़ानेके लिये ही बनारसीदासजीकी संगति उसके बापने तजबीज की और निरन्तर समागम रखनेके लिये ५००) की पूंजी देकर दोनोंको सांझी बना दिया।

दोनों सांझी माणिक, मणि, मोती, चुनी आदि खरीदने और बेचने लगे। कुछ दिनोंमें जब बनारसीदासजीने थोड़ासा द्रव्य क-

१-२ ये दोनों नाम कच्छी तथा गुजरातीसे जान पड़ते हैं। उस समय आगरा राजधानी थी, इससे वहां भिन्न २ प्रान्तवालोंने आकर दूकाने की थीं।

माया, तब कचौरीवालेका हिसाब कर उसके रुपया चुका दिये । कुल १४) चौदह रुपयाका जोड़ हुआ । पाठको ! वह कैसा समय था, जब आगेरे सरीखे शहरमें भी दोनो वक्की पूरी कचौरियोंका खर्च केवल दो रुपया मासिक था ! और आज कैसा समय है, जब उन दो रुपयोंमें एक सप्ताहकी भी गुजर नहीं होती !! भारतवासियोंको इस अंग्रेजी राज्यमें भी क्या वह समय फिर मिलेगा ? इस सांझेके व्यापारमें दो वर्ष पूरे हो गये, पर विशेष लाभ कुछ नहीं हुआ, इससे बनारसी विपादयुक्त हुए और आगरा छोड़ देनेका विचार किया । जस-साहुसे सांझिका सब हिसाब किया तो, दो वर्षकी कमाई २००) निकली, और इतना ही खर्च बैठ गया । चलो छुट्टी हुई, हिसाब बराबर हो गया । कविवर कहते हैं—

निकसी थोथी सागर मथा, ।

भई हींगवालेकी कथा ॥

लेखा किया रूखतल पैठि,

पूँजी गई * * में पैठि ॥ ३६७ ॥

आगरा छोड़के आप खैराबाद (ससुराल) को जानेके विचारमें थे, कि एकदिन बाजारसे लौटते हुए सड़कमें एक गठरी पड़ी हुई मिली, उसमें आठ सुन्दर मोती बंधे थे । बड़ी खुशी हुई । धनार्थी मोही-जीवको प्रसन्नता ओर कब होगी ? बड़े यत्नसे मोती कमरमें लगा-लिये । और दूसरे दिन रास्ता नापने लगे । रात्रिको श्वसुरालयमें पहुंचे वडे आदरसे लिये गये; सबको प्रसन्नता हुई । समयपर भार्यसे एकान्त समागम हुआ । सामान्य संयोगसे, सामान्य प्रेमसे, सामान्य आनन्दसे हमारे दम्पतिका यह संयोग, प्रेम, आनन्द कुछ विलक्षण ही था ।

पतिप्राणा स्त्री पतिके सम्मुख कुछ समयको स्तम्भित हो रही, कुछ समयको पति भी स्थकित हो रहा । दोनोंके पौद्गलिक शरीरोंने इस प्रकार सब ओरसे मौन धारण कर लिया । परन्तु यह शरीर किया ऐसी ही नहीं बनी रही, पतिप्राणास्त्रीने साहस करके कुछेक अस्फुटित स्वरोंसे प्राणपतिकी शारीरिक कुञ्चलता पूछी, और स्वामीसे सुन्दर शब्दोंमें उत्तर पाया । पश्चात् व्यापारसम्बन्धी प्रश्न किये, जिनका उत्तर पतिने सनगदन्तकरके अयथार्थ देना चाहा, क्योंकि बीती कथा कहनेके योग्य नहीं थी, परन्तु अर्द्धांगिनी भावमंगीसे उनका वाक्छल ताड़ गई, और अपनी स्नेहचतुराईसे शीघ्र ही पतिका आन्तरिक विषय जाननेमें सफलमनोरथा हुई । बनारसीदासजी अपनी प्रियतमासे कुछ छुपाकर न रख सके । जिन दम्पतियोंके दो शरीर एक मन हैं, उनके बीचमें कपट को स्थान कब मिल सका है ? पतिकी दशाका अनुमानकर साध्वी स्त्रीने आजकलकी क्रियाओंकी नाईं पैसेकी प्रीति नहीं दिखलाई । बड़ी गंभीरतासे पतिको आश्वासन दिया और कहा—

समय पायके दुख भयो, समय पाय सुख होय ।

होनहार सो है रहै, पाप पुण्य फल दोय ॥ ३७६ ॥

इसप्रकार नाना सुखशोकके संभाषणोंमें और संयोग वियोगके चिन्तनमें रात्रिकाल शेष हो गया । संयोगकी रातें बहुत छोटी होती हैं ! शीघ्र ही सबेरा हो गया । दिवसमें एकान्त पाकर उस पतिप्राणा स्त्रीने अपने पतिके करकमलोंमें २०) ५० कहींसे लाके रखे और हाथ जोरके कहा—

ये मैं जोरि धरे थे दाम । आये आज तुम्हारे काम ।

साहिब! चिन्त न कीजे कोय । 'पुरुष जियै तो सब कछु होय॥'

अहाहा ! यह अन्तका वनितायदन-विनिर्गत-पद कैसा मनोहर है ? ऐसे शब्द भाग्यवान् पुरुषोंके अतिरिक्त अन्यपुरुषोंको सुनना नसीब नहीं होते । उस वन्दनीय स्त्रीकी तृप्ति इतनेहीमें नहीं हुई, उसने एकान्त पाकर अपनी माताकी गोदमें सिर रख दिया और फूट २ के रोने लगी । पतिकी आर्थिक अवस्थाके शोकसे उसका हृदय कितना विद्ध हुआ है, सो माताको खोलके दिखलाने लगी । बोली—“जननी ! मेरी लज्जा अब तेरे हाथ है । यदि तू साहाय्य नहीं करेगी, तो प्राणपति-सर्वस्व न जानें क्या करेंगे । वे इतने लज्जालु हैं कि, अपने विषयमें किसीसे याच्या तो दूर रहे, एक अक्षर भी नहीं कह सके । मुझसे न जाने उन्होंने कैसे कह दिया है । उनका चित्त बहुत डांवाडोल है । वे न तो घर जाना चाहते हैं और न यहां रहना चाहते हैं, परन्तु यदि तू कुछ आर्थिक सहायता करेगी, तो व्यवसाय अवश्य ही करने लगेंगे ।” (घन्य पति-व्रते !), पुत्रीके हृदयदुःख को जानकर माताने आश्वासन देते हुए आंसू पोंछकर कहा, “बेटी ! उदास-निराश मत हो । मेरे पास ये दोसौ रुपये हैं, सो तुझे देती हूं, इससे वे आगरेको जाकर व्यापार कर सकेंगे” (घन्य जननी !)

पुनः रात्रि हुई । दम्पति समागम हुआ । पति परायणा साध्वीने अपने कोकिल-कण्ठ-विनिन्दित-स्वरसे ललायितनेत्रोंद्वारा पतिकी सुखच्छवि अवलोकन करते हुए कहा “नाथ ! मैं समझती हूं कि आप जौनपुर जानेके विचारमें नहीं होंगे, और यथार्थमें वहां जाना इस दशामें अच्छा भी नहीं है । मेरे कहनेसे आप आगरेको एक बार फिर आइये ! एक बार फिर उद्योग कीजिये ! अबकी बार अवश्य ही आप सफलमनोरथ होंगे । मैं दोसौ रुपया और भी आपको

देती हूँ। इन्हें मैंने अपने प्राणोंमेंसे निकाले हैं। आप ले जाइये और व्यापारमें लगाइये।” भाग्यशाली बनारसी भार्याकी कृतिपर अवाक् हो रहे। हां, न, कुछ भी नहीं कहा गया। रजनी विविधविचारोंमें पूर्ण हो गई।

दूसरे दिनसे व्यापारकी ओर चित्त लगाया गया। कपड़ा, मोती, माणिक्यादि खरीदना शुरू किया। इस तयारीमें और श्वसुरालयके सत्कारमें चार महीने गत हो गये। अवकाश बहुत मिला, इसलिये कविता भी समय २ पर अल्पबहुत की गई। अजितनाथके छन्दों और ध्वनंजयनाममालाके दोसौ दोहोंकी रचना इसी समय की। पश्चात् अगहनसुदी १२ को माल भराके आगरेकी ओर रवाना हुए।

अबकी बार कटलेर्म माल उतारा। समयपर श्वसुरके घर भोजन करना, बाजारमें कोठीपर सोना, और दिनभर दूकानमें बैठना, वस यही उस समयका नित्यकर्म था। समयकी बलिहारी! कपड़ेका भाव बिलकुल गिर गया। विक्री एकदम गिर गई। अतः बजाजीसे हाथ धोकर मोती माणिक्योंमें चित्त दिया। मोतीका एक हार जो ४०) में खरीदा था, ७०) में बेचा। ३०) लाभ हुआ, इससे संतोष हुआ। तब आपने विचार किया, कि आगामी कपड़ेका व्यापार कभी नहीं करना, जवाहिरातका ही करना। देखो! सहज ही पौन दूने हो गये।

श्रीमाल-खोबरामोवज बणीदासजीके पौत्र नरोत्तमदास, बालचन्द्र और बनारसीदास इन तीनोंमें बड़ी गाढ़ी मैत्री थी। ये तीनों रात्रिदिन

१ बनारसीबिलास-पृष्ठ १९३।

२ नाममाला एकवार हमारे देखनेमें आई थी, परन्तु फिर बहुत खोज करने पर भी नहीं मिली। बड़ी अच्छी-सरल कविता है।

एकत्र रहकर आमोद प्रमोदमें सुखमें कालयापन कर्तं थे । एक दिन तीनों मित्र एक विचार होकर कोल (अन्तीगढ़) की यात्राको गये । वहाँ संसारकी प्रबल-तृष्णाकेवरीभूत होकर भगवत्से प्रार्थी हुए—

* * * * * । हमको नाश ! लच्छमी देहु ।

लच्छमी जब देहो तुम तात । तब फिर करहिं तुम्हारी जांता ।

हाय ! यह लक्ष्मी ऐसी ही वस्तु है । यह भगवत्से संसारक्षयकी प्रार्थनाके बदले संसारवृद्धिकी प्रार्थना कराती है और किये हुए शुभ-फल-प्रदायक-पुण्यकर्मरूप वृक्षको इस याचना और निदानके कुष्ठारसे काट डालती है । आज भी न जाने कितने लोग इसके कारण देवी देवताओं को मना रहे होंगे ! वस, यहाँ प्रार्थनावरके हमारे तीनों मित्र घरको लौट आये, कोलकी यात्रा ममाप्त हुई ।

काल्पुषमें बालचन्दका विवाह था । बरातकी तयारी हुई । मित्रने बनारसीदासजीसे साथ चलनेको अतिशय आग्रह किया । तब अन्तर्द्वय्य सोती आदि बेचके ३२) रुपया पासमें किये और बरातमें शामिल हो गये, नरोत्तमदासको भी साथ जाना पड़ा । बरातमें सब रुपया खर्च हो गये । लौटके आगे आये और खैरावादी कपड़ेको धारके फरोस्त कर दिया, परन्तु हिसाब किया तो मूल और व्याज देके ४)६० घाटेमें रहे ! अदृष्टको कौन जानता है ? आपारकार्य निःशेष हो चुकनेपर घरको जानेका दृढ़निश्चय कर लिया । परन्तु मित्रवर्ग नरोत्तमदासजीने कहा—

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।

माईसों क्या मित्रता ? कपटीसों क्या नेह ? ४०६

इस पर बनारसीदासजीने बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। मित्रके यहां रहना ही पड़ा।

कुछ दिनेके पश्चात् साहुकी आज्ञासे नरोत्तमदास, उनके श्वसुर, और बनारसीदासजी तीनों पटनाकी ओर रवाना हुए। सेवक कोई साथमें नहीं लिया। फीरोजाबादसे शाहजादपुरके लिये गाड़ीभाड़ा किया। शाहजादपुरमें पहुंचते ही माड़ेवालेने अपना रास्ता पकड़ा। सरायमें डेरा डाल दिया। मार्गकी थकावटके मारे तीनोंको पड़ते ही गहरी निद्राने घेर लिया। एक ग्रहरके बाद जब एक मित्रकी निद्रा-टूटी, उस समय चांदनी का कुछ धुंधला २ उजेला था, इसलिये उसने समझा कि, प्रभात हो गया। अतः दोनों साथियोंको जगाया और उसी वक्त कूच कर दिया। एक कुली किरायेपर करके अपने साथ कर लिया, और उसपर बोझा लाद दिया। परन्तु दो चार कोस चलकर ही रास्ता मूल गये। एक बड़े वीहड़ जंगलमें जा फँसे। कुली रोने लगा और थोड़ा बहुत चलकर नौ दो ग्यारह हो गया। बड़ी विपत्ति उपस्थित हुई। उस जंगलमें इन दुखियोंके सिवाय चौथा जीव ही न था, यदि सहायता मांगते तो किससे? अतः तीनोंने बोझके तीन हिस्से करके अपने २ सिरके हवाले किये और लगे रोते गाते रास्ता काटने। आधी रातके पश्चात् आपत्तिके मारे एक चोरोंके ग्राममें पहुंचे। पहिले पहिले चोरोंके चौधरीसे ही सामना हुआ। उसने पूछा कि, तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? इस समय सबके होश गायब थे, क्योंकि इस ग्रामकी कथा पहिलेसे सुनी हुई थी। परन्तु बनारसी-दासजीकी बुद्धि इस समय काम कर गई, उन्होंने अपना कल्पित नामग्राम बताके एक श्लोक पढ़ा और उच्चस्वरसे चौधरीको आशीर्वाद दिया। श्लोकयुक्त आशीर्वाद सुनके चौधरी कुछ मृदु हुआ। उसने ब्राह्मण समझके दंडवत् किया और बड़े आदरके

साथ अपने घर ले गया । तथा “आप लोग मार्ग भूल गये हैं, रात्रिभर विश्राम कर लें, प्रातः आपको रास्ता बतला दिया जावेगा” इस प्रकार वचनामृत कहके संतोषित किया । सशंकितचित्त मित्र चौधरीके घर ठहर गये । जब चौधरी अपने शयनागारमें चला गया, तब तीनोंने सूत बटकर जनेऊ बनाकर धारण किये और मिट्टी घिसके मस्तक त्रिपुण्ड्रोंसे सुशोभित किये । यथा—

माटी लीन्हों भूमिसों, पानी लीन्हों ताल ।

विप्रवेप तीनों धरथो, टीका कीन्हों भाल ॥ ४२४ ॥

नानाप्रकारकी चिन्ताओंमें रात बिताई । सूरज निकलनेके पहिले ही हयारूढ़ चौधरीने आकर प्रणाम किया । विप्रोंने आशिष दी, और बोरिया बसना बांदके तीनों साथ हो गये । तीन कोस चलनेपर फतहपुरकी रास्ता मिलगई, तब चौधरी तो शिष्टाचारपूर्वक अपने घरको लौटा, और ये दो कोस चलने पर फतहपुर मिला, वहां दो मजदूर करके इलाहाबास गये । सरायमें डेरा लिया । गंगाके तट पर रसोई बनाके भोजन किये । पश्चात् बनारसीदासजी घूमनेके लिये नगरमें निकले । एक स्थानमें अचानक पिता खरगसेनजीके दर्शन हो गये । पुत्र पिताके चरणोंसे लपट गया, परन्तु पिताका चिरपुत्रवियोगी हृदय इस अचानकसम्मिलनको सह न सका, खरगसेनजीको तत्काल ही मूर्च्छा आ गई ।

बनारसीदास और नरोत्तमदास दोनों एक डोली भाड़े करके और उसमें खरगसेनको सवार कराके जौनपुर आये । फिर जौनपुरमें दो चार दिन ठहरके व्यापारके लिये बनारस आये । बनारस जाकर पार्श्वनाथ परमेश्वरकी पूजन की । इस समय हार्दिक

भक्तिका अतिशय उद्गार हुआ। अतः दोनों मित्रोंने सदाचारकी अनेक प्रतिज्ञायें कीं—

मदिल ।

सांझ समय दुविहार, प्रात नवकार सहि ।

एक अधेली पुण्य, निरन्तर नेम गहि ॥

नौकरवाली एक, जाप नित कीजिये ।

दोप लगै परमात, तो घीव न लीजिये ॥ ४३७ ॥

दोहा ।

मारग घरत यथा शक्ति, सब चौदस उपवास ।

साखी कीन्हें पार्श्वजिन, राखीं हरी पचास ॥

दोय विवाह सु सुपति छै, आगे करनी और ।

परदारा संगम तज्यो, दुई मित्र इक ठौर ॥ ४३९ ॥

भगवत्की पूजन करके दोनों मित्र घर आये। भोजनादि करके हंसी खुशीकी बातें कर रहे थे, इतनेमें पिताकी चिट्ठी मिली। उसमें अत्यन्त दुःखप्रद समाचार थे। “तुम्हारे तीसरे पुत्रका जन्म हुआ, परन्तु १५ दिनके पीछे ही वह चल बसा, साथमें अपनी माताको भी लेता गया।” वस इससे आगे और नहीं पढ़ा गया। शोकसे छाती फटने लगी, आँखोंसे आंसुओंकी धारा खर २ वहने लगी। अपनी सुयोग्य सहर्षमिणीके अलौकिक गुणों और भक्तिभावों को स्मरण करकर उनके हृदयकी क्या दशा थी, इसका अनुमान हम लोग नहीं कर सके। “हाय! बेचारीसे अन्तसमय भी न मिल सके, एकवार उसके पिपासित नेत्रोंको भरे ये लालायित नेत्र भी न देख सके। मैंने बड़ा भारी अपराध किया, जो उसकी दुःखावस्थामें साहाय्य न

किया । न जाने बेचारीके प्राण कैसे दुःखसे छूटे होंगे । सतीसाधि !

मैं तुम्हारी नकिका कुछ भी बदला न दे सका, क्षमा करना । ”

इस प्रकारके ठयल पुकल विचारोंमें नम्र बनारसीको नरोत्तम-

दासने नाना उपदेशोंसे सचेत किया और विट्ठी भूरी पढ़नेको कहा ।

तब वैष्णवसम्पन्न करके बनारसी आगे पढ़ने लगे, वह लिखा या ।

“तुम्हारी सारी अर्थात् बहूकी छोटी बहिन कुँआरी है । तुम्हारी

ससुरालसे एक ब्राह्मण उसकी सगाईकी बातचीत ठेके आया था,

सो मैंने तुमसे बिना पूछे ही शुभसहृत् शुभदिनमें सगाई पक्की करली

है । भरोसा है कि, तुम मेरी इस कृतिसे अपसन्न नहीं होओगे ।”

इन हितसूचक समाचारोंको पढ़कर कविवरने कहा—

एकवार ये दोऊ कथा । संडासी लुहारकी यथा ।

छिनमें अग्निनि छिनक जलपात । ल्यों यह हर्पशोककी बात ॥

अपने गृहसंसारके इस प्रकार अचानक परिवर्तनसे किसको

शोक-वैराम्य नहीं होता ? सबको होता है और अधिक होता है ।

परन्तु खेद है कि, मोहमाया-परिवेष्टित-चित्तमें यह स्मशान-वैराम्य

विरकाळ तक नहीं रहता । जगतके वास्तविक निश्चयानुसार चरते

ही रहते हैं, किसीके मरने वा जन्मलेनेसे उनमें अन्तर नहीं आता ।

बनारसीदासजीकी भी यही दशा हुई । थोके दिनों तक उनका चित्त

शोककुल रह्य, परन्तु पीछे व्यापारादि कार्योंमें लिप्त होके वे सब

भूत गये । सब ही भूत बातें हैं ।

इन दिनों दोनों मित्रोंने ढह सात महीने व्यापारमें बड़ी मश-

क़त उठाई । आवश्यकतानुसार कमी जौनपुर और कमी बनारसमें

रहे, परन्तु निरन्तर साथमें रहे । उस समय जौनपुरका नवाब

चीनीफिलीचबां था, यह बड़ा बुद्धिमान, पराक्रमी तथा दानी

था । और बादशाहकी ओरसे “चारहजारीमीर” कहलाता था । इसने एक बार कविवरकी प्रशंसा सुनकर इन्हें बुलाया और बड़े प्रेमसे सिरोपाव देकर सत्कार किया । नव्वाबमें और कविवरमें अत्यन्त गाढ मैत्री हो गई । नव्वाबकी कविवरपर बड़ी कृपा रहने लगी । कुलीचखां कोई प्रदेश फतह करनेके लिये अन्यत्र चला गया और दो महिनेतक लौटके नहीं आया । इसी समय जौनपुरमें इनका कोई परम वैरी उत्पन्न हुआ, उसने इन दोनों (वनारसी-नरोत्तम) को अतिशय दुःखित किया । और बहुत सी आर्थिक हानि भी पहुंचाई ।

तिन अनेकविध दुख दियो, कहों कहां लों सोय ।

जैसी उन इनसों करी, तैसी करै न कोय ॥ ४५३ ॥

चीनीकिलीचखां देश विजय करके जौनपुर आगया, वनारसी-दासजीसे पूर्वागुसार स्नेह रहा । अवकी बार उसने कविवरसे कुछ विद्याभ्यास करना प्रारंभ किया । नाममाला, श्रुतबोध, छन्द कोष, आदि अनेक ग्रन्थ पढ़े । किलीचखांके चले जानेपर जिस पुरुषने दुःख पहुंचाया था, उसके विषयमें यद्यपि कविवरने नव्वाबसे कुछ भी नहीं कहा था, और अपना पूर्वोपाजित कर्मोंका फल समझकर वे उससे कुछ बदला भी नहीं लेना चाहते थे, परन्तु वह भयभीत हो गया, और नव्वाबसे प्रार्थना करके पांच पंचोंमेंसे क्षमा मांगके झगडेका निश्चेरा जब तक न किया, तब तक उसे निराकुलता नहीं हुई । सज्जनोंके शत्रु स्वयं आकुलित रहा करते हैं ! संवत् १६७२ में चीनीकिलीचखांका शरीरपात हो गया । कविवरको इस गुणग्राहीकी मृत्युसे शोक हुआ । वे अपने निश्चेके साथ जौनपुर छोडके पटनेको चले गये, वहां छह सात महिने रहकर

रहे । तब तक सुना कि, आगानूर आगरेकी ओर चला गया है ।

अतः शीघ्र ही सफर करके जौनपुर आ गये ।

जौनपुरमें सबलसिंहजी मोठियाका पत्र आया कि, “दोनों साक्षी यहां चले आओ, अब पूर्वमें रहनेकी आवश्यकता नहीं है ।” पाठकोंको स्मरण होगा कि, यह सबलसिंह वही हैं, जिन्होंने इन दोनोंको साक्षी करके व्यापारको भेजा था । इस चिट्ठीके साथमें एक गुप्तचिट्ठी नरोत्तमदासजीके नामकी आई थी, जो उनके पिताने भेजी थी । नरोत्तमदासजीने चिट्ठी मनोनिमेष पूर्वक बांची और एक दीर्घनिःश्वास लेकर अपने प्राणाधिकप्रिय मित्र बनारसीके हाथमें वह चिट्ठी दे दी और पाठ करनेको कहा । बनारसी बांचने लगे, उसमें लिखा था—

खरगसेन वानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष ।

कपटरूप तुझसों मिले, करि धूरतका भेष ॥ ४८१

इनके मत जो चलेगा, सो मांगेगा भीख ।

तातें तू हुशियार रह, यही हमारी सीख ॥ ४८२

चिट्ठी पढ़ते ही बनारसीके मुखपर कुछ शोककी छाया दिखाई दी । यह देखते ही नरोत्तम हाथ जोड़के गद्गद हो बोला “मेरे अभिन्नहृदय-मित्र ! संसारमें मुझे तू ही एक सच्चा बांधव मिला है । मेरे पिताकी बुद्धि अविचारित-रम्य है । वे किसी दुष्टके बहकानेमें लगे हैं, अतः उनकी भूल क्षन्तव्य है । मेरा अचलविश्वास आपमें याव-चन्द्र-दिवाकर रहेगा । आप मुझपर कृपा रखें ।” मित्रके इस विश-दविवेक-पूर्ण और विश्वस्तभाषणसे बनारसी विमुग्ध-अवाक हो रहे । चित्तमें आनन्दकी धारा बहने लगी और उसमेंसे मंद २ शब्द निकलने लगे “यदि संसारमें मित्र हो, तो ऐसा ही हो । अहा !

‘विधिना केन सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्’ । एक दिन अपने मित्रके गुणोंका मनन करते हुए बनारसीदासजीने निम्नलिखित कवित्त बनाया था । इसे वे निरन्तर पढ़ा करते थे—

नवपद ध्यान गुनगान भगवंतजीको,
करत सुजान दिन शान जगि मानिये ।
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठों जाम,
रूप-धन-धाम काम मूरति बखानिये ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
महिमान जाके जसको वितान तानिये ।
महिमानिधान प्राण प्रीतम ‘बनारसी’ को,
चहुपद आदि अच्छरन नाम जानिये ॥ ४४८ ॥

नरोत्तमदास संवत् १६७३ के वैशाखमें साक्षका लेखा करके साहुकी आज्ञानुसार आगे चले गये । बनारसीदास नहीं जा सके, क्योंकि इस समय उनके पिता खरगसेनजीको बीमारी लगने लगी थी । पुत्रने पिताकी जी जानसे सेवा की, नाना औषधियोंका सेवन कराया, परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ । मौतका परवाना आ चुका था, अतः विलम्ब नहीं हो सका । ज्येष्ठकृष्णा पंचमीकी कालरात्रिमें खरगसेनजीका प्राणपखेरु शरीर पंजरसे देखतेही देखते उड़ गया । पुत्र अतिशय शोकाकुल हुआ । पूज्य पिताके पूज्य गुणस्मरण करके हाय पिता ! हाय पिता ! कहनेके सिवाय वह और कुछ न कर सका—

कियो शोक वानारसी, दियो नैन भर रोय ।

हियो कठिन कीन्हों सदा, जियो न जगमें कोय ॥ ४४९ ॥

पिताके स्वर्गवास होनेपर १ महीने तक पुत्रने पितृशोक मनाया । शोक विस्मृत करनेके लिये लोगोंने उन्हें अनेक शिक्षायें देकर, ज्यों त्यों संतोषित किया । जीव इष्टजनोंके वियोगमें दुःखी होते हैं, परन्तु निदान यह संसार है, मोहमायामें शीघ्र ही उसको भूल जाते हैं । बनारसी फिर जगज्जालमें लीन हुए । थोड़े दिन पीछे साहुजीका पत्र आया कि “तुम्हारे बिना लेखा नहीं चुकेगा, अतः तुम्हें आगराको आना चाहिये ।” साहुजीकी आज्ञानुसार बनारसीदासजी आगराको रवाना हुए । इस यात्रामें मुगलईके न्याय और अत्याचारका कविवरने अपनेपर वीता हुआ वृत्तान्त लिखा है, पाठकोंका यह रुचिकर होगा ।

“मैं अपने शाहजीकी आज्ञासे एक शीघ्रगामी अश्वपर मवाज होके आगराको रवाना हुआ । पहिले दिन घेसुआ नामक गांवमें रात्रि हो जानेसे ठहरना पड़ा । संयोगसे उसी दिन आगराका एक कोठीवाल महेश्वरी अपने ६ नौकरोंके साथ इसी ग्राममें मेरे पास ही ठहर गया । और भी २-३ ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंका संग हो गया । सब १९ मनुष्य हो गये । सब आपसमें यह राय करके कि, आगरा तक बराबर साथ चलेंगे, दूसरे दिन घेसुआसे डेरा उठाके चल पड़े । कई दिन चलकर इस संघमें घाटमपुरके निकट कुरी नामक ग्रामकी सरायमें डेरा डाला । सब लोग अपने २ खाने दानेकी चिन्तामें लगे, कोई बाजार गया, कोई अन्य कहीं गया । मथुरावासी ब्राह्मणोंमेंसे एक दूध लेनेके लिये अहीरके घर गया और दूसरा बाजारमें पैसे भुनाकर खाद्यसामग्री लेके डेरेपर आगया । थोड़ी देरमें वह सराफ जिसके यहांसे विप्र पैसे लाया था, आ घमका और बोला कि, तुम्हको धोखा देकर

खोटा रुपया दे आया है। विप्रने कहा तू झूठ बोलता है, मैं चोखा देके आया हूँ। वस! दो चार बार की 'मैं मैं तू तू' में वन पड़ी। विप्रजीने सराफको खूब मार जमाई। लोगों ने बीच बचाव बहुत करना चाहा, पर चौबेजी कब माननेवाले देवता थे! सराफका एक भाई मदद करनेके लिये दौड़ा हुआ आया। पर चौबेजीके आगे लड़नेमें बचाकी हिम्मत नहीं पड़ी। इसलिये एक जालसाजी सोची। ठीक ही है "जो बलसे नहीं जीता जावे उसे अकलसे जीतना चाहिये।" ग्रामणके कपड़ोंमें २५) रु० और भी बंधे हुए थे, उन्हें सराफके भाईने खोल लिये और "ये भी सब बनावटी तथा खोटे हैं।" ऐसा कहता हुआ कोतवालके पास पहुंचा। मार्गमें चौबेके असली रुपयोंको कहीं चला दिये और बनावटी रुपयों कोतवालके सन्मुख पेश किये और बोला "दुहाई सरकार की! नगरमें बहुतसे ठग आये हुए हैं, वे इसी तरह हजारों खोटे रुपया चला रहे हैं। और ऐसे जवर्दस्त हैं कि, लोगोंको मारने पीटनेसे भी वाज नहीं आते। मेरे भाईको मार २ के अधनुआ कर डाला है। दुहाई हुजूर! बचाइयो!!" कोतवालने इस वणिककी रिपोर्टको नगरके हाकिमतक पहुंचाई। हाकिमने दीवान सा० को तहकीकातके लिये भेज दिया। संध्याका वक्त हो गया था, कोतवाल और दीवानकी सवारी सरायमें पहुंची। नगरके सैकड़ों आदमियोंकी सवारी भी सरायमें जा जमी। बड़ा जमघट हुआ। कोतवाल और दीवानके सामने विप्र हाजिर किये गये। इजहार होने लगे। पहिले उनके नाम ग्रामादि पूछे गये, फिर रुपयोंके विषयमें पूछताछ की गई। लोग नानाप्रकारकी सम्मतियां देने लगे। कोई बोले ठग हैं, कोई पाखंडी वेपी हैं, कोई बोले मालूम तो भले आदमीसे होते हैं। कोतवालने सबकी सुन सुना-

कर हुक्म दिया, इनको और इनके साथियोंको इसीसमय बांध लो । इसपर दीवानसा०ने उन्हें छेड़ा । कहा कि, उतावली नहीं करनी चाहिये । अभी रात्रिको चोर साहका पूरा २ निश्चय नहीं हो सक्ता, जब तक सबेरान हो, इन्हें पहिरेमें रखनेकी व्यवस्था कीजिये । सबेरे जैसा निश्चय हो, कीजियेगा । दीवानसा०की बात मान ली गई और सब लोग पहिरेमें रक्खे गये । उन्हें यह भी आज्ञा दी गई कि, "घाट-मपुर, कुर्रा, बरी आदि तीन चारग्रामोंमेंसे यदि तुम अपनी विश्वस्तताके विषय साक्षी उपस्थित कर सकोगे, तो छोड़ दिये जाओगे अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं है ।" सब लोग चले गये, रात्रि आधी बीतगई, चिन्ताके मारे हम लोगोंके पास नींद खड़ी भी नहीं हुई । जब कि नगरभरमें बहू अपना चक्र चलाके प्रायः सबको प्राणहीन कर चुकी थी । नाना सौच विचारोंमें मेरा कलेजा उछल रहा था कि, एकाएक महेश्वरी कोठीवालेने कहा " मित्र ! अपनी रक्षाका द्वार निकल आया । मुझे अब स्मरण हो आया कि, मेरा छोटामई पासके इसी बरी ग्राममें विवाहा है । अब कोई चिन्ता नहीं है" मेरे-शुष्क हृदयमें आशालताका संचार हुआ; पर एकप्रकारसे संदेह बना ही रहा, क्यों कि इतने विलम्बसे महेश्वरीने जो बात कही है, उसमें कुछ कारण अवश्य है, जो सर्वथा विपत्तिसे खाली नहीं हो सक्ता ।

सबेरा हो गया, दीवान और कोतवालकी सवारी आ पहुंची । साथ में हम १९ आसामियोंके लिये शूली भी तयार की हुई लाई गई, इन्हें देखते ही दयालु-हृदय पुरुष कांप उठे ! कि आज किन अमागोंके दिन आ पहुंचे ! हम लोगोंसे साक्षी मांगी गई । महेश्वरीने बरीमें अपनी ससुरालकी बात कही । इसके सुनते ही हम सब लोगोंको पहिरेमें छोड़के और महेश्वरीको साथ लेके

दीवान कोतवाल बरीकी ओर गये । ससुरालवालोंसे भेट हुई । आदर सत्कार होने लगे । ससुरालवाले बड़े प्रतिष्ठित पुरुष थे, उनके भेट मिलापसे ही कोतवालकी साक्षी पूरी हो गई, वे शत्रु सी मराये लौट आये और हमसे कहने लगे “आप सच्चे साहु हैं, हम लोगोंसे अपराध हुआ जो आप लोगोंको इतना कष्ट पहुंचाया, माफ कीजियेगा ।” मैंने कहा आप राजा हम प्रजा हैं । राजा प्रजाका ऐसा ही सम्बन्ध है, इसमें आपका कोई दोष नहीं है—

जो हम कर्म पुरातन कियो । सो सब आय उदय रस दियो ।
भावी अमिट हमारा मता । इसमें क्या गुनाह क्या खता ॥

इस प्रकार बातचीत करके दीवानादि लज्जित होते हुए अपने घर आये । मैंने एक दिन और भी मुकाम किया । छह सात सेर फुल्ल लेकर हाकिम, दीवान, कोतवाल सबकी भेटमें दिया । वे बहुत प्रसन्न हुए । अवसर पाकर मैंने उनसे कहा आपके नगरका सराफ ठग था, हम लोग सुप्तमें फसाये गये थे । यद्यपि हम लोग अपने भाग्यसे बच निकले, परन्तु उस ठगके विषयमें कुछ भी विचार नहीं किया गया । गरीब ब्राह्मणोंके रुपये दिला देना चाहिये, वे अर्थ ही लूट लिये गये हैं । इसपर हाकिमोंने लज्जित होते हुए कहा, हमने आपके विना कहे ही उसको पकड़नेकी व्यवस्थाकी थी, परन्तु खेद है कि, भेद खुलनेके पहिले ही वे दोनों यहां से छापता हैं । अतः लाचारी है ।

शामको महेश्वरी शाह आ गये, आनन्द मंगल होने लगे । शेरके पंजेसे छुटकारा पाया, सबेरे ही सब लोग चल पडे । नदीके पार होते हुए विप्रलोक मार्गमें आढे पड गये और लगे दाढ़ें मारकर रोने । हमारे रुपये लूट लिये गये, अब हम कैसे जीवेंगे । अब तो

हम यहीं प्राण दे देंगे । उनके इन दयायोग्य वचनोंसे हमलोग दुःखी हो गये । दया आ गई । ब्राह्मणोंका विलाप और नहीं सुना गया । हम दोनों (महेश्वरी-बनारसी)ने मिलके २५७ ६० विघ्रोंको देकर संतुष्ट किया । ब्राह्मण आशिष देते हुए विदा हो गये ।

“ब्राह्मण गये अशीष दै,

मये वणिक निष्पाप ॥”

इस प्रकार मुगलाई के एक राजकीय चरित्रका वर्णन समाप्त हुआ । जिस समय आगरा बहुत निकट रह गया था, किसी पथिकने बनारसीदासजीको वह वज्र खबर सुनाई, जिसके सुननेके लिये वे आजन्म श्रुत नहीं थे । और जिसके सुननेके लिये उनका कोमल हृदय सत्यया असमर्थ था, परन्तु आनेवाली आप-दयें कहकर नहीं आतीं, अचानक आ दवाती हैं । पथिकने कहा “तुम्हारे मित्र नरोत्तमका परलोक हो गया ।” इसके अतिरिक्त बनारसी और कुछ न सुन सके । उनका सुन्दर शरीर तत्काल धराशयी हो गया, विचारशक्ति चञ्ची गई, वे मूर्च्छामें आविर्भूत हो गये । उनके साथी इस दशामें बड़े आकुल हुए, जलवेचनादि उपायोंसे उनकी मूर्च्छा-निवृत्ति की । मूर्च्छानिवृत्तिके साथ शोककी ज्वाला उनके हृदयमें धधक उठी, जिसके कारण मुंहमेंसे संतप्त उच्छ्वास निकलने लगे, और नेत्रोंसे वाष्पस्वरूप जलधारा निकलने लगी । विषादयुक्त-वदन-विनिर्गत ‘हाय मित्र ! हाय मित्र ! हाय मित्र ! कहाँ गये’ आदि शब्द सुननेवालोंकी आँखोंमेंसे भी दो चार वृंद आँसुओंके निकालते थे । बड़ी बुरी अवस्था हो गई । लोगोंने ज्यों त्यों समझा बुझाकर उन्हें आगरेमें ठिकानेपर पहुँचाया । वहाँ

वे अनेक दिन तक शोकाकुल रहे, बड़ी कठिनतासे मित्रशोकको विस्मृत कर सके ।

एक दिन आगरेमें किस लिये आये हैं? इस बातकी चिन्ता हुई, तब साहुजीके हिसाब करनेके लिये गये । परन्तु साहुजीका शाही दरबार देखके अवाक् हो रहे । उन्होंने वणिकोंके घर ऐसा अंघाधुंध कभी नहीं देखा था । साहुजी तकियेके सहारे पड़े हैं । वन्दीजन विरद पढ़ रहे हैं । नृत्यकारिणी छमाके भर रही है । नानाप्रकारके सुंदर वादित्र बज रहे हैं । भांड अपनी रंगविरंगी नकलेंमें मस्त हैं । और शेठजी तथा उनके सेवक सबहीमें मस्त हैं । भला ! वहां इनका हिसाब कौन सुने ? और वहां इतना अवकाश किसको ? कविवर लिखते हैं, कि इस दरबारमें पैर तोड़ते २ भैंने चार गहिने खो दिये ।

जवाहिं कहें लेखेकी बात । साहु जवाब देहिं परभात ।

मासी घरी छमासी जाम । दिन कैसा ? यह जाने राम ॥

सूरज उदय अस्त है कहां ? विषयी विषय मगन है जहां ॥

साहुजीके अंगाशाह नामक बहनेऊ (भगिनीपति) थे, जो बनारसीदासके मित्र थे । इनके द्वारा बनारसीदासने बड़ी कठिनतासे अपना हिसाब साफ किया । साहुजीने कहने सुननेसे ज्यों त्यों फारकती लिख दी । इसके बाद ही बनारसीदासके माग्यका सितारा चमका । उन्होंने साझा छोड़के पृथक् दूकान कर ली, और उसमें खूब लाभ उठाया ।

संवत् १६७३ के फाल्गुणमासके लगभग आगरेमें उस रोगकी उत्पत्ति हुई, जो आज सारे भारतवर्षमें व्याप्त है, और जो दशवर्षसे लक्षावधि प्रजाको मुंह फाड़ २ के निगल रहा है । जिसके आगे

डाक्टर लोग असमर्थ हो जाते हैं, हकीम लोग जयाव दे देते हैं, और वैद्य बगलें झांकते हैं। जिसे अंग्रेजीमें प्लेग, हिन्दीमें मरी, और मराठी गुजरातीमें मरकी कहते हैं। अनेक लोगोंका ख्याल है कि, यह रोग भारतमें पहिले पहिल हुआ है, परन्तु यह उनकी भूल है। इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं, कि प्लेग अनेक बार हो चुका है। और उसका यही रूप था जो आज है। कविवरने इस विषयमें जो वाक्य लिखे हैं, वे ये हैं—

१ बम्बईके भूतपूर्व कमिशनर 'सर जेम्स कैम्बले' ने 'अहमदाबाद-गोजेष्टियर' में कुछ दिन पहिले इस विषय सम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं, जो पाठकोंके जानने योग्य हैं। उन्होंने लिखा है कि, 'ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० सं० १६११ में पंजाबसे निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहाँके तत्कालीन बाद-शाह जहांगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिये आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोड़े ही दिन पीछे इस छुआ-छूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। सारांश-अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र ८ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहां १ प्लेगका उपद्रव होता था, चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।' उस समय हिन्दुस्थानमें जो यूरोपियन रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फैसला पड़ा था। वह काळे और गोरोंके साथ नीतिव्रत राजाकी नाई तब भी एक सा बर्ताव करता था। इस विषयमें "मि० टेरी" नामक ग्रन्थकारने लिखा है "नै

“इस ही समय ईति विस्तरी । परी आगरे पहिली मरी ।
जहां तहां सब भागे लोग । परगट भया गांठका रोग ॥
निकसै गांठि मरै छिनमाहिं । काहूकी वसाय कछु नाहिं ॥
चूहे मरें वैद्य मर जाहिं । भयसों लोग अन्न नाहिं खाहिं ॥”

मरीसे भयभीत होकर लोग भाग २ के दूर २ के खेटों और जंगलोंमें जा रहे । बनारसीदासजी भी एक अजीजपुर नामके ग्राममें एक ब्राह्मण मालगुजारके यहां जाके रहने लगे । मरीकी निवृत्ति होनेपर वे अपने मित्र ‘निहालचन्द, जीके विवाहको अमृतसर गये, और वहांसे लौटकर फिर आगरामें रहने लगे । माताको भी जौन-

दिनके अरसेमें सात अंग्रेजोंकी मृत्यु हो गई, ऐंगमें फेंसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी २४ घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो १२ घंटेमें ही रास्ता पकड़ लिया ।” सन् १६८४ में औरंगजेब बादशाहके लङ्करामें भी ऐंगने कहर मचाया था, ऐसा इतिहाससे पता लगा है ।

बनारसीदासजीके नाटकसमयसार ग्रन्थमें भी ऐंगका पता लगता है । उसमें बंधुद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिये कहा है—

“धरमकी बूझी नहीं उरझे भरम माहिं

नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं ।”

पाठकोको जानना चाहिये कि, उस समय ऐंगको मरी कहते थे । यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु चूहोंका मरना यह ऐंगका ही असाधारण लक्षण है, हैजाका नहीं ।

१ ऐंगका एक विशेष भेद भी है, जिसमें गांठ नहीं निकलती, केवल ज्वर होता है और ज्वरके पश्चात् मृत्यु । वैद्यक ग्रन्थकारोंने ऐंगको “ग्रन्थिक सन्निपात” बतलाया है । यह असाध्य रोग है ।

पुरसे अपने पास बुला लिया, और उनकी आज्ञानुसार खैराबाद जाकर उन्होंने अपना दूसरा विवाह कर लिया । खैराबादसे आकर कविवरके चित्तमें यात्रा करनेकी इच्छा हुई, इसलिये वे अपनी माता और नवीन भार्याको साथ लेकर 'अहिछित्ति पार्थनाथ'की बंदनाको गये, और वहांसे हस्तिनागपुर आये । वहां पर भगवान् शान्तिनाथ, कुण्डुनाथ, और अरःनाथकी भक्तिसहित पूजन की । पूजनमें एक तात्कालिक पदपद बनाकर पढ़ा—

श्री विसंसेननरेश—, सूरनृप-राय सुंदसन ।

ऐरों-सिरि-आदेवि, (!)कराहिं जिस देव प्रसंसन ॥

तासु नंदन सारंगं, छौग-नन्दावत लंछन ।

चालिस-पैंतिस-तीस, चौप काया छवि कंचन ।

सुखरास 'बनारसिदास' भनि, निरखत मन आनन्दई ।

हथिनापुर-भाजपुर-नागपुर, शान्ति-कुण्डु-अर घन्दई ॥

हस्तिनापुरसे दिल्ली, मेरठ, कोल होते हुए बनारसीदासजी सकुटुम्ब सकुशल आगरा आ गये । संवत् १६७६ में कविवरको द्वितीयभार्यासे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई । ७७ में माताका स्वर्गवास हो गया । ७९ में पुत्र तथा भार्या दोनोंने विदा मांग ली । और लोकरीतिके अनुसार संवत् ८० में खैराबादके कूकड़ीगोत्रज वेगाझाह-जीकी पुत्रीके साथ विवाह हो गया । जैसे पतझर होके धूलोंमें पुनः नवीन सुकोमल उत्पलोंकी सृष्टि होती है, उसी प्रकार कविवर

१ विश्वसेन । २ सूरसिंह । ३ सुदर्शन । ४ ऐरादेवी, श्रीकान्तादेवी, सुमित्रादेवी । ५ मृग । ६ मेघ । ७ नन्दावत । ८ घनुष (मा-प विशेष) ।

एक बार कुटुम्बहीन होके पुनः गृहस्थ हो गये । इस प्रकार बोडे-ही दिनोंमें बनारसीदासजीके संसारमें अनेक उलट फेर हुए ।

आगेरमें अर्थमल्लजी नामक एक सज्जन अध्यात्मरसके परम-रसिक थे । कविवरके साथ उनका विशेष समागम रहता था । वे कविवरकी विलक्षण काव्यशक्ति देखकर हर्षित होते थे, परन्तु उनकी कविताको अध्यात्मकल्पतरुके सौरभसे हीन देखकर कभी २ दुःखी भी होते थे, और निरन्तर उन्हें इस ओरको आकर्षित करनेके प्रयत्नमें रहते थे । एक दिन अवसर पाकर उन्होंने पं० रायमल्लजीकृत बालावबोधटीकासहित नाटकसमयसार ग्रन्थ कविवरको देकर कहा आप इसको एक बार पढ़िये और सत्यकी खोज कीजिये । कविवरने चित्त लगाकर समयसारका पाठ करना आरंभ कर दिया । एक बार पूरा पढ़ गये, परसंतोष न हुआ अतः फिर पढ़ा । इस प्रकार बारंवार पढ़ा और भाषार्थ मनन किया, परन्तु एकाएक आध्यात्मिक पेच समझ लेना सहज नहीं है । बिना गुरुके अध्यात्मका यथार्थ मार्ग नहीं सूझ सकता । क्योंकि विलक्षणदृष्टि पुरुष भी अध्यात्ममें भूलते और चक्कर खाते देखे जाते हैं । कविवरकी बुद्धि इस परम आध्यात्मिक प्रकाशको देख-

१ पंडित रायमल्लजी भाषाके बहुत प्राचीन लेखक प्रतीति होते हैं । पं० दुलीचन्द्रजीने इन्हें तेरहवींशताब्दीके लगभगका बतलाया है । समयसार टीका, प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, पट्टप्राभृत टीका, द्रव्यसंग्रह टीका, सिन्दूरप्रकर टीका, एकीभाव टीका, धावकाचार, भक्तामरकया, भक्तामर टीका, और अध्यात्मकमल मार्तण्ड आदि ग्रन्थोंके प्रभावशाली रचयिता हैं । खेद है कि इनमेंसे किसी भी ग्रन्थको हमने नहीं देखा ।

कर भी याथार्थ्य न देख सकी, उन्हें कुछ का कुछ जँचने लगा । वास्तविकताओंसे वे हाथ धो बैठे, और जहां तहां उन्हें निश्चयनय ही सुझने लगा । “न इधरके हुए न उधर के हुए” वाली कहावत चरितार्थ हुई । कविवरने अपनी उस समयकी दशा एक दो-हमें इस तरह व्यक्त की है—

करनीको रस मिट गयो, भयो न आतमस्वाद ।

भई बनारसिकी दशा, जथा ऊंटको पाद ॥ ५९७ ॥

इसी समय आपने ज्ञानपक्षीसी, ध्यानवत्तीसी, अध्यात्मवत्तीसी, शिवमन्दिर, आदि अनेक व्यवहारातीत सुन्दर कविताओंकी रचना की । अध्यात्मकी उपासनाके साथ २ आचारभ्रष्टताकी मात्रा बढ़ने लगी, और जैसा कि उपर कहा है, वे वास्तविकताओंको सर्वथा छोड़ ही बैठे । उन्होंने जप, तप, सामाधिक, प्रतिक्रमण, आदि क्रियाओंको ही केवल नहीं छोड़ा, किन्तु इतनी उच्छृंखलता धारण की, कि भगवत् का चढ़ा हुआ नैवेद्य (निर्म्माल) भी खाने लगे । इनके चन्द्रभान, उदयकरन, और थानमलजी आदि मित्रोंकी भी यही दशा थी । चारों एकत्र बैठकर केवल अध्यात्मकी चरचामें अपना कालक्षेप करते थे । इस चरचामें अध्यात्मरसका इतना विपुलप्रवाह होता था कि, उसमें प्रत्येक, धर्म, जाति, व्यवहारकी, उचित, अनुचित, श्रव्य, अश्रव्य सम्पूर्ण बातें वे रोक टोक प्रवाहित होती थीं । वे जिस बातको कहते तथा सुनते थे, उसीको घुमा फिराके व्यंगपूर्वक अध्यात्ममें घटानेकी चेष्टा किया करते थे । सारांश यह है कि, उस समय इनके जीवन का अहोरात्रिका एक मात्र यही कार्य हो रहा था । हमारे जैनसमाजमें उक्त मतके अनुयायी अब भी बहुतसे लोग हैं, जो लोकशालके उलंघन करनेको ही

कमर कसे रहते हैं, और अपने अभिप्रायको प्रबल बनानेकी इच्छा-से आचार्योंके वाक्योंको भी अप्रमाण कहनेमें नहीं चूकते । श्रावकोंकी क्रियाओंको वे हेय समझते हैं, और निश्चयक्रियाओंमें अनुरक्त रहनेकी डींग मारा करते हैं । ऐसे महाशयोंको इस नायकके उत्तरीय जीवनसे शिक्षा लेनी चाहिये । इस ऊर्ध्व और अधःकी मध्यदशाका पूर्ण वर्णन करनेको जिसमें हमारे कविवर और उनके मित्र लटक रहे थे, हमारे पास स्थान नहीं है । इसलिये एक दोहेमें ही उसकी इतिथी करना चाहते हैं । पाठक इन शुद्धाग्रायियोंकी अवस्थाका अनुमान इसीसे कर लेंगे—

नगन होंहि चारों जने, फिरहि कोठरी माहि ।

कहहि भये मुनिराज हम, कछु परिग्रह नाहि ॥

इस अवस्थाको देखकर—

कहहि लोग श्रावक अरु जती । वानारसी 'खोसरामती' ।

क्योंकि—

निंदा धुति जैसी जिस होय । तैसी तासु कहैं सब कोय ।

पुरज्जन विना कहे नाहि रहैं । जैसी देखैं तैसी कहैं ॥

मुनी कहैं देखी कहैं, कलपित कहैं बनाय ।

दुराराधि ये जगतजन, इनसों कछु न वसाय ॥

कविवरने अपनी इस समयकी अवस्थापर पीछेसे अत्यन्त खेद प्रगट किया है; परन्तु फिर संतोषवृत्तिसे कहा है कि " पूर्वकर्मके उदयसंयोगसे असाताका उदय हुआ था, वही इस कुमतिके उत्पादका यथार्थ कारण था । इसीसे बुद्धिमानों और गुरुजनोंकी शिक्षा-यें भी कुछ असर न कर सकीं । कर्मवासना जब तक थी, तब तक उक्त

दुर्बुद्धिके रोकनेको कोन समर्थ हो सक्ता था? परन्तु जब अयुभके उदय का अन्त हुआ, तब सहज ही वह सब झुल मिट गया। और ज्ञानका यथार्थ प्रकाश समक्ष हो गया” इसप्रकार संवत् १६१२ तक हमारे चरित्रनायक अनेकान्तमतके उपासक होकर भी एकान्तके झूलनेमें खूब झूले। पश्चात् जब उदयने पलटा खाया, तब पंडित रूपचन्द्रजीका आगरेमें आगमन हुआ। मानों आपके भाग्यकी प्रेरणा ही उन्हें आगरेमें खींच लाई। पंडितजीने आपको अध्यात्मके एकान्त रोगमें ग्रसित देखकर गोमटसाररूप औषधोपचार करना प्रारंभ कर दिया। अर्थात् आप कविवरको गोमटसार पढ़ाने लगे। गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रियाओंका विधान भलीभांति समझते ही हृदयके पट खुल गये, सम्पूर्ण संशय दूर भाग गये और—

तव बनारसी और हि भयो ।

स्यादवादपरणति परणयो ।

सुनि २ रूपचन्द्रके बैन ।

वानारसी भयो दिद जैन ॥

हिरदेमें कछु कालिमा, हुती सरदहन वीच ।

सोउ मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच ॥

इस ७-८ वर्षके बीचमें अनेक बातें लिखने योग्य हो चुकी हैं, जो उक्त डगमगदशके सिलसिलेमें पड़ जानेसे नहीं लिखी जा सकीं, अतः अब लिख दी जाती हैं। संवत् १६८४ में जहांगीर सम्राट् काल-

१ हंटर साहिबने जहांगीरकी मृत्युके विषयमें केवल इतना लिखा है कि, “सन् १६२७ में (संवत् १६८४) में जब कि उमका येठा

वश हो गये, और उनकी मृत्युके चार महीने पश्चात् शाहजहां सिंहासनारूढ़ हुए । शाहजहां जहाँगीरके बेटे थे । जहाँगीरने २२ वर्ष राज्यभोग किया । काश्मीरके मार्गमें उनकी अचानक मृत्यु हो गई । इसी वर्ष बनारसीदासजीकी तीसरी भार्यासे प्रथमपुत्र अव-

शाहजहां और बड़ा सरदार महताबखां ये दोनों बागी हो रहे थे, जहाँगीर मर गया, और शाहजहां अपने बापके मरनेकी खबर सुनते ही मारामारा मुल्क दक्षिणसे उत्तरको आया, और सन् १६२८ में आगरे आकर उसने गद्दीपर बैठनेका इश्टहार दे दिया । अवश्य ही कविवर लिखित ४ महीने इस बीचमें गुजर गये होंगे, और तबत ग़ाली रहा होगा ।

१ तुलुक जहाँगीरीमें बादशाहकी मृत्युके विषय इस प्रकार लिखा है—“मच्छी भवन, अजोल और वेरनागकी सैर करके बादशाह काश्मीरसे लाहौरकी ओरको बढ़े, और वीरमकल्लेके पहाड़में एक कुतूहलजनक शिकार करनेमें आप मग्न हुए । जनीदार लोग हरिणोंको हकालके पहाड़की चोटीपर लाते थे, और बादशाह साहब नीचेसे गोली मारते थे । हरिण गोली खाकर चक्कर खाता हुआ, नीचे तक आता था, इससे आप बड़े प्रसन्न होते थे । (पर हाय! उन बेचारे तृणजीवी जीवोंको भी क्या प्रसन्नता होती थी?) एक दिन उस देशका एक प्यादा एक हरिणको घेरकर पहाड़पर लाया । वह हरिण एक पत्थरकी ओटमें इस तरह हो गया, कि, बादशाह नीचेसे उसे नहीं देख सके थे, इसलिये वह (प्यादा) उसके हकालनेको फिरसे चला । परन्तु चलनेमें अभागका पैर फिसल पड़ा । पास ही एक वृक्ष था, उसको उसने पकड़ा परन्तु वह उखड़ आया । निदान उस पहाड़की चोटीसे लुढ़कता हुआ बुरी तरहसे जमीन पर आ गिरा, और गिरते ही प्राणहीन हो गया । एकके पीछे एक जीवकी यह दशा देखकर बादशाहको बड़ा उद्वेग हुआ । वे अपने दुःखित चित्तको

तरित हुआ, परंतु थोड़े दिन जीकर ही चल बसा। फिर संवत् ८५ में दूसरा पुत्र हुआ, जो दो वर्ष जीकर उसी पथका पथिक बन गया। संवत् ८७ में तीसरा पुत्र और ८९ में एक पुत्री इस प्रकार दो संतान हुए। यह पुत्री भी थोड़े दिनकी होकर मर गई। पुत्र दिन दूने रात चौगुने, के क्रमसे बढ़ने लगा। कविवरका शून्यगृह आनन्दकारी कलरवयुक्त हो गया। सूक्तिमुक्तावली, अध्यात्मवत्तीसी, पैदी, फाग, वमाल, सिन्धुचतुर्दशी, फुटकर कवित्त, शिव-पच्चीसी, भावना, सहस्रनाम, कर्मलक्ष्मी, अष्टकगीत, वचनिका आदि कविताओंका निर्माण भी इसी ७—८ वर्षके बीचमें हुआ। यद्यपि कविता निर्माणके समय वे केवल शुद्धरसका आस्तादन करते थे, और वह एकान्त होनेसे जिनागमके अनुकूल नहीं था,

सम्हाल नहीं सके, और शिकार छोड़के दौलतखानेमें आ गये। थोड़ी देरमें उस प्यादेकी असहाय्य माता रोती पीटती बादशाहके पास आई। तब उन्होंने बहुत सा नकद रक्खा देकर उस बुढ़ियाको थोड़ी बहुत तसल्ली की, परन्तु स्वतः उनके चित्तकी तसल्ली नहीं हुई। उनकी दशा बुढ़ियासे भी विचित्र हो गई। मानो यमराजने इस कौतुकके सिपसे उन्हें दर्शन दे दिया था।

बादशाह इसी दशामें वीरमकल्लेसे थेने और थेनेसे राजौरको गये। फिर वहाँसे सदाकी नाई पहर दिन रहे कूच किया। मार्गमें प्याला मांगा, पर ज्यों ही मुँहसे लगाया, छूटकर उलट्टा आ पड़ा। दौलतखानेमें पहुंचने तक यही दशा रही। बड़ी कठिनतासे रात निकली। प्रातःकाल कई स्वास बड़ी सख्तीसे आये और प्रहर दिन चढ़के अनुमान २८ सफर सन १०३७ (क्रांतिक वदी ३० संवत् १६८४) को ६० वर्षकी उमरमें हिंदुस्थानके एक शक्तिशाली सम्म्राट्का प्राण निकल गया। सब लोग देखते ही रह गये”।

परन्तु उक्त सब कवितायें भी जिनागमके प्रतिकूल होंगी, ऐसी शंका न करनी चाहिये । वे सब अनुकूल ही हुई हैं । ऐसा कविवरने अर्द्धकथानकमें स्वयं कहा है—

सोलह सौ वानवे लों, कियो नियतरस पान ।

पै कवीसुरी सब भई, स्यादवाद परमान ॥

गोमट्टसारके पढ़ चुकने पर पंडित रूपचन्द्रजीकी कृपासे जब वनारसीके हृदयके कपाट खुल गये, तब उन्होंने भगवत्कुन्दकुन्दा-चार्यप्रणीत नाटकसमयसार ग्रन्थका भाषाप्रधानुवाद करना प्रारंभ किया । भाषा साहित्यके भंडारमें यह ग्रन्थ कैसा अद्वितीय, और अनुपम है, अध्यात्म सरीखे कठिन विषयको कैसी सरलता और सुन्दरतासे इसमें कहा है, उसे पाठक तब ही जान सकेंगे, जब एकवार उक्त पुस्तकका आद्यन्त पाठ कर जावेंगे । संवत् १६९३ की आश्विन शुक्ला त्रयोदशीको यह ग्रन्थ पूर्ण किया गया है, ऐसा ग्रन्थकी अन्त्यप्रशस्तिसे प्रगट होता है ।

संवत् ९६ का वह दिन कविवरके लिये बहुत शोकप्रद हुआ, जिस दिन उनके प्यारे इकलौते पुत्रने शरीर छोड़ दिया । ९ वर्षके एक होनहार बालकके इस प्रकार चले जानेसे किस माता-पिताको शोक न होता होगा? अवकी वार कविवरके हृदयमें गहरी चोट बैठी, उन्हें यह संसार भयानक दिखाई देने लगा । क्योंकि—

नौ बालक हूए सुवे, रहे नारिनर दोय ।

ज्यों तरुवर पतझार है, रहें ठूँठसे होय ॥

वे विचार करने लगे कि—

तत्त्वदृष्टि जो देखिये, सत्यारथकी भांति ।

ज्यों जाकौ परिग्रह घटै, त्यों ताको उपशान्ति ॥

परन्तु—

संसारी जानें नहीं, सत्यारथकी बात ।

परिग्रहसों माने विमल, परिग्रहचिन उतपात ॥

इस प्रकार विचार करनेपर भी दो वर्ष तक कविवरके मोहका उपशान्त नहीं हुआ । संवत् १६९८ में जब कि यह अर्द्ध कथानक रचा गया है, कुछ मोह उपशान्त हुआ, ऐसा कहकर हमारे चरित्र नायकने कथानकके पूर्वार्द्ध को पूर्ण किया है ।

जीवनचरित्रके अन्तमें नायकके गुणदोषोंकी आलोचना करनेकी प्रथा है । विना आलोचनाके चरित्र एक प्रकार अधूरा ही कहा जाता है । अतएव कविवरके गुणदोषोंकी आलोचना करना अभीष्ट है । जीवनचरित्रके लेखकोंको इस विषयमें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है, परन्तु तौ भी वे यथार्थ लिखनेमें असमर्थ होते हैं । और अनुमानादिके भरोसे जो थोड़ा बहुत लिखते भी हैं, वह नायकके विशेषकर बालचरित्रोंसे सम्बन्ध रखता है । ऐसी दशामें पाठक प्रायः नायकके अन्तर्चरित्रोंसे अनभिज्ञ ही रहते हैं । परन्तु बड़े हर्षकी बात है कि, हमारे चरित्रनायक स्वयं अपने चरित्रोंको लिखके रख गये हैं, इस लिये हमको इस विषयमें विशेष प्रयास तथा चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । उन्हींके अक्षरोंको हम यहां लिखकर अर्द्धकथानकके चरित्रको पूर्ण करते हैं ।

अब यनारसीके कहों, वर्तमान गुणदोष ।

विद्यमान पुर आगरे । सुखसों रहै सजोप ॥

गुणकथन ।

माया कवित अध्यातम माहिं । पंडित और दूसरो नाहिं ॥
 क्षमावंत संतोपी भला । भली कवितपढ़वेकी कला ॥
 पढ़ै संस्कृत प्राकृत शुद्ध । विविध-देशभाषा-प्रतिबुद्ध ।
 जाने शब्द अर्थको भेद । ठाने नहीं जगतको खेद ॥
 मिठवोला सबहीसों प्रीति । जैनधर्मकी दिढ परतीति ॥
 सहनशील नहिं कहै कुबोल । सुथिर चित्त नहिं डांवाडोल ॥
 कहै सबनिसों हित उपदेश । हिरदै सुष्ट दुष्ट नहिं लेश ॥
 पररमणीको त्यागी सोय । कुव्यसन और न ठानै कोय ॥
 हृदय शुद्धसमकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक ॥
 अल्प जवन्य कहे गुन जोय । नहिं उतकिष्ट न निर्मल होय ॥

दोषकथन ।

क्रोध मान माया जलरेख । पै लछमीको मोह विशेष ॥
 पेटै हास्य कर्मदा उदा । घरसों हुआ न चाहै जुदा ॥
 करै न जप तप संजम रीत । नहीं दान पूजासों प्रीत ॥
 थोरे लाम हर्ष बहु धरै । अल्प हानि बहु चिन्ता करै ॥
 मुख अवध भाषत न लजाय । सीखै भंडकला मन लाय ॥
 भाषै अकथकथा विरतंत । ठानै नृत्य पाय एकन्त ॥
 अनदेखी अनसुनी वनाय । कुकथा कहै समामें आय ॥
 होय निमग्न हास्यरस पाय । सृपावाद विन रह्यो न जाय ॥
 अकसात मय व्यापै घनी । ऐसी दशा आय कर वनी ॥

वपसंहार ।

कवहं दोष कवहुँ गुन कोय । जाको उदय नु परगट होया ॥
यह बनारसीजीकी बात । कही थूल जो हुती विख्यात ॥
और जो सूच्छम दशा अनंत । ताकी गति जाने भगवंत ॥
जे जे बातें सुमिरन भई । तेते वचनरूप परिनिई ॥
जे वृद्धी प्रमाद इहि माहिं । ते काहूपै कहीं न जाहिं ॥
अल्प थूल भी कहै न कोय । भापै सो जु केवली होय ॥

एक जीवकी एकदिन, दशा होत जेतीक ।

सो कहि सकै न केवली, यद्यपि जाने ठीक ॥

मनपरजय अरु अवधिधर, कराहिं अल्प चिंतौन ।

हमसे कीटपतंगकी, बात चलावै कौन ॥

तातें कहत बनारसी, जीकी दशा रसाल ।

कछू थूलमें थूलसी, कही यहिर विवहार ।

वरस पंच पंचासलों, भाख्यो निज धिरतंत ॥

आगे भाषी जो कथा, सो जाने भगवंत ॥

वरस पँचावन ए कहे, वरस पँचावन और ।

वाकी मानुष आयुमें, यह उत्तकिष्टी दौर ॥

वरस एकसौ दश अधिक, परमित मानुष आव ।

सोलह सौ अष्टानवे, समय बीच यह भाव ॥

तातें अरथकथान यह, बानारसीचरित्र ।

दुष्ट जीव सुन हँसहिंगे, कहाहिं सुनहिंगे मित्र ॥

शेषजीवन ।

पूर्वमें कह चुके हैं कि, कविवर बनारसीदासजीकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है । इसके पश्चात् वे कब तक संसारमें रहे ? क्या २ कार्य किये ? प्रतिज्ञानुसार अपनी शेष जीवनी लिखी कि, नहीं ? अन्य नवीन ग्रन्थोंकी रचना की कि नहीं ? आदि अनेक प्रश्न उपस्थित होते हैं, परन्तु इनका उत्तर देनेके लिये हमारे निकट कोई भी साधन नहीं है । और तो क्या हम यह भी निश्चय नहीं कर सकते कि, उनका देहोत्सर्ग कब और किस स्थानमें हुआ ? यह बड़े शोककी बात है ।

पाठकगण जीवनचरित्रका जितना भाग उपरि पाठ कर चुके हैं, उसपर यदि विचार किया जावे, तो निश्चय होगा कि, वह समय उनकी आपत्तियोंका था । उस ५५ वर्षके जीवनने उन्हें बहुत थोड़ा समय ऐसा दिया है, जिसमें वे सुखसे रहे हों । बहुत थोड़े पुरुषोंके जीवनमें इस प्रकार एकके पश्चात् एक, अपरिमित आपत्तियें उपस्थित हुई हैं । इस ५५ वर्ष की आयुके पश्चात् मोहके उपशांत होने पर उनके सुखका समय आया था, मानो विधाताने उनके जीवनके दुःख सुखमय दो विभाग स्वयं कर दिये थे और इसी लिये कविवरने इस प्रथम जीवनको पृथक् लिखनेका प्रयास किया था । आश्चर्य नहीं कि दूसरे सुखमय

१ 'बनारसीविलास' कविवरकी अनेक रचनाओंका संग्रह है । उसमें "कर्मप्रकृतिविधान" नामक सबसे अन्तिम कविता है, जो संवत् १७०० के फाल्गुणकी रची हुई है । इसके पश्चात्की कोई भी कविता प्राप्य नहीं है । इससे यह भी जाना जाता है कि, कदाचित् कविवरका सुखमय जीवन १०-५ वर्षसे अधिक नहीं हुआ हो ।

जीवनको भी उन्होंने हम लोगोंके लिये लिखा हो। परन्तु वह आज हमको प्राप्त नहीं है। यह हम लोगोंका अभाग्य है।

इतिहास लिखने में जनश्रुतियां भी साधनभूता हैं। क्योंकि अनेक इतिहासोंके पत्र केवल जनश्रुतियोंके आधार पर ही रंगे जाते हैं। कविवरके जीवनकी अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। परन्तु अनुमानसे जाना जाता है कि, वे सब प्रथम जीवनके पश्चात्की हैं, इसलिये हम उन्हें शेषजीवनमें सम्मिलित करना ठीक समझते हैं।

१ शाहजहां बादशाहके दरबारमें कविवर बनारसीदासजीने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बादशाहकी कृपाके कारण उन्हें प्रतिदिन दरबारमें उपस्थित होना पड़ता था और महलमें जाकर प्रायः निरन्तर सतरंज खेलना पड़ती थी। कविवर सतरंजके बड़े खिलाड़ी थे। कहते हैं कि, बादशाह इनके अतिरिक्त किसी अन्यके साथ सतरंज खेलना पसन्द ही नहीं करते थे। बादशाह जिस समय दौरेपर निकलते थे, उस समय भी वे कविवरको साथमें रखते थे। तब अनेक राजा और नवाब खूब चिढ़ते थे, जब वे एक साधारण वणिकको बादशाहकी बराबरी पर बैठा देखते थे, और अपनेको उससे नीचे। संवत् १६९८ के पश्चात् कविवरका मोह उपशान्त होने लगा था, ऐसा कथानकमें कहा गया है। और हम जो कथा लिखते हैं, वह उसके भी कुछ पीछेकी है, जब कि, उनके चरित्र और भी विशद हो रहे थे, और जब वे अष्टांग सम्यक्त्वकी धारणा पूर्णतया कर रहे थे। कहते हैं कि उस समय कविवरने एक दुर्धर प्रतिज्ञा धारण की थी। अर्थात् उन्होंने संसारको तुच्छ समझके यह निश्चय किया था कि, मैं

१ सतरंजपर कविवरने अनेक कवितायें लिखी हैं।

जिनेन्द्रदेवके अतिरिक्त किसीके भी आगे मस्तक नम्र नहीं करूंगा । जब यह बात फैलते २ बादशाहके कानोंतक पहुंची, तब वे आश्चर्ययुक्त हुए परन्तु क्रोधयुक्त नहीं हुए । वे कविवरके स्वभावसे और धर्मश्रद्धासे भलीभांति परिचित थे, परन्तु उस श्रद्धाकी सीमा यहां तक पहुंच गई है, यह वे नहीं जानते थे, इसीसे विस्मित हुए । इस प्रतिज्ञाकी परीक्षा करनेके रूपमें उस समय बादशाहको एक मसखरी सूझी । आप एक ऐसे स्थानमें बैठे, जिसका द्वार बहुत छोटा था, और जिसमें विना सिर नीचा किये हुए कोई प्रवेश नहीं कर सक्ता था । पश्चात् कविवरको एक सेवकके द्वारा बुला भेजा । कविवर द्वारपर आते ही ठिठक गये, और हुजूरकी चालाकी समझके चटसे बैठ गये । पश्चात् शीघ्र ही द्वारमें पहिले पैर डालके प्रवेश कर गये । इस क्रियासे उन्हें मस्तक नम्र न करना पड़ा । बादशाह उनकी इस बुद्धिमानी से बहुत प्रसन्न हुए, और हँसकर बोले, कविराज ! क्या चाहते हो ? इस समय जो मांगो मिल सक्ता है, कविवरने तीन बार वचनबद्ध करके कहा, जहांपनाह ! यह चाहता हूँ कि, आजके पश्चात् फिर कभी दरबारमें स्मरण न किया जाऊँ । इस विचित्र याचनासे बादशाह तथा अन्य समस्त दरबारी जो उस समय उपस्थित थे, चकित तथा स्तब्ध हो रहे । बादशाह इस वचनके हार देनेसे बहुत दुःखी हुए, और उदास होके बोले, कविवर ! आपने अच्छा नहीं किया । इतना कहके अन्तःपुरमें चले गये, और कई दिनतक दरबारमें नहीं आये । कविवर अपने आत्मध्यानमें लवलीन रहने लगे ।

२ जहांगीरके दरबारमें भी इससे पहिले एक बार और यह बात

चली थी, कि बनारसीदास किसीको सलाम नहीं करते हैं। कहते हैं कि, उससमय जब उनसे सलाम करनेके लिये कहा गया था, तब उन्होंने ने—यह कवित्त गढ़कर कहा था—

जंगतके मानी जीव, है रह्यो गुमानी ऐसो,
आस्रव असुर दुखदानी महा भीम है ।
ताको परिताप खंडिवेको परगट भयो,
धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है ॥
जाके परभाव आगे भागें परभाव सब,
नागर नवल सुखसागरकी सीम है ।
संवरको रूप धरै साधै शिवराह ऐसो,
बानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है ॥

३ एक धार बनारसीदासजी किसी सड़कपर शुष्कभूमि देखकर पेशाव करने लगे, यह देखकर एक शाही सिपाहीने जो तत्काल ही भरती हुंआ था, और जो कविवरको पहिचानता नहीं था, पासमें आकर इन्हें पकड़ लिया और दो चार चपत (तमाचे) जड़ दिये। कविवरने तमाचे सह लिये, चूं तक नहीं किया और चलते बने। दूसरे दिन शाहीदरबारमें कार्यवशात्, दैवयोगसे वही सिपाही उस समय हाजिर किया गया, जब कविवर बादशाहके निकट ही बैठे हुए थे। उन्हें देखकर बेचारे सिपाहीके प्राण सूख गये। वह समझा कि, अब मेरी मृत्यु आ पहुँची है, तब ही मैंने कल इस दरबारीसे खडे बैठे शत्रुता कर ली है। आज इसीने शिकायत करके मुझे उपस्थित कराया है। इन विचारों-

१ यह कवित्त “नाटक समवसार” में भी है।

से वह धर २ कांपने लगा । वनारसी उसके मनका भाव समझ गये । सिपाही जिसकार्यके लिये बुलाया गया था, जब उसकी आज्ञा दे दी गई, तब पीछेसे कविवरने वादशाहसे उसकी मिफारिश की कि, हुजूर ! यह सिपाही बहुकुटुम्बी और अतिशयदीन है, यदि सरकारसे इसका कुछ वेतन बढ़ा दिया जाये, तो वे-चारेका निर्वाह होने लगेगा । मैं जानता हूं, यह धानतदार नौकर है । कविवरके कहने पर उसी समय उसकी वेतन बढ़ि कर दी गई । इस घटनासे सिपाही चकित संभित हो गया । उसके हृदयमें कविवरके लिये 'धन्य ! धन्य !' शब्दोंकी प्रतिध्वनि बारम्बार उठने लगी । वह उन्हें मनुष्य नहीं किन्तु देव रूपमें समझने लगा, और उस दिनसे नित्य प्रातःकाल उनके द्वारपर जाके जब नमस्कार कर आता, तब अपनी नौकरीपर जाता था ।

४ आगेमें एक बार "बाबा शीतलदासजी" नामके कोई सन्यासी आये हुए थे । लोगोंमें उनकी शान्तिता और क्षमाके विषयमें नाना प्रकार अतिशयोक्तियां प्रचलित हो रही थीं, जिन्हें सुनकर कविवर उनकी परीक्षा करनेको प्रस्तुत हो गये । एक दिन प्रभातकालमें सन्यासीजीके पास गये, और बैठके मोली २ बातें करने लगे । बातोंका सिलसिला टूटने पर पूछने लगे, महाराज ! आपका नाम क्या है ? बाबाजी बोले, लोग मुझे 'शीतल-दास' कहा करते हैं । कुछ देर पीछे यहां वहांकी वार्ता करके फिर पूछने लगे, कृपानिधान ! मैं भूल गया, आपका नाम ? उत्तर मिला, शीतलदास । एक दो बातें करनेके पीछे ही फिर पूछ बैठे, महाशय ! क्षमा कीजिये, मैं फिर भूल गया, आपका नाम ? इस प्रकार जब तक आप वहां बैठे रहे, फिर २

कर नाम पूछते रहे, और उसी प्रकार उत्तर भी पाते रहे । फिर वहाँसे उठके जब घरको चलने लगे, तब थोड़ी दूर जाके लौटे और फिर पूछ बैठे, महाराज ! क्या कहे, आपका नाम सर्वथा अपरिचित है, अतः मैं फिर भूल गया, फिर बतला दीजिये । अभी तक तो बाबाजी शान्तिताके साथ उत्तर देते रहे, परन्तु जबकी बार गुस्सेसे बाहर निकल ही पड़े । झुँझलाके बोले, अवे बेवकूफ ! दशवार कह तो दिया कि, शीतलदास ! शीतलदास !! शीतलदास !!! फिर क्यों खोपड़ी खाये जाता है ? बस ! परीक्षा हो चुकी, महाराज फेल (अनुत्तीर्ण) हो गये । कविवर यह कह कर वहाँसे चलते बने कि, महाराज ! आपका यथार्थ नाम 'ज्वालाप्रसाद' होने योग्य है, इसी लिये मैं उस गुणहीन नामको याद नहीं रख सका था ।

५ एकवार दो नम्रमुनि आगरामें आये हुए थे, और मन्दिरमें ठहरे थे । सब लोग उनके दर्शन वन्दनको आते जाते थे, और अपनी २ बुद्धयनुसार प्रायः सब ही उनकी प्रशंसा किया करते थे । कविवर परीक्षाप्रधानी जीव थे । उन्हें सब लोगोंकी नाई, दर्शन पूजनको जाना ठीक नहीं जँचा, जब तक कि मुनि परीक्षित न हों । अतएव स्वयं परीक्षाके लिये उद्यत हुए । एक दिन उक्त मुनिद्वय मन्दिरके दाटानमें एक झरोखे (गवाक्ष)के निकट बैठे हुए थे और सम्मुख भक्तजन घर्षो-पदेश सुननेकी आशासे बैठे थे । झरोखेकी दूसरी ओर एक बाग था । उस बागमें मुनियोंकी दृष्टि भलीभाँति पहुँचती थी, और बागमें टहलनेवाले पुरुषकी दृष्टि भी मुनियोंपर स्पष्ट-रीत्या पड़ती थी । कविवर उस बगीचेमें पहुँचे, और झरोखेके

समीप खड़े हो गये । जब किसी मुनिकी दृष्टि उनकी ओर आती थी, तब वे अंगुली दिखाके उसे चिढ़ाते थे । मुनियोंने उनकी यह कृति कई बार देखके मुख फेर लिया, परन्तु कविवरने अपनी अंगुली मटकाना बन्द न किया । निदान मुनि-द्वय क्षमा विसर्जन करनेको उद्यत हो गये । और भक्तजनोंकी ओर मुंह करके बोले, कोई देखो तो वागमें कोई कूकर ऊधम मचा रहा है । इतने शब्दोंके सुनते ही जब तक कि, लोग वागमें देख-नेकी आये, कविवर लम्बे २ पैर रखके नौ दो ग्यारह हो गये । देखा तो वहां कोई न था । बनारसीदासजी पैर बढ़ाये हुए चले जा रहे थे । फिरके मुनि महाशयोंसे कहा, महाराज ! वहां और तो कूकर शूकर कोई न था, हमारे यहांके सुप्रतिष्ठित पंडित बनारसीदासजी थे, जो हम लोगोंके पहुंचनेके पहिले ही वहांसे चले गये । यह जानके कि, वह कोई विद्वान् परीक्षक था, मुनियोंको कुछ चिन्ता हुई, और दोचार दिन रहके वे अन्यत्र विहार कर गये । कहते हैं कि, कविवर परीक्षा कर चुकने-पर फिर मुनियोंके दर्शनोंको नहीं गये ।

६ भाषाकवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी बहुत प्रसिद्ध हैं । उनकी बनाई हुई रामायणका भारतमें असाधारण प्रचार है, और यथार्थमें वह प्रचारके योग्य ही ग्रन्थ है । गोस्वामीजी बनारसीदासजीके समकालीन थे । संवत् १६८० में जिस समय तुलसीदासजीका शरीरपात हुआ था, बनारसीदास-जीकी आयु केवल ३७ वर्षकी थी । इस लिये जो अनेक कथाओंमें सुनते हैं कि, बनारसीदासजी और तुलसीदासजीका कई बार मिलाप हुआ था, सर्वथा निर्मूलक भी नहीं हो सक्ता ।

गोस्वामीजी गिरे कवि ही नहीं थे, वे एक सच्चरित्र महात्मा थे। और सज्जनोंसे भेंट करना बनारसीदासजीका एक स्वभाव था; इस लिये भी दन्तकथाओंपर विश्वास किया जा सकता है। यद्यपि कविवरकी जीवनी संवत् १६९८ तककी है, और उसमें इस विषयका उल्लेख नहीं है, तौ भी दन्तकथाओंमें सर्वथा तथ्य नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक साधारण बात समझके जीवनीमें उसका उल्लेख न करना भी संभव है।

कहते हैं कि, एकबार तुलसीदासजी बनारसीदासजीकी काव्य-प्रशंसा सुनकर अपने कुछ चेलोंके साथ आगे आये तथा कविवरसे मिले। कई दिनोंके समागमके पश्चात् वे अपनी बनाई हुई रामायणकी एक प्रति भेंट देकर विदा हो गये। और पार्श्वनाथस्वामीकी स्तुतिमें दो तीन कवितायें जो बनारसीदासजीने भेंटमें दी थी, साथमें लेते गये। इसके दो तीन वर्षके उपरान्त जब दोनों कविश्रेष्ठोंका पुनः समागम हुआ, तब तुलसीदासजीने रामायणके सौन्दर्य विषयमें प्रश्न किया। जिसके उत्तरमें कविवरने एक कविता उसी समय रचके सुनाई—

“विराजै रामायण घटमार्हि, विराजै रामायण०”

(बनारसीविलास पृष्ठ १४१।)

तुलसीदासजी इस अध्यात्मचातुर्यको देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले “आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है,” मैं उसके बदलेमें आपको क्या सुनाऊं?। उस दिन आपकी पार्श्वनाथस्तुति पढ़के मैंने भी एक पार्श्वनाथस्तोत्र बनाया था, उसे आपको ही भेंट करता हूँ। ऐसा कहके “भक्तिविरदावली” नामक एक सुन्दर कविता कविवरको अर्पण की। कविवरको उस कवितासे

बहुत संतोष हुआ, और पीछे बहुत दिनों तक दोनों सज्जनोंकी भेट समय २ पर होती रही ।

भक्तिविरदावलीकी कविता सुन्दर है, उसकी रचना अनेक छन्दोंमें है । तौ भी रामायणकी कविताका ढंग उसमें नहीं है, इस लिये उक्त किंवदन्तीपर एकाएक विश्वास नहीं हो सक्ता । पाठकोंके जाननेके लिये उसके अन्तिम दो छन्द यहां उद्धृत किये जाते हैं—

गीतिका ।

पदजलज श्री भगवानजूके, वसत हैं उर माहिं ।
चहुँगतिविहंडन तरनतारन, देख विघन बिलाहिं ॥
यकि धरनिपति नहिं पार पावत, नर सु वपुरा कौन ?
तिहिलसत करुणाजन-पयोधर, भजहिं भविजन तौन ॥
दुति उदित त्रिभुवन मध्य भूपन, जलधि क्षान गभीर ।
जिहि माल ऊपर छत्र सोहत, दहन दोष अधीर ॥
जिहि नाथ पारस जुगल पंकज, चित्त चरनन जास ।
रिधि सिद्धि कमला अजर राजित, भजत तुलसीदास ॥

उक्त विरदावलीमें 'तुलसीदास' इस नामके अतिरिक्त जो कि पांच छह स्थानोंमें आया है, और कोई बात ऐसी नहीं है, जिससे यह निश्चय हो सके कि, यह 'तुलसी' गुसाईंजी ही थे, अथवा कोई अन्य । परन्तु गुसाईंजी का होना सर्वथा असंभव भी नहीं कहा जा सक्ता । क्योंकि उस समयके विद्वानोंमें आज-कलकी नाई धर्मद्वेष नहीं था । वे बड़े सरलहृदयके भक्त थे ।

७ कविवरका देहोत्सर्गकाल अविदित है, यह ऊपर कहा

जा चुका है, परन्तु मृत्युकालकी एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है। कहते हैं कि, अन्तकालमें कविवरका कंठ अवरुद्ध हो गया था, रोगके संक्रमणके कारण बेबोल नहीं सक्ते थे। और इसलिये अपने अन्त समयका निश्चयकर ध्यानावस्थित हो रहे थे। लोगोंको विश्वास हो गया था कि, ये अब घंटे दो घंटेसे अधिक जीवित नहीं रहेंगे, परन्तु कविवरकी ध्यानावस्था जब घंटे दो घंटोंमें पूर्ण नहीं हुई, तब लोग तरह-२ के ख्याल करने लगे। मूर्खलोग कहने लगे कि, इनके प्राण माया और कुटुम्बियोंमें अटक रहे हैं, जब तक कुटुम्बीजन इनके सम्मुख न होंगे और दौलतकी गठरी इनके समक्ष न होगी, तब तक प्राणविसर्जन न होंगे। इस प्रस्तावमें सवने अनुमति प्रकाश की, किसीने भी विरोध नहीं किया। (मूर्खमंडलको नमस्कार है!) परन्तु लोगोंके इस तरह मूर्खता-पूर्ण विचारोंको कविवर सहन नहीं कर सके। उन्होंने इस लोकमूढताका निवारण करना चाहा, इसलिये एक पट्टिका और लेखनीके लानेके लिये निकटस्थ लोगोंको इशारा किया। बड़ी कठिनताके साथ लोगोंने उनके इस संकेतको समझा। जब लेखनी पट्टिका आ गई, तब उन्होंने निम्नलिखित दो छन्द गढ़कर लिख दिये। इन्हें पढ़कर लोग अपनी भूलको समझ गये, और कविवरको कोई परम विद्वान् और वर्मात्मा समझकर वैयाघृत्यमें लवलीन हुए।

ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना ।

प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनंत सु सोहना ॥

जा परजैको अंत, सत्यकर मानना ।

चले बनारसिदास, फेर नहि आवना ॥

इस कथासे जाना जाता है कि, कविवरकी मृत्यु किमी ऐसे स्थानमें हुई है, जहां उनके परिचयी नहीं थे । क्योंकि आगरे अथवा जौनपुरमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, वहां इस प्रकारकी घटना नहीं हो सकती थी ।

वनारसीदासजीकी रचना ।

वनारसीविलास, नाटकसमयसार, नाममाला, और अर्द्ध-कथानक, ये चार ग्रन्थ कविवरकी रचनाके प्रसिद्ध हैं । बाबा दुलीचन्दजी संगृहीत ग्रन्थोंकी सूची (जैनशास्त्र नाममाला) में वनारसीपद्धति ग्रन्थ भी आपका बनाया हुआ लिखा है । अभी तक हम अर्द्धकथानक और वनारसीपद्धति दोनोंको एक समझते हैं, परन्तु दुलीचन्दजीके लेखसे दो पृथक् ग्रन्थ प्रतीत होते हैं । क्योंकि उन्होंने वनारसीपद्धतिको जयपुरके भंडारमें मौजूद बताया है । अतः होसक्ता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ हो, अथवा

१ और पांचवा ग्रन्थ वह है, जो यमुनानदीके विशालगर्भमें सदाके लिये बिलीन हो गया है । और जिसके लिये कर्ता महाशयके रसिक मित्र दुःखी हुए थे । पाठको । स्मरण है, वह शृङ्गार-रसका ग्रन्थ था ।

२ वनारसीपद्धतिकी श्लोकसंख्या बाबा दुलीचन्दजीने ५०० लिखी है, और अर्द्धकथानककी श्लोकसंख्या उससे दुगुनीके अनुमान है । अर्द्धकथानकमें ६७० दोहा चौपाई हैं । अतः संदेह होता है कि, यह कोई दूसरा ग्रन्थ होगा, यदि बाबाजीका लिखना सत्य हो तो । इसके अतिरिक्त बाबाजीने वनारसीपद्धतिको भाषा छन्दोबद्ध विलासोंके कोष्ठकमें भी लिखा है । जिससे प्रतीत होता है कि, यह भी कोई वनारसीविलास सरीखा संग्रह है, जो किसी दूसरेने किया है, अथवा स्वयं कविवरका किया हुआ है ।

अर्द्धकवानकका ही उत्तरार्द्ध हो, जिसमें उत्तरजीवनकी कथा लिखी गई हो, और अपर नाम वनारसीपद्धति हो। परन्तु हमारे देखनेमें यह ग्रन्थ नहीं आया। प्रयत्नसे यदि प्राप्त हो जावेगा, तो वह भी कभी पाठकोंके समक्ष किया जावेगा।

१ वनारसी विलास—यह कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है, किन्तु कविवर रचित अनेक कविताओंका संग्रह है, इस संग्रहके कर्त्ता आगरानिवासी पंडित जगजीवनजी हैं। आप कविवरकी कविताके बड़े प्रेमी थे। संवत् १७७१ में आपने बड़े परिश्रमसे इस काव्यका संग्रह किया है, ऐसा अन्त्यप्रशस्तिसे स्पष्ट प्रतिभासित होता है। सज्जनोत्तम जगजीवनजी आगराके ही रहनेवाले थे, इससे संभवतः उनकी सब कविताओंका संग्रह आपने किया होगा; परन्तु हमको आशा है कि, यदि अब भी प्रयत्न किया जावेगा, तो बहुत सी कवितायें एकत्रित हो सकेंगी। इस भूमिकाके लिखते समय हमने दो तीन स्थानोंको इस विषयमें पत्र लिखे थे। यदि अवकाश होता, तो बहुत कुछ आशा हो सकी थी, परन्तु शीघ्रता की गई, इससे कुछ नहीं हो सका। तथापि दो तीन पद इस संग्रहके अतिरिक्त मिले हैं, जिन्हें हमने ग्रन्थान्तमें लगा दिये हैं। 'वनारसी विलास' की कविता कैसी है, इसके लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। "कर कंकनको आरसी क्या?" काव्यरसिक पाठक स्वयं इसका निर्णय कर लेंगे।

२ नाटक समव्यसार—यह ग्रन्थ भाषासाहित्यके गगनमंड-

१ संग्रहकर्त्ताने इस ग्रन्थमें थोड़ेसे पद्य कैवलरलालकी छापवाले भी संग्रह कर लिये हैं। यह कैवलरलालजी वनारसीदासजीके पांच सित्रोंमें अन्यतम थे।

लका निष्कलंक चन्द्रमा है । इसकी रचनामें कविवरने अपनी जिस अपूर्व शक्तिका परिचय दिया है, उसे भाषासाहित्यके अध्यात्मकी चरमसीमा कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी । नाटक समयसारकी रचना आदिका समय पहिले लिखा जा चुका है, यहां उसके काव्यका परिचय देनेके लिये हम दो चार छन्द उद्धृत करते हैं । पाठक ध्यानसे पढ़ें, और देखें हमारा लिखना कहां तक सत्य है ।

(१)

मोक्ष चलवेको सैन, करमको करै वैन ,
जाको रस भौन बुध लौन ज्यों धुलत है ।
गुणको गिरंथ निरगुनको सुगम पंथ,
जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥
याहीके जो पक्षी सो उड़त ज्ञान गगनमें,
याहीके विपक्षी जगजालमें रलत है ।
हारैक सो चिमल विराटक सो विसतार,
नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है ॥

(२)

काया चित्रसारीमें करम परंजंक भारी,
मायाकी सँवारी सेज चादर कलपना ।
सैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये,
मोहकी मरोर यह लोचनको ढपना ॥

उदै बल जोर यहै स्वासको शवद धोर,
विषय सुख काजकी दौर यहै सपना ॥
ऐसी मूढ दशामें मगन रहै तिहुं काल,
धावै भ्रमजालमें न पावै रूप अपना ॥

(३)

काजविना न करै जिय उद्यम, लाजविना रन माहि न जूझै ।
डोलविना न सधै परमारथ, शीलविना सतसों न अरुझै ॥
नेमविना न लहै निहचैपद, प्रेमविना रस रीति न वृझै ।
ध्यानविना न थमै मनकी गति, ज्ञानविना शिवपंथ न सृझै ॥

(४)

रूपकी न झाँक हिये करमको डाँक पिये,
ज्ञान दवि रह्यो मिरगाँक जैसे घनमें ।
लोचनकी डाँकसों न माने सदगुरु हाँक,
डोलै पराधीन मूढ राँक तिहुं पनमें ॥
टाँकें इक मांसकी डलीसी तामें तीन फाँकें,
तीनिको सो आँकें लिखि राख्यो काहु तनमें ।
तासों कहै 'नाँक' ताके राखिवेको करें काँक,
लौँकसो खरग वांघि बाँक धरे मनमें ॥

१ झलक । २ चन्द्रमा । ३ रंक (दीन) । ४ टंक (परिमाण-
विशेष) । ५ टुकड़े । ६ अंक (संख्या) । ७ लंक (कमर) ।
८ बंकता (झिड़ाई) ।

(५)

है नाहीं नाहीं सु है, है है नाहीं नाहिं ।
यह सरवंगी नयधनी, सब माने सबमाहिं ॥

(६)

कायासे विचारि प्रीति मायाहीमें हारजीति,
लिये हठरीति जैसे हारिलकी लकरी ।
चुंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहै भूमि,
ल्यों ही पाँय गाड़े पै न छाड़े टेक पकरी ॥
मोहकी मरोरसों भरमको न ठोर पावे,
धावै चहुँओर ज्यों बढ़ावै जाल मकरी ।
ऐसी दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झलि,
फूली फिरै ममता जंजीरनसों जकरी ॥

(७)

रूपकी रसीली भ्रम कुलफकी कीली सील,
सुधाके समुद्र झीली सीली सुखदाई है ।
प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदान की सु,
राची नरवाची ठौर सांची ठकुराई है ॥
धामकी खबरदार रामकी रमनहार,
राधा रस पंथनिमें ग्रंथनिमें गाई है ।
संततिकी मानी निरवानी नूरकी निशानी,
यातें सदबुद्धि रानी राधिका कहाई है ॥

पाठक । इस ग्रन्थकी सम्पूर्ण रचना इसी प्रकारकी है । जिस पद्यको देखते हैं, जी चाहता है कि, उसीको उद्धृत कर लें, परन्तु इतना स्थान नहीं है, इसलिये इतनेमें ही संतोष करना पड़ता है । आपकी इच्छा यदि अधिक बलवती हो, तो उक्त ग्रन्थका एकवार आद्यन्त पाठ कर जाइये ।

नाटकसमयसार मूल, भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृतग्रन्थ है । उसपर परमभट्टारक श्रीमदमृतचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीका तथा कलशे हैं । और पंडित रायमलजीकृत बालावबोधिनी माया-टीका है । इन्हीं दोनों तीनों टीकाओंके आश्रयसे कविवरने इस अपूर्व पद्यानुवादकी रचना की है ।

३ नाममाला—यह महाकवि श्रीषचंजयकृत नाममालाका साया पद्यानुवाद है । शब्दोंका ज्ञान करनेके लिये यह एक अत्यन्त सरल और उपयोगी ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया । परन्तु ग्रन्थप्रकाशक महाशयने मुजफ्फरपुरजिलेके छपरौली ग्रामके बालकोंको एकवार पढ़ते हुए सुना था, परन्तु पीछे प्रयत्न करने पर भी नहीं मिला । नाममालाके कुछ दोहे नाटक समयसारमें इस प्रकार लिखे हैं—

प्रेक्षा ध्रियना शेमुपी, धी मेभा मति बुद्धि ।

सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥

१ पण्डित जयचन्दजी, और पंडित हेमराजजीने भी समयसारकी मायाटीका की है । पंडित जयचन्दजीकी टीका सबसे विस्तृत और बोधप्रद कही जाती है ।

२ शेमुपीधिपणा प्राज्ञा, मनीषा बीस्तयाशयः ॥ ११० ॥

निपुन विचच्छन्न विबुध बुध, विद्याधर विद्वान् ।

पटु प्रवीन पंडित चतुर, सुधी मुजन मनिमान ॥

कलावान कोविद कुशल, मुमन दत्त धीमन्त ।

शाता सज्जन ब्रह्मविद, तप गुनीजन सन्त ॥

४ अर्द्धकथानक—यह कविवरकी रचनाका चौथा ग्रन्थ है, इसमें ६७३ दोहा चौपाई हैं। हमने यह जीवनचरित्र रत्ना ग्रन्थके आधारसे लिखा है। इनकी कविताका विशेष परिचय देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीवनचरित्रमें यत्र तत्र इसके अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। अनुमानसे जाना जाता है, कि यह ग्रन्थ बड़ी शीघ्रतासे लिखा गया है, क्योंकि अन्य कविताओंकी नाई कविवरने इसमें यमकानुप्राणदिपर ध्यान नहीं दिया है। केवल व्यतीतदशाका कथन ही इनके रचनेका मुख्य उद्देश रहा है। फिर भी कहीं २ के स्वाभाविक पद्य बड़े मनोहर हुए हैं।

व्यपसंहार ।

अन्तमें हिन्दीके प्रिय गुणग्राही पाठकवर्गोंसे निवेदन करके यह लेख पूर्ण किया जाता है कि, ग्रन्थकर्ता, प्रकाशक और नवक अन्तमें संशोधक तथा चरित्रलेखकके परिश्रमका विचार करके ये इसे ध्यानसे पढ़ें, पढ़ावें, और सर्व साधारणमें प्रचार करें। इतनेसे ही हम लोग अपना परिश्रम सकल समझेंगे। प्रकाशक महाशयकी आदरणीय प्रेरणासे मैंने इस ग्रन्थके संशोधनादिका कार्य अपनी मन्दबुद्धानुसार किया

१ प्राज्ञाभेदादिमान्विद्वानभिरूपो विचक्षणः ।

पण्डितः सूरिराचार्यो वाग्मा नैयायिकः स्मृतः ॥ १११ ॥

है, उसमें कहांतक सफलता हुई है, इसके निर्णयका भार पाठकोंपर ही है। यदि वाचकोंने हमारे इस परिश्रमका किंचित् भी आदर किया तो, शीघ्र ही वृन्दावनविलासादि काव्य ग्रन्थ कवियोंके विस्तृत इतिहाससहित दृष्टिगोचर करनेका प्रयत्न किया जावेगा।

हिन्दीके माननीय पत्रसम्पादकों और समालोचकोंसे प्रार्थना है कि, वे कृपाकर इस ग्रन्थकी आद्यन्त-पाठपूर्वक निष्पक्षदृष्टिसे समालोचना करनेकी कृपा करें और हम लोगोंके उत्साह और हिन्दी-प्रचारकी रुचिको बढ़ावें।

बनारसीदासजीके चरित्र लिखनेमें माननीय मुंशी देवीप्रसादजी सुंसिफ जोधपुरसे मुसलमानी इतिहासकी बहुत सी बातोंकी सहायता मिली है, इस लिये यह ग्रन्थ और लेखक दोनों उनके आभारी हैं!

ग्रन्थसंशोधन तथा जीवनचरित्रमें दृष्टिदोषसे तथा प्रमादवशसे यदि कोई ग्ल रह गई हो, तो पाठकवृन्द क्षमा करें। क्योंकि—

“न सर्वः सर्वं जानाति” इत्यलम् विद्वद्वरेषु।

वम्बई-चन्दाबाड़ी।
३०-९-०५ ई०

विनयावनत—
नाथूराम प्रेमी।
देवरी (सागर) निवासी।

वनारसीविलास ग्रन्थकी

विषयानुक्रमणिका.

विषयनाम. पृष्ठसंख्या.

१ जिनसहस्रनाम.	३
२ सूक्तमुक्तावली. (संस्कृतसहित)	१७
३ ज्ञानदावनी.	६९
४ वेदनिर्णयपंचासिका.	९०
५ त्रैशठ शलाकापुरुषोंकी नामावली.	१०१
६ मार्गणाविधान.	१०४
७ कर्मप्रकृतिविधान.	१०७
८ कल्याणमंदिरस्तोत्र.	१२६
९ साधुवंदना.	१३१
१० मोक्षपैड़ी.	१३४
११ कर्मछत्तीसी.	१३९
१२ ध्यानवत्तीसी.	१४३
१३ अध्यात्मवत्तीसी.	१४६
१४ ज्ञानपच्चीसी.	१५०
१५ शिवपच्चीसी.	१५३
१६ भवसिंधुचतुर्दशी.	१५५
१७ अध्यात्मफाग, (घमार)	१५७
१८ सोलहतिथि.	१६०
१९ तेरहकाठिया.	१६१
२० अध्यात्मगीत. (मेरे मनका प्यारा जो मिलै) ...	१६३
२१ पंचपदविधान.	१६७

२२ सुमतिदेव्यष्टोत्तरशतनाम.	...	...	...	...	१६८
२३ शारदाष्टक.	...	...	...	...	१७०
२४ नवदुर्गाविधान.	...	...	...	...	१७२
२५ नामनिर्णयविधान.	...	...	...	...	१७६
२६ नवरत्नकवित्त.	...	...	...	...	१७८
२७ अष्टप्रकारजिनपूजन.	...	...	...	...	१८१
२८ दशदानविधान.					१८२
२९ दशबोळ.					१८४
३० पहेली.					१८६
३१ प्रश्नोत्तरदोहा.					१८७
३२ प्रश्नोत्तरमाला.					१८८
३३ अवस्थाष्टक....					१९०
३४ पटद्दर्शनाष्टक.					१९१
३५ चातुर्वर्ण्य.					१९२
३६ अजितनाथजीके छंद.					१९३
३७ शान्तिनाथजिनस्तुति.					१९५
३८ नवसेनाविधान.					१९७
३९ नाष्टकसमयसारसिद्धान्तके पाठान्तरकलशोंका					
भाषानुवाद.					१९९
४० मिथ्यामतवाणी.					२०१
४१ प्रस्ताविकफुटकरकविता.					२०२
४२ गोरखनाथके वचन.					२०९
४३ वैद्यआदिके भेद. (फुटकर कविता)					२१०
४४ परमार्थवचनिका.					२१४

४५ उपादाननिमित्तकी चिठी.	२२४
४६ निमित्तउपादानके दोहे.	२३०
४७ राग भैरव.	२३१
४८ राग रामकली. (२ पद) तथा दोहा.	२३२-२३३
४९ राग विलावल. (३ पद)	२३४-२३५
५० राग आशावरी (२ पद)	२३६-२३७
५१ बरवाछंद.	२३८
५२ राग घनाश्री. (२ पद)	२४०
५३ राग सारंग. (४ पद)	२४१-२४२-२४३
५४ आलापदोहा. (६)	२४३
५५ राग गौरी. (२ पद)	२४४-२४५
५६ राग काफी. (२ पद)	२४६
५७ परमार्थ हिंडोलना.	२४७
५८ मलार तथा सोरठराग.	२४९
५९ नयापद. १ ला	२५०
६० नयापद २ रा	२५०
६१ नयापद ३ रा	२५१
६२ बनारसीविलासके संग्रहकर्त्ता.	२५१



नमः श्रीबीतरागाय.

जैनग्रन्थरत्नाकरस्य—रत्न ७ वां

बनारसीविलास.

विषय सूचनिका

कविता मनहर.

प्रथम सहस्रनाम सिन्दूरप्रकरधाम, वावनीसैवैया वेद-
निर्णय पचासिका । त्रैलोक्यशैलका मार्गना करमकी प्रकृति-
कल्याणमन्दिर सार्धवन्दन सुवासिका ॥ पैदी' करमछत्तीसी
पीछे ध्यानकी वत्तीसी, अध्यातमें वत्तीसी पचीसी' ज्ञान
शासिका । शिवकी पंचीसी भवसिन्धुकी चतुरदशी, अध्यात-
मंफाग तिथिपोड़सविलासिका ॥ १ ॥

तेरहकाठिया भेरे मनका सुप्यारागीत, पंचपदं विधान
सुमति देवीशैत है । शारदा वैढाई नवदुरंगा निर्णय नौम,
नौरतन कविच सु पूजा दानदत्त है ॥ दशवोल पहली सुप्रश्न

प्रश्नोत्तरमाला, अवस्था मतान्तर दोहरी वरणत है । अजितके छन्द शान्तिनाथछन्द सेनानव, नाटकेकवित्त चार, वानी मिथ्या मत है ॥ २ ॥

फुटकरसवैया बनाये वच गोरेखके, वेद आदिभेद परमोरथ वचनिका । उपादान निमित्तकी चिट्ठी तिर्नहीके दोहे, भैरों रामकेली ओ विलावल सचनिका ॥ आशांवरी वरेवा सु धनोश्री सौरंग गौरी, काँफी ओ हिंडोलना मलारकी मचनिका । भूपर उद्योत करो भव्यनके हिरदैमें, विरधौ । बनारसीविलासकी रचनिका ॥ ३ ॥

दोहा.

ये वरणे संक्षेपसों, नाम भेद विरतन्त ।

इनमें गर्भित भेद बहु, तिनकी कथा अनन्त ॥ १ ॥

महिमा जिनके वचनकी, कहै कहां लग कोय ।

ज्यों ज्यों मति विस्तारिये, त्यों त्यों अधिकी होय ॥ २ ॥

इति विषयसूचनिका.



श्री

अथ जिनसहस्रनाम.

दोहा.

परमदेव परनामकर, गुरुको करहुं प्रणाम ।
बुधिवल वरणों ब्रह्मके, सहस्रअष्टोत्तर नाम ॥ १ ॥
केवल पदमहिमा कहों, कहों सिद्ध गुनगान ।
भाषा प्राकृत संस्कृत, त्रिविधि शब्द परमान ॥ २ ॥
एकारथवाची शब्द, अरु द्विरुक्ति जो होय ।
नाम कथनके कवितमें, दोष न लागे कोय ॥ ३ ॥

चौपाई १५ भाषा.

प्रथमोकाररूप ईशान । करुणासागर कृपानिधान ॥
त्रिभुवननाथ ईश गुणवृन्द । गिरातीत गुणमूल अनन्द ॥ १ ॥
गुणी गुप्त गुणवाहक बली । जगतदिवाकर कौतूहली ॥
क्रमवर्ती करुणामय क्षमी । दशावतारी दीरघ दमी ॥ २ ॥
अलख अमूरति अरस अखेद । अचल अवाधित अमर अवेद ॥
परम परमगुरु परमानन्द । अन्तरजामी आनन्दकन्द ॥ ३ ॥
प्राणनाथ पावन अमलान । शील सदन निर्मल परमान ॥
तत्त्वरूप तपरूप अमेय । दयाकेतु अविचल आदेय ॥ ४ ॥
शीलसिन्धु निरुपम निर्वाण । अविनाशी अस्पर्श अमान ॥
अमल अनादि अदीन अछोम । अनातङ्क अज अगम अलोभा ॥ ५ ॥

अनवस्थित अध्यातमरूप । आगमरूपी अघट अनूप ॥
 अपट अरूपी अभय अमार । अनुभवमंडन अनघ अपार ॥ ६ ॥
 विमलपूतशासन दातार । दशातीत उद्धरन उदार ॥
 नभवत पुंडरीकवत हंस । करुणामन्दिर एनविध्वंस ॥ ७ ॥
 निराकार निहचै निरमान । नानारसी लोकपरमान ॥
 सुखधर्मी सुखज्ञ सुखपाल । सुन्दर गुणमन्दिर गुणमाल ॥ ८ ॥

दोहा.

अम्बरवत आकाशवत, किर्यारूप करतार ।
 केवलरूपी कौतुकी, कुशली करुणागार ॥ १२ ॥

इति ओंकार नाम प्रथमशतक ॥ १ ॥

चौपाई.

ज्ञानगम्य अध्यातमगम्य । रमाविराम रमापति रम्य ॥
 अप्रमाण अधहरण पुराण । अनमित लोकालोक प्रमाण ॥ १३ ॥
 कृपासिन्धु कूटस्थ अछाय । अनभव अनारूढ असहाय ॥
 सुगम अनन्तराम गुणग्राम । करुणापालक करुणाधाम ॥ १४ ॥
 लोकविकाशी लक्षणवन्त । परमदेव परब्रह्म अनन्त ॥
 दुराराध्य दुर्गस्थ दयाल । दुरारोह दुर्गम दिक्पाल ॥ १५ ॥
 सत्यारथ सुखदायक सूर । शीलशिरोमणि करुणापूर ॥
 ज्ञानगर्भ चिद्रूप निधान । नित्यानन्द निगम निरजान ॥ १६ ॥

१. 'विपुल' ऐसा भी पाठ है.

अकथ अकरता अजर अजीत । अवपु अनाकुल विषयातीत ॥
 मंगलकारी मंगलमूल । विद्यासागर विगतदुःकूल ॥ १७ ॥
 नित्यानन्द विमल निरुजान । धर्मधुरंधर धर्मविधान ।
 ध्यानी धामवान धनवान । शीलनिकेतन बोधनिधान ॥ १८ ॥
 लोकनाथ लीलाधर सिद्ध । कृती कृतारथ महासमृद्ध ॥
 तपसागर तपपुञ्ज अछेद । भवभयभंजन अमृत अभेद ॥ १९ ॥
 गुणावास गुणमय गुणदाम । स्वपरप्रकाशक रमता राम ॥
 नवल पुरातन अजित विशाल । गुणनिवास गुणग्रह गुणपाल ॥ २० ॥
 दोहा.

लघुरूपी लालचहरन, लोभविदारन वीर ।
 धारावाही धौतमल, धेय धराधर धीर ॥ २१ ॥

इति ज्ञानगम्यनाम द्वितीयस्तक ॥ २ ॥

पदरिछन्द.

चिन्तामणि चिन्मय परम नेम । परिणामी चेतन परमछेम ॥
 चिन्मूरति चेता चिद्विलास । चूडामणि चिन्मय चन्द्रभास ॥ २२ ॥
 चारित्रधाम चित् चमत्कार । चरनातम रूपी चिदाकार ॥
 निर्वाचक निर्मम निराधार । निरजोग निरंजन निराकार ॥ २३ ॥
 निरभोग निरास्त्रव निराहार । नगनरकनिवारी निर्विकार ।
 आत्मा अनक्षर अमरजाद । अक्षर अवंव अक्षय अनाद ॥ २४ ॥

१. 'विपति अतीत' ऐसा भी पाठ है. २ वल्ल.

आगत अनुकम्पामय अडोल । अशरीरी अनुमृती अलोल ॥
 विश्वंभर विस्मय विश्वेष्टक । व्रजभूषण व्रजनायक विवेक ॥२५॥
 छलभंजन छायक छीनमोह । मेधापति अकलेवर अकोह ॥
 अद्रोह अविग्रह अग अरंक । अद्भुतनिधि करुणापति अवंक ॥२६॥
 सुखराशि दयानिधि शीलपुंज । करुणासमुद्र करुणाप्रपुंज ॥
 वज्रोपम व्यवसायी शिवस्थ । निश्चल विमुक्त ध्रुव सुथिर सुस्थ ॥२७॥
 जिननायक जिनकुंजर जिनेश । गुणपुंज गुणाकर मंगलेश ॥
 क्षेमंकर अपद अनन्तपानि । सुखपुंजशील कुलशील स्वानि ॥२८॥
 करुणारसभोगी भवकुठार । कृपिवत कृशानु दारन तुसार ॥
 कैतवरिपु अकल कलानिधान । धिपणाधिप ध्याता ध्यानवान ॥२९॥
 दोहा.

छपाकरोपम छलरहित, छेत्रपाल छेत्रज्ञ ॥

अंतरिक्षवत गगनवत, हुत कर्माकृत यज्ञ ॥ ३० ॥

इति चिन्तामणि नाम तृतीयशतक ॥ ३ ॥

पदरिछन्दः

लोकांत लोकप्रभु लुप्तमुद्र । संवर सुखधारी सुखसमुद्र ॥
 शिवरसी गूढरूपी गरिष्ठ । बलरूप बोधदायक वरिष्ठ ॥३१॥
 विद्यापति धीधव विगतवाम । धीवंत विनायक वीतकाम ॥
 धीरस्व शिलीद्रुम शीलमूल । लीलाविलास जिन शारदूल ॥३२॥
 परमारथ परमात्म पुनीत । त्रिपुरेश तेजनिधि त्रपातीत ॥
 तपराशि तेजकुल तपनिधान । उपयोगी उग्र उदोतवान् ॥३३॥

उत्पातहरण उद्दामधाम । व्रजनाथ विमक्षर विगतनाम ॥
 बहुरूपी बहुनामी अजोप । विपहरण विहारी विगतदोष ॥ ३४ ॥
 छितिनाथ छमावर छमापाल । दुर्गम्य दयार्णव व्यामाल ॥
 चतुरेश चिदातम चिदानंद । सुखरूप शीलनिधि शीलकन्द ॥ ३५ ॥
 रसव्यापक राजा नीतिवन्त । ऋषिरूप महर्षि महमहंत ॥
 परमेश्वर परमऋषि प्रधान । परत्नामी प्रगट प्रतापवान ॥ ३६ ॥
 परतक्षपरमसुख करममुद्र । हन्तारि परमगति गुणसमुद्र ॥
 सर्वज्ञ सुदर्शन सदावृत्त । शंकर सुवासवासी अलिप्त ॥ ३७ ॥
 शिवसम्पुटवासी सुखनिधान । शिवपंथ शुभंकर शिखावान ॥
 असमान अंशघाती अशेष । निर्द्वन्दी निर्बद्ध निरवशेष ॥ ३८ ॥

दोहा.

विस्मयकारी बोधमय, विश्वनाथ विश्वेश ।
 बंधविमोचन वज्रवत, बुधिनायक विबुधेश ॥ ३९ ॥
 इति लोकांत नाम चतुर्थ शतक ॥ ४० ॥

छन्दोऽष्टक.

महामंत्र मंगलनिधान मलहरन महाजप ।
 मोक्षस्वरूपी मुक्तिनाथ भक्तिमथन महातप ॥
 निस्तरङ्ग निःसङ्ग नियमनायक नंदीसुर ।
 महादानि महज्ञानि महाविस्तार महागुर ॥ ४० ॥
 परिपूर्ण परजायरूप कमलस्थ कमलवत ।
 गुणनिकेत कमलासमूह धरनीश ध्यानरत ॥

भूतिवान् भूतेश मारुह्य भर्म उछेदक ।

सिंहासननायक निराश निरभयपदवेदक ॥ ४१ ॥

शिवकारण शिवकरन भविक वंधव भवनाशन ।

नीरिरंश निःसमर सिद्धिज्ञासन शिवआसन ॥

महाकाजं महाराज मारजित मारविहंडन ।

गुणमय द्रव्यस्वरूप दशाधर दारिदखंडन ॥ ४२ ॥

जोगी जोग अतीत जगत उद्धरन उजागर ।

जगतबंधु जिनराज शीलसंचय सुखसागर ॥

महाशर सुखसदन तरनतारन तमनाशन ।

अगनितनाम अनंतधाम निरमद निरवासन ॥ ४३ ॥

वारिजवत जलजवत पद्म उपमा पंकजवत ।

महाराम महधाम महायशवंत महासत् ॥

निजकृपालु करुणालु बोधनायक विद्यानिधि ।

प्रशमरूप प्रशमीश परमजोगीश परमविधि ॥ ४४ ॥

वस्तुछन्द.

सुरसमोगी रसील समुदायकी चाल—

शुभकारनशील इह सील राशि संकट निवारन ।

त्रिगुणात्म तपतिहर परमहंसपर पंचवारन ॥

परम पदारथ परमपथ, दुखभंजन दुरलक्ष ।

तोषी सुखपोषी सुगति, दमी दिगम्बर दक्ष ॥ ४५ ॥

इति महामंत्र नाम पंचम शतक ॥५॥

रोडक छन्द.

परमप्रबोध परोक्षरूप, परमादनिकन्दन ।

परमध्यानधर परमसाधु, जगपति जगवन्दन ॥

जिन जिनपति जिनसिंह, जगतमणि बुधकुलनायक ।

करुणातीत कुलालरूप, दृगमय दृगदायक ॥ ४६ ॥

क्रोपनिवारणधर्मरूप, गुणराशि रिपुञ्जय ।

करुणासदन समाधिरूप, शिवकर शत्रुञ्जय ॥

परावर्त्तरूपी प्रसन्न, आत्मप्रमोदमय ।

निजाधीन निर्द्वन्द्व, ब्रह्मवेदक व्यतीतमय ॥ ४७ ॥

अपुनर्मय जिनदेव सर्वतोभद्र कलिलहर ।

धर्माकर ध्यानस्थ धारणाधिपति धीरधर ॥

त्रिपुरगर्भ त्रिगुणी त्रिकाल कुशलतपपादप ।

सुखमन्दिर सुखमय अनन्तलोचन अविषादप ॥ ४८ ॥

लोकअग्रवासी त्रिकालसाखी करुणाकर ।

गुणआश्रय गुणधाम गिरापति जगत्प्रभाकर ॥

धीरज धौरी धौतकर्म धर्मग धामेश्वर ।

रत्नाकर गुणरत्नराशि रजहर रामेश्वर ॥ ४९ ॥

निरलिङ्गी शिवलिङ्गधार बहुतुंड अनानन ।

गुणकदम्ब गुणरसिक रूपगुण अञ्जिक पानन ॥

निरञ्कुश निरधाररूप निजपर परकाशक ॥

विगतास्रव निरवध वधहर वधविनाशक ॥ ५० ॥

बृहत् अनङ्ग निरंश अंशगुणसिन्धु गुणालय ।
 लक्ष्मीपति लीलानिधान वितपति विगतालय ॥
 चन्द्रवदन गुणसदन चित्रधर्मासुख शानक ।
 ब्रह्माचारी वज्रवीर्य बहुविधि निरवानक ॥ ५१ ॥
 दोहा.

सुखकदम्ब साधक सरन, मुजन इष्टसुखवास ।
 बोधरूप बहुलात्मक, शीतल श्रीलविलास ॥ ५२ ॥
 इति श्रीपरमप्रबोधनामक पद्य सतक ॥ ६ ॥

रूप चाँपड़.

केवलज्ञानी केवलदरसी । सन्यासी संयमी समरसी ॥
 लोकातीत अलोकाचारी । त्रिकालज्ञ धनपति धनधारी ॥ ५३ ॥
 चिन्ताहरण रसायन रूपी । मिथ्यादलन महारसकूपी ॥
 निर्वृतिकर्ता मृषापहारी । ध्यानधुरंधर धीरजधारी ॥ ५५ ॥
 ध्याननाथ ध्यायक बलवेदी । घटातीत घटहर घटभेदी ॥
 उदयरूप उद्धत उत्साही । कलुषहरणहर किल्बिषदाही ॥ ५६ ॥
 वीतराग बुद्धीश विधारी । चन्द्रोपम वितन्त्र व्यवहारी ॥
 अगतिरूप गतिरूप विधाता । शिवविलास शुचिमय सुखदाता ॥ ५७ ॥
 परमपवित्र असंख्यप्रदेशी । करुणासिन्धु अचिन्त्य अमेयी ॥
 जगतसूर निर्मल उपयोगी । भद्ररूप भगवन्त अमोगी ॥ ५८ ॥

१ 'बुद्धि सुविचारी' ऐसा भी पाठ है.

मानोपम भरता भवनासी । द्वन्द्वविदारण बोधविलासी ॥
 कौतुकनिधि कुशली कल्याणी । गुरू गुसाँई गुणमय ज्ञानी ॥ ५९ ॥
 निरातंक निरवैर निरासी । मेघातीत मोक्षपदवासी ॥
 महाविचित्र महारसभोगी । अमभंजन भगवान् अरोगी ॥ ६० ॥
 कल्मषभंजन केवलदाता । धाराधरन धरापति धाता ॥
 प्रज्ञाधिपति परम चारित्री । परमतत्त्ववित् परमविचित्री ॥ ६१ ॥
 संगतीत संगपरिहारी । एक अनेक अनन्ताचारी ॥
 उद्यमरूपी अरघगामी । विश्वरूप विजया विश्रामी ॥ ६२ ॥

डोहा.

धर्मविनायक धर्मधुज, धर्मरूप धर्मज्ञ ।
 रत्नगर्भ राधारमण, रसनातीत रसज्ञ ॥ ६३ ॥

इति केवलज्ञानी नामक सप्तम शतक ॥ ७ ॥

रूप चौपई.

परमप्रदीप परमपददानी । परमप्रतीति परमरसज्ञानी ॥
 परमज्योति अघहरन अगेही । अजित अखंड अनंग अदेही ॥ ६४ ॥
 अतुल अशेष अरेष अलेपी । अमन अवाच अदेख अभेपी ॥
 अकुल अगूढ़ अकाय अकर्मी । गुणधर गुणदायक गुणमर्मी ॥ ६५ ॥
 निस्सहाय निर्मम नीरागी । सुधारूप सुपथग सौभागी ॥
 हतकैतवी मुक्तसंतापी । सहजस्वरूपी सत्रविधि व्यापी ॥ ६६ ॥
 महाकौतुकी महद् विज्ञानी । कपटविदारन करुणादानी ॥
 परदारन परमारथकारी । परमपौरुषी पापप्रहारी ॥ ६७ ॥

केवलब्रह्म धरमधनधारी । हतविभाव हतदोष हँतारी ॥
 भविकदिवाकर मुनिमृगराजा । दयासिंधु भवसिंधु जहाजा ॥६८॥
 शंभु सर्वदर्शी शिवपंथी । निरावाध निःसंग निर्ग्रन्थी ॥
 यती यंत्रदाहृत (?) हितकारी । महामोहघ्नारन बलधारी ॥६९॥
 चित्तसन्तानी चेतनवंशी । परमाचारी गरमविघ्वंसी ॥
 सदाचरण स्वशरण शिवगामी । बहुदेशी अनन्त परिणामी ॥७०॥
 वितथभूमिदारनहलपानी । अमवारिजवनदहनहिमानी ॥
 चारु चिदाकित द्वन्दातीती । दुर्गरूप दुर्लभ दुर्जाती ॥ ७१ ॥
 शुभकारण शुभकर शुभमंत्री । जगतारन ज्योतीश्वर जंत्री ७२

दोहा.

जिनपुङ्गव जिनकेहरी, ज्योतिरूप जगदीश ।

मुक्ति मुकुन्द महेश हर, महदानंद मुनीश ॥ ७३ ॥

इति श्रीपरमप्रदीप नाम अष्टम शतक ॥ ८ ॥

मंगलकमला.

दुरित दलन सुखकन्द । हत भीत अतीत अमन्द ॥

शीलशरणहत कोप । अनगंग अनंग अलोप ॥ ७४ ॥

हंसगरभ हतमोह । गुणसंचय गुणसन्दोह ॥

सुखसमाज सुख गेह । हतसंकट विगत सनेह ॥ ७५ ॥

क्षोभदलन हतशोक । अगणित बल अमलालोक ॥

धृतसुधर्म कृतहोम । सतसूर अपूरव सोम ॥ ७६ ॥

१ दूसरी पुस्तकमें 'त्रिगुणात्म निज सन्दोह' ऐसा पाठ है.

हिमवत हतसंताप । व्रजव्यापी विगतालाप ॥
 पुण्यस्वरूपी पूत । सुखसिंधु स्वयं संभूत ॥ ७७ ॥
 समयसारश्रुतिधार । अविकल्प अजल्पाचार ॥
 शान्तिकरन धृतशान्ति । कलरूप मनोहरकान्ति ॥ ७८ ॥
 सिंहासनपर आरूढ । असमंजसहरन अमूढ ॥
 लोकजयी हतलोभ । कृतकर्मविजय धृतशोभ ॥ ७९ ॥
 मृत्युंजय अनजोग । अनुकम्प अशंक असोग ॥
 सुविधिरूप सुमतीश । श्रीमान् मनीषाधीश ॥ ८० ॥
 विदित विगत अवगाह । कृतकारज रूपअथाह ॥
 वर्द्धमान गुणभान । करुणाधरलीलविधान ॥ ८१ ॥
 अक्षयनिधान अगाध । हतकलिल निहतअपराध ॥
 साधिरूप साधक धनी (?) । महिमा गुणमेरु महामनी (?) ८२
 उत्पति वैभ्रुववान । त्रिपदी त्रिपुंज त्रिविधान ॥
 जगजीत जगदाधार । करुणागृह विपतिविदार ॥ ८३ ॥
 जगसाक्षी वरवीर । गुणगेह महागंभीर ॥
 अभिनंदन अभिराम । परमेयी परमोद्दाम ॥ ८४ ॥

दोहा.

सगुण विभूती वैभवी, सेमुषीश संबुद्ध ।
 सकल विश्वकर्मा अभाव, विश्वविलोचन शुद्ध ॥ ८५ ॥

इति दुरितदलननाम नवम शतक ॥ ९ ॥

संगलकमला.

शिवनायक शिव एव । प्रवलेश प्रजापति देव ॥
 मुदित महोदय मूल । अनुकम्पा सिंधु अकूल ॥ ८६ ॥
 नीरोपम गर्त पंक । नीरीहत निर्गत शंक ॥
 नित्य निरामय मौन । नीरन्ध्र निराकुल गान ॥ ८७ ॥
 परम धर्म रथ सारथी (?) । धृत केवल रूप कृतारथी (?) ॥
 परम नित्य भंडार । संवरमय संयमधार ॥ ८८ ॥
 शुभी सरवगत संत । शुद्धोषन शुद्ध सिद्धंत ॥
 नैयायक नय जान । अविगत अनंत अभिधान ॥ ८९ ॥
 कर्मनिर्जरामूल । अधभंजन सुखद अमूल ॥
 अद्भुत रूप अशेष । अवगमनिधि अवगमभेष ॥ ९० ॥
 बहुगुण रत्नकरंड । ब्रह्मांड रमण ब्रह्मंड ॥
 वरद बंधु भरतार । महदैंग महानेतार ॥ ९१ ॥
 गतप्रमाद गतपास । नरनाथ निराथ निरास ॥
 महामंत्र महास्वामि । महदर्थ महागति गामि ॥ ९२ ॥
 महानाथ महजान । महपावन महानिधान ॥
 गुणागार गुणवास । गुणमेरु गभीर विलास ॥ ९३ ॥
 करुणामूल निरंग । महदासन महारसंग ॥
 लोकवन्धु हरिकेश । महदीश्वर महदादेश ॥ ९४ ॥

१ कं=पाप २ महत्+अंग ३ महत्+आसन. ४ महत्+ईश्वर. ५ महत्+आदेश.

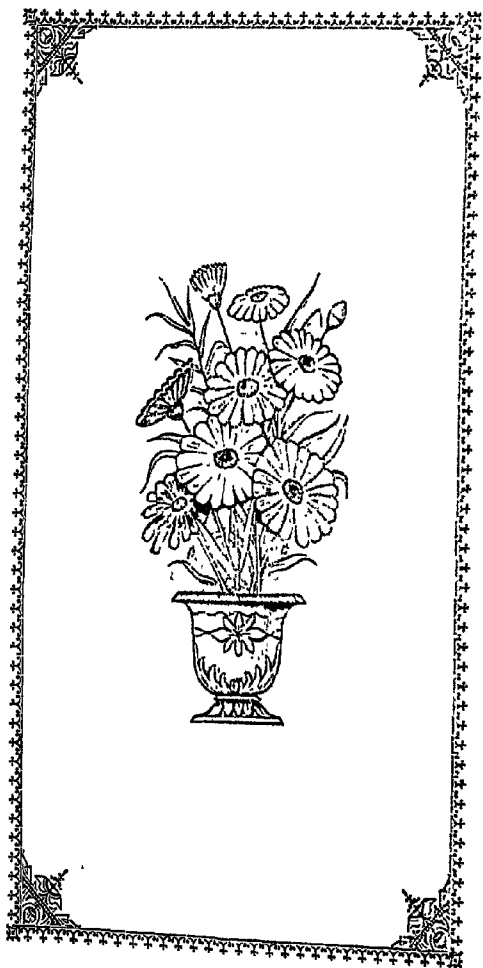
महाविभु महववन्त । धरणीधर धरणीकन्त ॥
 कृपावन्त कलिग्राम । कारणमय करत विराम ॥ ९५ ॥
 मायावेलि गयन्द । सम्मोहतिमरहरचन्द ॥
 कुमति निकन्दन काज । दुखगजमंजन मृगराज ॥ ९६ ॥
 परमतत्त्वसत संपदा (?) । गुणत्रिकालदर्शीसदा (?) ॥
 क्रोपदवानलनीर । मदनीरदहरणसमीर ॥ ९७ ॥
 भवकांतारकुठार । संशयमृणालजसिधार ॥
 लोमशिखरनिर्घात । विपदानिशिहरणप्रभात ॥ ९८ ॥

दोहा

संवररूपी शिवरमण, श्रीपति शीलनिकाय ॥
 महादेव मनमथमथन, सुखमय सुखसमुदाय ॥ ९९ ॥
 इति श्रीशिवनायक नाम दशम शतक ॥ १० ॥

दोहा.

इति श्रीसहस्रजटोतरी, नाम मालिका भूल ।
 अधिक कसर पुनरुक्ति की, कविप्रमादकी भूल ॥ १०० ॥
 परमपिंड ब्रह्मडमें, लोकशिखर निवसन्त ।
 निरखि नृत्य नानारसी, वानारसी नमन्त ॥ १०१ ॥
 माहिमा ब्रह्मविलासकी, मोपर कही न जाय ।
 यथाशक्ति कुछ वरणई, नामकथन गुणगाय ॥ १०२ ॥
 संवत सोलहसो निवे, श्रावण सुदि आदित्य ।
 करनक्षत्र तिथि पंचमी; प्रगट्यो नाम कवित्त ॥ १०३ ॥
 इति भापाजिनसहस्रनाम ।



ॐ

श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता
सूक्तमुक्तावली

तथा

स्वर्गाय कविवर बनारसीदासजीकृत
भाषासूक्तमुक्तावली.

(सिंदूरप्रकर.)

धर्माधिकार ।

शादूलविक्रीदित ।

सिन्दूरप्रकरस्तपः करिशिरःकोडे कषायाटवी-
दावार्चिर्निचयः प्रबोधदिवसप्रारम्भसूर्योदयः ।
मुक्तिलीकुचकुम्भकुङ्कुमरसः श्रेयस्तरोः पल्लव-
प्रोल्लासः क्रमयोर्नखद्युतिभरः पार्श्वप्रभोः पातु वः ॥१॥

पद्यपद ।

.शोभित तपगजराज, सीस सिन्दूर पूरलवि ।
बोधदिवस आरंभ, करण कारण उदोत रवि ॥
मंगल तरु पल्लव, कषाय कांतार हुताशन ।
बहुगुणरत्ननिधान, मुक्तिकमलकमलाशन ॥

इहिविधि अनेक उपमा सहित, अरुण चरण संताप हर ।
जिनराय पार्श्वनखज्योति भर, नमत बनारसि जोर कर ॥१॥

शार्दूलविश्रीडित ।

सन्तः सन्तु मम प्रसन्नमनसो वाचां विचारोद्यताः

सूतेऽम्मः कमलानि तत्परिमलं वाता वितन्वन्ति यत् ।

किं चाभ्यर्थनयानया यदि गुणोऽस्त्यासां ततस्ते स्वयं
कर्तारः प्रथने न चेदथ यदाःप्रत्यर्थिना तेन किम् ॥२॥

दोधकान्तयेसरीछन्द ।

जैसे कमल सरोवर वासै । परिमल तानु पवन परकाशै ।

त्यों कवि भाषहिं अक्षर जोर । संत गुजस प्रगटहिं चहुँओर ॥

जो गुणवन्त रसाल कवि, तौ जग महिमा होय ।

जो कवि अक्षर गुणरहित, तौ आदरै न कोय ॥ २ ॥

इन्द्रवज्रा ।

त्रिवर्गसंसाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य ।

तत्रापि धर्मं प्रवरं वदन्ति न तं विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

दोधकान्तयेसरीछन्द ।

सुपुरुष तीन पदारथ साधहिं । धर्म विशेष जान आराधहिं ।

धरम प्रधान कहै सब कोय । अर्थ काम धर्महितैं होय ॥

धर्म करत संसारसुख, धर्म करत निर्वाण ।

धर्मपथसाधनविना, नर तिर्यच समान ॥ ३ ॥

यः प्राप्य दुष्प्रापमिदं नरत्वं धर्मं न यत्नेन करोति मूढः ।

क्लेशप्रवन्धेन स लब्धमव्ययौ चिन्तामणिं पातयति प्रमादात् ॥

कवित्त मात्रिक. (३१ मात्रा)

जैसे पुरुष क्रोड़ धन कारण, हींडत दीपदीप चढ़ यान ।
आवत हाथ रतनचिन्तामणि, डारत जलधि जान पापान ॥
तैसे अमत अमत भवसागर, पावत नर शरीर परधान ।
धर्मयत्न नहिं करत 'वनारसि' खोवत बादि जनम अज्ञान ४

मन्दाक्रान्ता ।

स्वर्णस्थाले क्षिपति स रजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषणे प्रवरकरिणं वाहयत्यैधमारम् ।
चिन्तारत्नं विकिरति कराद्वायसोऽङ्गयनार्थं
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः ॥ ५ ॥

मतगग्रन्द. (सवैया)

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर, साजि मतङ्गज ईधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै अठ, मूढ़ सुधारससों पगधोवै ॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यों यह दुर्लभ देह 'वनारसि', पाय अजान अकारय खोवै ५

आदूलविक्रीडित ।

ते धत्तूरतरुं वपन्ति भवने प्रोन्मूल्य कल्पद्रुमं
चिन्तारत्नमपास्य काचशकलं स्वीकुर्वते ते जडाः ।
विक्रीय द्विरदं गिरीन्द्रसदृशं क्रीणन्ति ते रासभं
ये लब्धं परिहृत्य धर्ममधमा धावन्ति भोगाशया ॥

कवित्त मायिक. (३१ मात्रा)

ज्यों जरमूर उखारि कल्पतरु, वोवत मूढ़ कर्नकको खेत ।
ज्यों गजराज वेच गिरिवर सम, कूर कुबुद्धि मोल खर लेत ॥
जैसे छांड़ि रतन चिन्तामणि, मूरख काचखंडमन देत ।
तैसे धर्म विसार 'वनारसि' धावत अघम विषयसुखहेत ॥६॥

शिरारिणी ।

अपारे संसारे कथमपि समासाद्य नृभवं
न धर्मं यः कुर्याद्विषयसुखतृष्णातरलितः ।
बुडन्पारावारे प्रवरमपहाय प्रवहणं
स मुख्यो मूर्खाणामुपलमुपलब्धुं प्रयतते ॥ ७ ॥

सोरठा ।

ज्यों जल बूढ़त कोय, बाहन तज पाहन गहै ।
त्यों नर मूरख होय, धर्म छांड़ि सेवत विषय ॥ ७ ॥

द्वार गाथा ।

शार्दूलविक्रीडित ।

भक्ति तीर्थकरे गुरौ जिनमतै संघे च हिंसानृत-
स्तेयाव्रह्मपरिग्रहव्युपरमं क्रोधाद्यरीणां जयम् ।
सौजन्यं गुणिसङ्गमिन्द्रियदमं दानं तपोभावनां
वैराग्यं च कुरुष्व निर्वृतिपदे यद्यस्ति गन्तुं मनः ॥८॥

पद्यद ।

जिन पूजहु गुरुनमहु, जैनमतवैन बखानहु ।
 संघ भक्ति आदरहु, जीव हिंसा नविधानहु ॥
 झूठ अदत्त कुशील, त्याग परिग्रह परमानहु ।
 क्रोध मान छल लोभ जीत, सज्जनता ठानहु ॥
 गुणिसंग करहु इन्द्रिय दमहु, देहु दान तप भावजुत ।
 गहि मन विराग इहिविधि चहहु, जो जगमैं जीवनमुक्त ॥८॥

पूजाधिकार ।

पापं लुम्पति दुर्गतिं दलयति व्यापादयत्यापदं
 पुण्यं संचिनुते श्रियं वितनुते पुष्पाति नीरोगताम् ।
 सौभाग्यं विदधाति पल्लवयति प्रीतिं प्रसूते यशः
 स्वर्गं यच्छति निर्वृतिं च रचयत्यर्चाहितां निर्मिता ॥९॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

लोपै दुरित हरै दुख संकट; आपै रोग रहित नितदेह ।
 पुण्य भँडार भरै जश प्रगटै; मुक्ति पंथसौं करै सनेह ॥
 रचै सुहाग देय शोभा जग; परमव पहुँचावत सुरगेह ।
 कुगति बंध दलमलहि वनारसि; वीतराग पूजा फल येह ॥९॥
 स्वर्गस्तस्य गृहाङ्गणं सहचरी साम्राज्यलक्ष्मीः शुभा
 सौभाग्यादिगुणावलिर्विलसति स्वैरं वपुर्वंदमनि ।
 संसारः सुतरः शिवं करतलकोडे लुटत्यञ्जसा
 यः श्रद्धाभरभाजनं जिनपतेः पूजां विधत्ते जनः १०

देवलोक ताको घर आँगन; राजरिद्ध सेवैं तमु पाय ।
 ताको तन सौभाग्य आदि गुन; केलि विलास करै नित आय ॥
 सोनर त्वरित तरै भवसागर; निर्मल होय मोक्ष पद पाय ।
 द्रव्य भाव विधि सहित बनारसि; जो जिनवर पूजै मन लाय १०

शिवरिणी ।

कदाचिन्नातङ्गः कुपित इव पश्यत्यभिमुखं
 विदूरे दारिद्र्यं चकितमिव नश्यत्यनुदिनम् ।
 विरक्ता कान्तेव त्यजति कुगतिः सङ्गमुदयो
 न मुञ्चत्यभ्यर्णं सुहृदिव जिनार्चा रचयतः ॥११॥

ज्यों नर रहै रिसाय कोपकर; त्यों चिन्ताभय विमुख वखान ।
 ज्यों कायर शकै रिपु देखत; त्यों दरिद्र भाजै भय मान ॥
 ज्यों कुनार परिहरै खंडपति; त्यों दुर्गति छंडै पहिचान ।
 हितुं ज्यों विभौ तजै नहिं संगत; सो सब जिनपूजाफल जान ११

शार्दूलविक्रीडित ।

यः पुष्पैर्जिनमर्चति स्मितसुरस्त्रीलोचनैः सोऽर्च्यते
 यस्तं वन्दत एकशस्त्रिजगता सोऽहर्निशं वन्द्यते ।
 यस्तं स्तौति परत्र वृत्रदमनस्तोमेन स स्तूयते
 यस्तं ध्यायति क्लृप्तकर्मनिधनः स ध्यायते योगिभिः ॥
 जो जिनैद्र पूजै फूलनसों; सुरनैनन पूजा तिस होय ।
 बंदै भावसहित जो जिनवर; वंदनीक त्रिभुवनमें सोय ॥

जो जिन सुजस करै जन ताकी; महिमा इन्द्र करै सुरलोच ।
जो जिन ध्यान करत वनारसि; ध्यावैं मुनि ताके गुण जोया ॥ १२ ॥

गुरु अधिकार ।

वंशस्थविलम् ।

अवद्यमुके पथि यः प्रवर्त्तते प्रवर्त्तयत्यन्यजनं च निस्पृहः ।
स सेवितव्यः स्वहितैषिणा गुरुः स्वयं तरंस्तारयितुं क्षमः
परम् ॥ १३ ॥

बडिल छन्द ।

पापपंथ परिहरहिं; धरहिं शुभपंथ पग ।
पर उपगार निमित्त; बखानहिं मोक्षमग ॥
सदा अवंचित चित्त; जु तारन तरन जग ।
ऐसे गुरुको सेवत; भागहिं करम ठग ॥ १३ ॥

मालिनी ।

विदलयति कुबोधं बोधयत्यागमार्थं
सुगतिकुगतिमार्गौ पुण्यपापे व्यनक्ति ।
अवगमयति कृत्याकृत्यभेदं गुरुर्यो
भवजलनिधिपोतस्तं विना नास्ति कश्चित् ॥ १४ ॥

हरिगीतिका छन्द ।

मिथ्यात दलन सिद्धांत साधक; मुक्तिमार्ग जानिये ।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति; पुण्य पाप बखानिये ॥
संसारसागरतरनतारन; गुरु जहाज विशेषिये ।
जगमाहिं गुरुसम कह वनारसि; और कोउ न देखिये ॥ १४ ॥

क्षिप्रिणी ।

पिता माता भ्राता प्रियसहचरी सुनुनिवहः

सुहृत्स्वामी माद्यत्करिमदरथाश्वः परिकरः ।

निमज्जन्तं जन्तुं नरककुहरे रक्षितुमलं

गुरोर्धर्माधर्मप्रकटनपरात्कोऽपि न परः ॥ १५ ॥

मत्तगयन्द ।

मात पिता सुत वन्धु सखीजन; मीत हितू मुख कामन पीके ।

सेवक साज मतंगज वाज; महादल राज रथी रथनीके ॥

दुर्गति जाय दुखी विललाय; परै सिर आय अकेलहि जीके ।

पंथ कुपंथ गुरु समझावत; और सगे सब स्वारथहीके ॥ १५ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

किं ध्यानेन भवत्वशेषविषयत्यागैस्तपोभिः कृतं

पूर्णं भावनयालमिन्द्रियजयैः पर्याप्तमाप्तागमैः ।

किं त्वेकं भवनाशनं कुरु गुरुप्रीत्या गुरोः शासनं

सर्वं येन विना विनाथवलवत्स्वार्थाय नालं गुणाः ॥

वस्तु छन्द ।

ध्यान धारन ध्यान धारन; विषै सुख त्याग ।

करुनारस आदरन; भूमि सैन इन्द्री निरोधन ॥

व्रत संजम दान तप; भगति भाव सिद्धंत साधन ॥

ये सब काम न आवहीं; ज्यों विन नायक सैन ॥

शिवसुख हेतु बनारसी; कर प्रतीत गुरुवैन ॥ १६ ॥

जिनमताधिकार ।

शिल्लरिणी ।

न देवं नादेवं न शुभगुरुमेनं न कुगुरुं
न धर्मं नाधर्मं न गुणपरिणद्धं न विगुणम् ।
न कृत्यं नाकृत्यं न हितमहितं नापि निपुणं
विलोकन्ते लोका जिनवचनचञ्चुर्विरहिताः ॥१७॥

कुंडलिया छन्द ।

देव अदेव नहीं लखै; सुगुरु कुगुरनहिं सूझ ।
धर्म अधर्म गनै नहीं; कर्म अकर्म न वूझ ॥
कर्म अकर्म न वूझ; गुण रु औगुण नहिं जानहिं ।
हित अनहित नहिं सवै; निपुणमूरख नहिं मानहिं ॥
कहत वनारसि ज्ञानदृष्टि नहिं अंध अवेवहिं ।
जैनवचनहगहीन; लखै नहिं देव अदेवहिं ॥ १७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

मानुष्यं विफलं वदन्ति हृदयं व्यर्थं वृथा श्रोत्रयो-
निर्माणं गुणदोषभेदकलनां तेषामसंभाविनीम् ।
दुर्वारं तरकान्धकूपपतनं मुक्तिं बुधा दुर्लभां
सर्वज्ञः समयो दयारसमयो येषां न कर्णातिथिः ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

ताको मनुज जनम सब निष्फल; मन निष्फल निष्फल जुगकान ।
गुण अर दोष विचार भेद विधि; ताहि महा दुर्लभ है ज्ञान ॥

ताको सुगम नरक दुख संकट; अगमपथ पदवी निर्वाण ।
 जिनमतवचन दयारसगर्भित; जे न मुनत सिद्धंतवखान १८
 पीयूषं विषवज्जलं ज्वलनवत्तेजस्तमःस्तोमव-
 न्मित्रं शात्रवचत्तजं भुजगवच्चिन्तामणिं लोष्टवत् ।
 ज्योत्स्नां ग्रीष्मजघर्मवत्स मनुते कारुण्यपण्यापणं
 जैनेन्द्रं मतमन्यदर्शनसमं यो दुर्मतिर्मन्यते ॥१९॥

पदपद ।

अमृतको विष कहैं; नीरको पावक मानहिं ।
 तेज तिमरसम गिनहिं; मित्रकों शत्रु वखानहिं ॥
 पहुपमाल कहिं नाग; रतन पत्थर सम बुल्लहिं ।
 चंद्रकिरण आतप स्वरूप; इहिं भांत जु सुल्लहिं ॥
 करुणानिधान अमलानगुन; प्रधट बनारसि जैनमत ।
 परमत समान जो मनधरत; सो अजान मूरख अपत ॥ १९ ॥
 धर्म जागरयत्यघं विघटयत्युत्थापयत्युत्पथं
 भिक्षो मत्सरमुच्छिनत्ति कुनयं मश्नाति मिथ्यामतिम् ।
 वैराग्यं वितनोति पुष्यति कृपां मुष्णाति तृष्णां च य-
 तज्जैनं मतमर्चति प्रथयति ध्यायत्यधीते कृती ॥२०॥

मरहटा छन्द ।

शुभ धर्म बिकाशै, पापविनाशै; कुपथउथप्पनहार ।
 मिथ्यामतखडै, कुनयविहडै; मंडै दया अपार ॥
 तृष्णामदमारै, राग विडारै; यह जिनआगमसार ।
 जो पूजै ध्यावै, पढै पढावै; सो जगमाहिं उदार ॥२०॥

संघ अधिकार ।

रत्नानामिव रोहणक्षितिधरः खं तारकाणामिव

स्वर्गः कल्पमहीरुहामिव सरः पङ्केतरुहामिव ।

पाथोधिः पयसामिवेन्दुमहसां स्थानं गुणानामस्ता-

वित्यालोच्य विरच्यतां भगवतः संघस्य पूजाविधिः ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जैसैं नभमंडल तारागण; रोहनशिखर रतनकी खान ।

ज्यों सुरलोक भूरि कल्पद्रुम; ज्योंसरवर अंबुज वन जान ॥

ज्यों समुद्र पूरन जलमंडित, ज्यों शशिछविसमूह सुखदान ।

तैसैं संघ सकल गुणमन्दिर, सेवहु भावभगति मन आन २१

यः संसारनिरासलालसमतिर्मुक्त्यर्थमुत्तिष्ठते

यं तीर्थं कथयन्ति पावनतया येनास्ति नान्यः समः ।

यस्मै स्वर्गपतिर्नमस्यति सतां यस्माच्छुभं जायते

स्फूर्तिर्यस्य परा वसन्ति च गुणा यस्मिन्स संघोऽर्च्यताम्

जे संसार भोग आशातज, ठानत मुकति पन्थकी दौर ।

जाकी सेव करत सुख उपजत, तिन समान उत्तम नहिँ और ॥

इन्द्रादिक जाके पद वंदत, जो जंगम तीरथ शुचि ठौर ।

जामैं नित निवास गुन मंडन, सो श्रीसंघ जगत शिरमौर ॥२२॥

लक्ष्मीस्तं स्वयमभ्युपैति रभसात्कीर्तिस्तमालिङ्गति

प्रीतिस्तं भजते मतिः प्रयतते तं लब्धुमुत्कण्ठया ।

स्वःश्रीस्तं परिरब्धुमिच्छति मुहुर्मुक्तिस्तमालोके

यः संघं गुणसंघकेलिसदनं श्रेयोरुचिः सेवते ॥२३॥

ताको आय मिलै सुखसंपत्ति, कीरति रहै तिहं जग छाय ।
 जिनसों प्रीत बढै ताके घट, दिन दिन धर्मबुद्धि अधिकाय ॥
 छिनछिन ताहि लखै शिवसुन्दर, सुरगसंपदा मिलै सुभाय ।
 वानारसि गुनरास संघकी, जो नर भगति करै मनलाय ॥२३॥

यद्भक्तेः फलमर्हदादिपदवीमुख्यं कृपेः सस्यव-

चकित्वत्रिदशेन्द्रतादि तृणवत्प्रासङ्गिकं गीयते ।

शक्तिं यन्महिमस्तुतौ न दधते वाचोऽपि वाचस्पतेः

संघः सोऽघहरः पुनातु चरणन्यासैः सतां मन्दिरम् ॥

जाके भगत मुकतिपदपावत, इन्द्रादिक पद गिनत न कोय ॥

ज्यों कृपि करत धानफल उपजत, सहज पयार घास भुस होय ॥

जाके गुन जस जंपनकारन, सुरगुरु थकित होत मदखोय ।

सो श्रीसंघ पुनीत वनारसि, दुरित हरन विचरत भविलोय २४

अहिंसा अधिकार ।

क्रीडाभूः सुकृतस्य दुष्कृततजःसंहारवात्या भवो-

दन्वन्नैर्व्यसनाग्निमेघपटली संकेतदूती श्रियाम् ।

निःश्रेणिस्त्रिदिवौकसः प्रियसखी मुक्तेः कुगल्यर्गला

सत्त्वेषु क्रियतां कृपैव भवतु क्लेशैरशेषैः परैः ॥ २५ ॥

घनाक्षरी ।

सुकृतकी खान इन्द्र पुरीकी नसैनी जान

पापरजखंडनको, पौनरासि पेखिये ।

भवदुखपावकबुझायवेको मेघ माला,

कमला मिलायवेको दूती ज्यों विशेखिये ॥

सुगति बधूसों प्रीत; पालवेकों आलीसम,
कुगतिके द्वार दृढ; आगलसी देखिये ॥
ऐसी दया कीजै चित; तिहूँलोकप्राणीहित,
और करतूत काहू; लेखेमें न लेखिये ॥ २५ ॥

शिलरिणी ।

यदि प्राचा तोये तरति तरणिर्यद्युदयते
प्रतीच्यां सप्तार्चिर्यदि भजति शैत्यं कथमपि ।
यदि क्षमापीठं स्यादुपरि सकलस्यापि जगतः
प्रसूते सत्त्वानां तदपि न वधः कापि सुकृतम् ॥

अमानक छन्द ।

जो पश्चिम रवि उगै; तिरै पाषान जल ।
जो उलटै भुवि लोक; होय शीतल अनल ॥
जो मेरू डिगमिगै; सिद्धि कहँहोय मल ।
तब हूँ हिंसा करत; न उपजत पुण्यफल ॥ २६ ॥

मालिनी ।

स कमलवनमग्नेर्वासरं भास्वदस्ता-
दमृतमुरगवक्रात्साधुवादं विवादात् ।
रुगपगममजीर्णाज्जीवितं कालकूटा-
दभिलपति वधाद्यः प्राणिनां धर्ममिच्छेत् ॥ २७ ॥

धनाक्षरी छन्द ।

अगनिमें जैसेँ अरविंद न विलोकियत;
सूर अथवत जैसेँ वासर न मानिये ।

सांपके वदन जैसें अमृत न उपजत;
 कालकूट खाये जैसें जीवन न जानिये ॥
 कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसें;
 वादतरसांस रोग नाश न बखानिये ।
 प्राणी बघमांहिं तैसें; धर्मकी निशानी नाहिं,
 याहीतैं वनारसी विवेक मन आनिये ॥ २७ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

आयुर्दीर्घतरं वपुर्वरतरं गोत्रं गरीयस्तरं
 चित्तं भूरितरं बलं बहुतरं स्वामित्वमुचैस्तरम् ।
 आरोग्यं विगतान्तरं त्रिजगति श्लाघ्यत्वमल्पेतरं
 संसाराम्बुनिधिं करोति सुतरं चेतः कृपाद्रान्तरम् ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

दीर्घ आयु नाम कुल उत्तम; गुण संपत्ति आनंद निवास ।
 उन्नति विभव सुगम भवसागर; तीन भवन महिमा परकास ॥
 मुजबलवंत अनंतरूप छवि; रोगरहित नित भोगविलास ॥
 जिनके चित्तदयाल तिन्होंके, सब सुख होंहि वनारसिदास ॥

सत्यवचन अधिकार ।

विश्वासायतनं विपत्तिदलनं दैवैः कृताराधनं
 मुक्तेः पथ्यदनं जलाग्निशमनं व्याघ्रोरगस्तम्भनम् ।
 श्रेयःसंवननं समृद्धिजननं सौजन्यसंजीवनं
 कीर्तैः कोलिवनं प्रभावभवनं सत्यं वचः पावनम् २९

षट्पद ।

गुणनिवास विश्वास बास; दारिद्र्यदुस्खखंडन ।
 देवभराधन योग; मुक्तिमार्ग मुखमंडन ॥
 सुयशकेलि आराम; धाम सज्जन मनरंजन ।
 नागबाधवशकरन; नीर पावक भयमंजन ॥
 महिमा निधान सम्पतिसदन; मंगल मीत पुनीत मग ।
 सुखरासि वनारसि दास मन; सत्यवचन जयवंत जग २९

शिखरिणी ।

यशो यस्माद्भस्मीभवति वनवहेरिव वनं
 निदानां दुःखानां यदवनिरुहाणां जलमिव ।
 न यत्र स्याच्छायातप इव तपःसंयमकथा
 कथंचित्तन्मिथ्यावचनमभिधत्ते न मतिमान् ॥३०॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

जो भस्मंत करै निज कीरति; ज्यों वनअग्नि दहै वन सोय ।
 जाके सग अनेक दुख उपजत; वैढ वृक्ष ज्यों सींचत तोय ॥
 जामै घरम कथा नहि सुनियत; ज्यों रवि बीच छाहिं नहि होय ।
 सोमिथ्यात्व वचन वानारसि; गहत न ताहि विचक्षण कोय ३०

वंशस्थविलम् ।

असत्यमप्रत्ययमूलकारणं कुवासनासन्न समृद्धिवारणम् ।
 विपन्निदानं परवच्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विचर्जितम् ॥

रोढक छन्द ।

कुमति कुरीत निवास; प्रीत परतीत निवारन ।
रिद्धसिद्धसुखहरन; विपत दारिद्र्य दुख कारन ॥
परवंचन उतपत्ति; सहज अपराध कुलच्छन ।
सो यह मिथ्यावचन; नाहिं आदरत विचच्छन ॥३१॥

शार्दूलविक्रीडित ।

तस्याग्निर्जलमर्णवः स्थलमरिर्मित्रं सुराः किङ्कराः
कान्तारं नगरं गिरिर्गृहमहिर्माख्यं मृगारिमृगः ।
पातालं विलमलमुत्पलदलं व्यालः शृगालो विपं
पीयूषं विषमं समं च वचनं सत्याञ्जितं वक्ति यः ३२

घनाक्षरी ।

पावकतैं जल होय; वारिधतैं थल होय,
शूलतैं कमल होय; ग्राम होय वनतैं ।
कूपतैं विवर होय; पर्वततैं घर होय,
वासवतैं दास होय; हितू दुरजनतैं ॥
सिंघतैं कुरंग होय; व्याल स्यालखंग होय,
विषतैं पीयूष होय; माला अहिफनतैं ।
विषमतैं सम होय; संकट न व्यापै कोय,
एते गुन होय सत्य; वादीके दरसतैं ॥ ३२ ॥

अदत्तादान अधिकार ।

मालिनी ।

तमसिलषति सिद्धिस्तं वृणीते समृद्धि-
स्तमभिसरति कीर्तिमुञ्चते तं भवार्तिः ।

स्पृहयति सुगतिस्तं नेक्षते दुर्गतिस्तं

परिहरति विपत्तं यो न गृह्णात्यदत्तम् ॥ ३३ ॥

रोटक छन्द ।

ताहि रिद्धि अनुसरै; सिद्धि अभिलाष धरै मन ।

विपत्त संगपरिहरै, जगत विस्तारै सुजसधन ॥

भवआरति तिहिं तजै, कुगति बंछै न एक छन ।

सो सुरसम्पति लहै, गहै नहिं जो अदत्त धन ॥ ३३ ॥

शिवरिणी ।

अदत्तं नादत्ते कृतसुकृतकामः किमपि यः

शुभश्रेणिस्तस्मिन्वसति कलहंसीव कमले ।

विपत्तस्मादूर्ध्वं व्रजति रजनीवाम्बरमणे-

विनीतं विद्येव त्रिदिवशिवलक्ष्मीर्मजति तम् ॥ ३४ ॥

(३१ मात्रा) सवैया छन्द ।

ताको मिलै देवपद शिवपद, ज्यों विद्याधन लहै विनीत ।

तामैं आय रहै शुभ सम्पति, ज्यों कलहंस कमलसों मीत ॥

ताहि विलोक दुरै दुख दारिद, ज्यों रवि आगम रैन विदीत ।

जो अदत्त धन तजत वनारसि, पुण्यवंत सो पुरुष पुनीत ३४

शार्दूलविक्रीडित ।

यन्निर्वर्तितकीर्तिधर्मनिधनं सर्वांगसां साधनं

प्रोन्मीलद्वधवन्धनं विरचितक्लिष्टाशयोद्धोधनम् ।

दौर्गत्यैकनिबन्धनं कृतसुगत्याश्लेषसंरोधनं

प्रोत्सर्पत्प्रधनं जिघृक्षति न तद्धीमानदत्तं धनम् ३५

भरहटा छन्द ।

जो कीरति गोपहि, धरम बिलोपहि, करहि महाअपराध ।
जो शुभगति तोरहि, दुरगति लोरहि, जोरहि युद्ध उपाध ॥
जो संकट आनहि, दुर्गति ठानहि, बधबंधनको गेह ।
सब औगुण मंडित, गहै न पंडित, सो अदत्तधन येह ॥३५॥

हरिणी ।

परजनमनःपीडाक्रीडावनं बधभावना-

भवनमवनिव्यापिव्यापल्लताघनमण्डलम् ।

कुगतिगमने मार्गः स्वर्गापवर्गपुरार्गलं

नियतमनुपादेयं स्तेयं नृणां हितकाङ्क्षिणाम् ॥ ३६ ॥

(३१ मात्रा) सवैया ।

जो परिजन संताप केलिबन; जो बध बंध कुबुद्धि निवास ।
जो जग विपतिबेलघनमंडल; जो दुर्गति मारग परकास ॥
जो सुरलोकद्वार दृढ आगल; जो अपहरण मुक्तिमुखवास ।
सो अदत्तधन तजत साधुजन; निजहितहेतु बनारसिदास ३६

शीलाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

दत्तस्तेन जगत्प्रकीर्तिपट्टहो गोत्रे मपीकूर्चक-

आरित्रस्य जलाञ्जलिर्गुणगणारामस्य दावानलः ।

संकेतः सकलापदां शिवपुरद्वारे कपाटो दृढः

शीलं येन निजं विलुप्तमखिलं त्रैलोक्यचिन्तामणिः ३७

(३१ मात्रा) सर्वथा ।

सो अपयशको डंक बजावत; लावत कुल कलंक परधान ।
सो चारितको देत जलांजलि; गुन बनको दावानल दान ॥
सो शिवपन्थकिवार बनावत; आपति विपति मिलनको थान ।
चिन्तामणि समान जग जो नर; शीलरतन निजकरत मलान ३७
मालिनी ।

हरति कुलकलङ्कं लुम्पते पापपङ्कं
सुकृतमुपचिनोति श्लाघ्यतामातनोति ।
नमयति सुरवर्गं हन्ति दुर्गोपसर्गं
रचयति शुचि शीलं स्वर्गमोक्षौ सलीलम् ॥ ३८ ॥
रोडक छन्द ।

कुल कलंक दलमलहि; पापमलपंक पखारहि ।
दारुन संकट हरहि; जगत महिमा विस्तारहि ॥
मुरग मुक्ति पद रचहि; सुकृतसंचहि करुणारसि ।
सुरगन बंदहि चरन; शीलगुण कहत बनारसि ॥ ३८ ॥
शार्दूलविक्रीडित ।

व्याघ्रव्यालजलानलादिविपदस्तेषां व्रजन्ति क्षयं
कल्याणानि समुहसन्ति विबुधाः सांनिध्यमध्यासते ।
कीर्तिः स्फूर्तिर्मियर्तिं यात्युपचयं धर्मः प्रणश्यत्यधं
स्वर्निर्वाणसुखानि संनिदयते ये शीलमाविश्रते ॥ ३९ ॥
भक्तगयन्द ।

ताहि न बाध भुजंगमको भय; पानि न बोरै न पावक जालै ।
ताके समीप रहै सुर किन्नर; सो शुभ रीत करै अघ टालै ॥

तासु विवेक बढै घट अंतर; सो सुरके शिवके मुख मालै ।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग; जो नर शील अखंडित पालै ॥३०॥

तोयत्यग्निरपि स्रजत्यहिरपि व्याघ्रोऽपि सारङ्गति
व्यालोऽप्यश्वति पर्वतोऽप्युपलति ध्वेडोऽपि पीयूषति ।
विघ्नोऽप्युत्सवति प्रियत्यरिरपि क्रीडातडागत्यपां-
नाथोऽपि स्वगृहत्यटव्यपि नृणां शीलप्रभावाद्भुवम् ४०

पदपद ।

अग्नि नीरसम होय; मालसम होय भुजंगम ।
नाहर मृगसम होय; कुटिल गज होय तुरंगम ॥
विषं पीयूषसम होय; शिखरपाषाण खंडमित ।
विघन उलट आनंद; होय रिपुपलट होयहित ॥
लीलातलावसम उदधिजल; गृहसमान अटवी विकट ।
इहिविधि अनेक दुख होहिं सुख; शीलवंत नरके निकट ॥४०॥

परिग्रहाधिकार.

कालुष्यं जनयन् जडस्य रचयन्धर्मद्रुमोन्मूलनं
क्लिश्नन्नीतिकृपाक्षमाकमलिनीं लोभाभुविं वर्धयन् ।
मर्यादातटमुदुज्जुलुभमनोहंसप्रवासं दिश-
न्किं न क्लेशकरः परिग्रहनदीपूरः प्रवृद्धिं गतः ॥ ४१ ॥

३१ मात्रा सवैया ।

अंतर मलिन होय निज जीवन; विनसै धर्मतरोवरमूल ।
किलसै दयानीतिनलिनीवन; धरै लोभ सागर तनथूल ॥

उठै वाद मरजाद मिटै सब; सुजन हंस नहिं पावहिं कूल ।
बढत पूर पूरै दुख संकट; यह परिग्रह सरितासम तूल ॥ ४१ ॥

मालिनी ।

कलहकलभविन्ध्यः कोपगृध्रश्मशानं
व्यसनभुजगरन्ध्रं द्वेपदस्युग्रदोषः ।

सुकृतवनदवाग्निर्मर्दवाम्भोदवायु-
नयनलिनतुषारोऽत्यर्थमर्थानुरागः ॥ ४२ ॥

मनहरण ।

कलह गयन्द उपजायवेको विधगिरि;
क्रोप गीधके अघायवेको सुस्मशान है ।
संकट भुजंगके निवास करवेको विल;
वैरभाव चौरको महानिशा समान है ॥
कोमल सुगुनधनखंडवेको महा पौन;
पुण्यवन दाहवेको दावानल दान है ।
नीत नय नीरज नसायवेको हिम रासि;
ऐसो परिग्रह राग दुखको निधान है ॥ ४२ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

प्रत्यर्थी प्रशमस्य मित्रमधृतेर्मोहस्य विश्रामभूः
पापानां खनिरापदां पदमसञ्ज्ञानस्य लीलावनम् ।
व्याक्षेपस्य निधिर्मदस्य सचिवः शोकस्य हेतुः कलेः
क्रेलीवेश्म परिग्रहः परिहृतेर्योग्यो विविकात्मनाम् ४३

प्रशमको अहितं अधीरजको बाल हित;

महामोहराजाकी प्रसिद्ध राजधानी है ।

अमको निधान दुरध्यानको विलासवन;

विपतको शान अभिमानकी निशानी है ॥

दुरितको खेत रोग शोग उत्पति हेत;

कलहनिकेत दुरगतिको निदानी है ।

ऐसो परिग्रह भोग सवनको त्याग जोग;

आतम गवेषीलोग याही भांति जानी है ॥ ४३ ॥

बहिस्तृप्यति नेन्धनैरिह यथा नात्मोभिरम्मोनिधि-

स्तद्वल्लोभघनो घनैरपि धनैर्जन्तुर्न संतुप्यति ।

न त्वेवं मनुते विमुच्य विभवं निःशेषमन्यं भवं

यात्यात्मा तदहं मुधैव विदधाम्येनांसि भूयांसि किम् ॥

पदपद ।

ज्यों नहिं अग्नि अघाय; पाय ईधन अनेक विधि ।

ज्यों सरिता धन नीर; नृपति नहिं होय नीरनिधि ।

त्यो असंख धन बढत; मूढ संतोष न मानहिं ।

पाप करत नहिं डरत; बंध कारन मन आनहिं ॥

परतछ विलोक जम्मन मरन; अधिर रूप संसारक्रम ।

समुझै न आप पर ताप गुन; प्रगट बनारसि मोह अम ॥ ४४ ॥

क्रोधाधिकार.

यो मित्रं मन्धुनो विकारकरणे संत्राससंपादने

संपंस्य प्रतिबिम्बमद्गदहने सप्तार्चिषः सोदरः ।

चैतन्यस्य निपूदने विपतरोः सत्रह्यचारी चिरं

स क्रोधः कुशलाभिलाषकुशलैर्निर्मूलमुन्मूल्यताम् ॥ ४५ ॥

गीताछन्द ।

जो मुजन चित्त विकार कारन; मनहु मदिरा पान ।

जो भरम भय चिन्ता बढावत, असित सर्प समान ॥

जो जंतु जीवन हरन विपतरु; तनदहनदवदान ।

सो कोपरास विनास भविजन; लहहु शिव मुखथान ॥ ४५ ॥

हारिणी ।

फलति कलितश्रेयःश्रेणीप्रसूनपरम्परः

प्रशमपयसा सिक्तो मुक्तिं तपश्चरणदुमः ।

यदि पुनरसौ प्रत्यासक्तिं प्रकोपहविर्भुजो

भजति लभते भस्मीभावं तदा विफलोदयः ॥ ४६ ॥

३१ मात्रा सवैया ।

जब मुनि कोइ बोय तप तरुवर; उपशम जल सींचत चितखेत ।

उदित जान साखा गुण पल्लव; मंगल पहुप मुकत फलहेत ॥

तव तिहि कोप दवानल उपजत, महामोह दल पवन समेत ।

सो भस्मंत करत छिन अंतर, दाहत विरखसहित मुनिचेत ४६ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

संतापं तनुते भिनत्ति विनयं सौहार्दमुत्सादय-

त्युद्वेगं जनयत्यवद्यवचनं सूते विभ्रत्ते कलिम् ।

कीर्तिं कृन्तति दुर्मतिं वितरति व्याहन्ति पुण्योदयं

दत्ते यः कुर्गतिं स हातुमुचितो रोपः सदोपः सताम् ॥

वस्तुछन्द ।

कलह मंडन मंडन करन उद्वेग ।

यशखंडन हित हरन, दुखविलापसंतापसाधन ॥

दुरवैन समुच्चरन, धरम पुण्य मारग विराधन ।

विनय दमन दुरगति गमन, कुमति रमन गुणलोप ।

ये सब लक्षण जान मुनि, तजहि ततक्षण कोप ॥ ४७ ॥

यो धर्म दहति द्रुमं दच इवोन्मथाति नीतिं लतां

दन्तीवेन्दुकलां विधुंतुद इव क्लिश्नाति कीर्तिं नृणाम् ।

स्वार्थं वायुरिवाम्बुदं विधट्यत्युल्लासयत्यापदं

तृष्णां धर्म इवोचितः कृतकपालोपः स कोपः कथम् ॥

पदपद ।

कोप धरम धन दहै, अग्नि जिम विरख बिनासहि ।

कोप मुजस आवरहि, राहु जिम चंद गरासहि ॥

कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता विहंडहि ।

कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर खंडहि ॥

संचरत कोप दुख ऊपजै, वढै त्रया जिम धूपमहँ ।

करुणा विलोप गुण गोप जुत, कोप निपेध मंहत कहँ ॥ ४८ ॥

मानाधिकार.

मन्दाक्रान्ता ।

यस्मादाविर्भवति विततिर्दुस्तरापन्नदीनां

यस्मिञ्छिष्टाभिरुचितगुणग्रामनामापि नास्ति ।

यश्च व्याप्तं वहति वधघ्नीधूम्यया क्रोधदावं
तं मानाद्रिं परिहर दुरारोहमौचित्यवृत्तेः ॥ ४९ ॥

(मात्रा ३१) सवैया ।

जातैं निकस विपति सरिता सब; जगमें फैल रही चहुँ ओर ।
जाके ढिग गुणग्राम नाम नहिं, माया कुमतिगुफा अति घोर ॥
जहँवधवुद्धि धूम रेखा सम; उदित कोप दावानल जोर ।
सो अभिमान पहार पटंतर; तजत ताहि सर्वज्ञकिशोर ॥ ४९ ॥

शिखरिणी ।

शमालानं भञ्जन्विमलमतिनाडीं विप्रत्य-
न्किरन्दुर्वाक्पांशूत्करमगणयन्नागमसृणिम् ।
अमन्नुर्व्यां स्वैरं विनयवनवीथीं विदलयन्
जनः कं नानर्थं जनयति मदान्धो द्विष इव ॥ ५० ॥

रोडक छन्द ।

भंजहिं उपशम थंभ; सुमति जंजीर विहंडहिं ।
कुवचन रज संग्रहहिं; विनयवनपंक्ति खंडहिं ॥
जगमें फिरहिं स्वछन्द; वेद अंकुश नहिं मानहिं ।
गज ज्यों नर मदअन्ध; सहज सब अनरथ ठानहिं ॥ ५० ॥

सार्दूलविक्रीडित ।

औचित्याचरणं विलुम्पति पयोवाहं नमस्वानिव
प्रध्वंसं विनयं नयत्यहिरिव प्राणस्पृशां जीवितम् ।
कीर्तं कैरविणीं मतङ्गज इव प्रोन्मूलयत्यञ्जसा
मानो नीच इवोपकारनिकरं हन्ति त्रिवर्गं नृणाम् ५१

करिस्वा छन्द ।

मान सब उचित आचार भंजन करै;
 पवन संचार जिम घन विहंडहि ।
 मान आदर तनय विनय लोपं सकल;
 भुजग विष भीर जिम मरन मंडहि ॥
 मानके उदित जगमाहिं विनसै सुयश;
 कुपित मातंग जिम कुमुद खंडहि ।
 मानकी रीति विपरीति करतूति जिम;
 अधमकी प्रीति नर नीत छंडहि ॥ ५१ ॥

वसन्ततिलका ।

मुष्णाति यः कृतसमस्तसमीहितार्थं
 संजीवनं विनयजीवितमङ्गभाजाम् ।
 जात्यादिमानविषजं विषमं विकारं
 तं मार्दवामृतरसेन नयस्व शान्तिम् ॥ ५२ ॥

(मात्रा १५) चौपाई ।

मान विषम विपतन संचरै । विनय विनाशै वाँछितहरै ॥
 कोमल गुन अम्रत संजोग । विनशै मान विषम विपरोग ॥ ५२ ॥

मायाधिकार.

मालिनी ।

कुशलजननवन्ध्यां सत्यसूर्यास्तसंध्यां
 कुगतियुवतिमालां मोहमातङ्गशालाम् ।

शमकमलहिमानीं दुर्यशोराजधानीं

व्यसनशतसहायां दूरतो मुख मायाम् ॥ ५३ ॥

रोटक छन्द ।

कुशल जननको वाँझ; सत्य रविहरन सांझथिति ।

कुगति युवति उरमाल; मोह कुंजर निवास छिति ॥

शम वारिज हिमराशि; पाप संताप सहायनि ।

अयश खानि जग जान; तजहु माया दुख दायनि ॥ ५३ ॥

वपेन्द्रधन्वा ।

विधाय मायां विविधैरुपायैः परस्य ये वञ्चनमाचरन्ति ।

ते वञ्चयन्ति त्रिदिवापवर्गसुखान्महामोहसखाः स्वमेव ५४

वेशरी छन्द ।

मोह मगन माया मति संचहि । कर उपाय ओरनको वंचहि ।

अपनी हानि लखें नहिं सोय । सुगति हरेँ दुर्गति दुख होय ५४

वंशस्थविलम् ।

मायामविश्वासविलासमन्दिरं

दुराशयो यः कुरुते धनाशया ।

सोऽनर्थसार्थ न पतन्तमीक्षते

यथा विडालो लगुडं पयः पिबन् ॥ ५५ ॥

पदरिछन्द ।

माया अविश्वास विलास गेह । जो करहि मूढ वन धन सनेह ।

सो कुगति बंध नहिं लखै एम । तजगय विलाव पय पियतजेम ५५

वसन्ततिलका ।

मुग्धप्रतारणपरायणमुजिहीते

यत्पाटवं कपटलम्पटचित्तवृत्तेः ।

जीर्यत्युपसृग्वमवश्यमिहाप्यकृत्वा

नापथ्यभोजनमिवामयमायतौ तत् ॥ ५६ ॥

अमानक छन्द ।

ज्यों रोगी कर कुपथ; वढावै रोग तन ।

खादलंपटी भयो; कहै मुझ जनम धन ॥

त्यों कपटी कर कपट; मुगधको धन हरहि ।

करहि कुगतिको बंध; हरप मनमें धरहि ॥ ५६ ॥

लोभाधिकार.

शार्दूलविक्रीडित ।

यदुर्गामटवीमटन्ति विकटं क्रामन्ति देशान्तरं

गाहन्ते गहनं समुद्रमतनुक्लेशं हर्षि कुर्वते ।

सेवन्ते कृपणं पतिं गजघटासंघट्टदुःसंचरं

सर्पन्ति प्रधनं धनान्धितधियस्तल्लोभविस्फूर्जितम् ५७

मनहरण ।

सहै घोर संकट समुद्रकी तरंगनिमै;

कंपै चितभीत पंथ; गाहै बीच वनमै ।

ठानै कृषिकर्म जामै; शर्मको न लेश कहुं;

संकलेशरूप होय; जूझ मरै रनमै ॥

तज निज धामको विगावि परदेश यावै;
सैव प्रसु कृपणमर्लीन रहै मनमें ।
ढोल धन कारज जनारज मनुज नृह,
ऐसी करतूति करै; लोमकी लगनमें ॥ ५७ ॥

मूलं मोहविषद्रुमस्य सुकृताम्मोरागिकुम्भाद्भवः
क्रोधाग्नेरगणिः प्रतापतगणिप्रच्छादने तोयदः ।
कीडासद्वकलेर्विवेकशशिः स्वर्मानुरापन्नदी-
सिन्धुः कीर्तिलताकलापकलभो लोमः पराभूयताम् ॥ ५८ ॥
पूरन प्रताप रवि, रोकवेको धारावर;
सुकृति समुद्र सोलवेको कुम्भनंदहै ।
कोप दव पावक जननको अरणि दारु,
मोह विष मूल्हको; महा दृढ कंद है ॥
परम विवेक निशिमणि आसवेको राहु;
कीरति लता कलाप; दलन गयंद्र है ।
कलहको केलिभौन आपदा नदीको सिन्धु;
ऐसो लोम बाहूको विपाक दुख द्वंद है ॥ ५८ ॥

वसन्ततिलका ।

तिःशेषधर्मवनदाहविवृम्भमाणे
दुःखौघमस्मनि विसर्पदकीर्तिधृमे ।
वाडं घनेन्धतसमागमर्दीन्याने
लोमानले शलमतां लमते गुणौघः ॥ ५९ ॥

परम धरम वन वहै; दुरित अंबर गति धारहि ।
 कुयश घूम उदगैरै; भूरि भय भस्म विथारहि ॥
 दुख फलंग फुंफरै; तरल तृष्णा कल काढहि ।
 धन ईधन आगम; सँजोग दिन दिन अति बाढहि ॥
 लहलहै लोभ पावक प्रबल; पवन मोह उद्धत वहै ।
 दज्जहि उदारता आदि बहु; गुण पतंग कँवरा कहै ॥५०॥

शादूलचिक्रीडित ।

जातः कल्पतरुः पुरः सुरगवी तेषां प्रविष्टा गृहं
 चिन्तारत्नमुपस्थितं करतले प्राप्तो निधिः संनिधिम् ।
 विश्वं वक्ष्यमवक्ष्यमेव सुलभाः स्वर्गापवर्गाश्रियो
 ये संतोषमशेषदोषदहनध्वंसाम्बुदं विभ्रते ॥ ६० ॥

(३१ मात्रा) सर्वथा ।

विलसै कामधेनु ताके धर; पूरै कल्पवृक्ष मुग्नपोष ।
 अखय भँडार भरै चिंतामणि; तिनको सुलभ सुरग औ मोष ॥
 ते नर खवश करै त्रिभुवनको; तिनसों विमुख रहै दुख दोष ।
 सबै निधान सदा ताके ढिग; जिनके हृदय वसत संतोष ॥६०॥

सज्जनाधिकार.

शिखरिणी ।

वरं क्षिप्तः पाणिः कुपितफणिनो वक्रकुदरे
 वरं शम्पापातो ज्वलदलनकुण्डे विरचितः ।
 वरं प्रासप्रान्तः सपदि जठरान्तर्विनिहितो
 न जन्त्यं दौर्जन्यं तदपि विपदां सप्त विदुषा ॥६१॥

(१६ मात्रा) चाँपाई ।

वरु अहिवदन हत्थ निज डारहिं । अगनि कुंडमैं तनपर जारहिं
दारहिं उदर करहिं विष भक्षण । पै दुष्टता न गहहि विचक्षण ६१

वसन्ततिलका ।

सौजन्यमेव विदधाति यशश्चयं च

स्वश्रेयसं च विभवं च भवक्षयं च ।

दौर्जन्यमावहसि यत्कुमते तदर्थम्

धान्येऽनलं क्षिपसि तज्जलसेकसाध्ये ॥ ६२ ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

ज्यो कृषिकार मयो चितवातुल; सो कृषिकी करनी इम ठाने ।
बीज बवै न करै जल सिंचन; पावकसों फलको थल माने ॥
त्यों कुमती निज स्वारथके हित; दुर्जनभाव हिये माहि आने ।
संपति कारन बंध विदारन; सज्जनता मुखमूल न जाने ॥ ६२ ॥

पृथ्वी ।

वरं विभवचन्द्र्यता सुजनभावभाजां नृणा-

मसाधुचरितार्जिता न पुनरुजिताः संपदः ।

कृशत्वमपि शोभते सहजमायतौ सुन्दरं

विपाकविरसा न तु श्वयधुसंभवा स्थूलता ॥ ६३ ॥

अभागरु छन्द ।

वर दरिद्रता होय; करत सज्जन कला ।

दुराचारसों मिलै; राज सो नहिं भला ॥

ज्यों शरीर कृश सहज; सुशोभा देत है ।

सूज थूलता वढै; मरनको हेत है ॥ ६३ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

न ब्रूते परदूषणं परगुणं वक्त्यल्पमप्यन्वहं

संतोषं बहते परार्द्धिषु परावाधासु धत्ते शुचम् ।

स्वस्त्राघां न करोति नोद्वाति नयं नौचित्यमुल्लङ्घ्य-

त्युक्तोऽप्यप्रियमक्षमां न रचयत्येतच्चरित्रं सताम् ॥ ६४ ॥

पदपद ।

नहिं जंपै पर दोष; अल्प परगुण बहु मानहि ।

हृदय धरै संतोष; दीन लखि करुणा ठानहि ॥

उचित रीत आदरहि; विमल नय नीति न छंडहि ।

निज सलहन परिहरहि; राम रचि विषय विहंडहि ॥

मंडहि न कोप दुर वचन सुन; सहज मधुर धुनि उच्चरहि ।

कहि कवरपाल जग जाल बसि; ये चरित्र सज्जन कराहि ॥ ६४ ॥

गुणिसंगाधिकार.

धर्मं ध्वस्तदयो यशश्च्युतनयो वित्तं प्रमत्तः पुमा-

न्काव्यं निष्प्रतिभस्तपः शमदमैः शून्योऽल्पमेधः श्रुतम् ।

वस्त्वालोकमलोचनश्चलमना ध्यानं च वाञ्छत्यसौ

यः सङ्गं गुणिनां विमुच्य विमतिः कल्याणमाकाङ्क्षति ॥

मत्तगयन्द (सवैया) ।

सो करुणाविन धर्म विचारत; नैन विना लखिवेको उमाहै ।

सो दुरनीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगमको अवगाहै ॥

सो हियग्रन्थ कवित्त करै समता विन सो तपसों तन दाहै ।
सो धिरता विन ध्यान धरै शठ; जो सत संग तजै हित चाहै ॥ ६५ ॥

हरिणी ।

हरति कुमति भिन्ते मोहं करोति विवेकितां
चिततरति रतिं सूते नीतिं तनोति विनीतताम् ।
प्रथयति यशो धत्ते धर्मं व्यपोहति दुर्गतिं
जनयति नृणां किं नाभीष्टं गुणोत्तमसंगमः ॥ ६६ ॥

धनाक्षरी ।

कुमति निकंद होय महा मोह मंद होय;
जगमगै सुयश विवेक जगै हियेसों ।
नीतको दिदाव होय विनैको बढाव होय;
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों ॥
धर्मको प्रकाश होय दुर्गतिको नाश होय;
वरतै समाधि ज्यों पियूष रस पियेसों ।
तोष परि पूर होय; दोष दृष्टि दूर होय;
एते गुन होहिं सत; संगतके कियेसों ॥ ६६ ॥

शाहूलविक्रीडित ।

लब्धं बुद्धिकलापमापदमपाकर्तुं विहर्तुं पथि
श्राप्तं कीर्तिमत्ताधुतां विधुवितुं धर्मं समासेवितुम् ।
रोद्धुं पापविपाकमाकलयितुं स्वर्गापवर्गाश्रयं
चेत्त्वं चित्त समीहसे गुणवतां सङ्गं तदङ्गीकुर्व ॥ ६७ ॥

कुंडलिया ।

‘कौरा’ ते मारग गहैं, जे गुनिजनसेवत ।

ज्ञानकला तिनके जगै, ते पावहिं भव अंत ॥

ते पावहिं भव अंत, शांत रस ते चित धारहिं ।

ते अघ आपद हरहिं, धरमकीरति विस्तारहिं ॥

होंहि सहज जे पुरुष, गुनी वारिजके भौरा ।

ते सुर संपति लहैं, गहैं ते मारग ‘कौरा’ ॥ ६७ ॥

हारिणी ।

हिमति महिमाम्भोजे चण्डानिलत्युदयाम्बुदे

द्विरदति दयारामे क्षेमक्षमाभृति वज्रति ।

समिधति कुमल्यश्रौ कन्दत्यनीतिलतासु यः

किमभिलपतां श्रेयः श्रेयान्स निर्गुणिसंगमः ॥ ६८ ॥

पदपद ।

जो महिमा गुन हनहि, तुहिन जिम वारिज वारहि ।

जो प्रताप संहारहि, पवन जिम मेघ विडारहि ॥

जो सम दम दलमलहि, दुरद जिम उपवन खंडहि ।

जो सुछेम छय करहि, वज्र जिम शिखर विहंडहि ॥

जो कुमति अग्नि ईधनसरिस, कुनयलता दृढ मूल जग ।

सो दुष्टसंग दुख पुष्ट कर, तजहिं विचक्षणता सुमग ॥ ६८ ॥

इन्द्रियाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

आत्मानं कुपथेन निर्गमयितुं यः शूललाश्वायते

कृत्याकृत्यविवेकजीवितहतौ यः कृष्णसर्पायते ।

यः पुण्यद्रुमखण्डखण्डनविधौ स्फूर्जत्कुठारायते
तं लुप्तव्रतमुद्रमिन्द्रियगणं जित्वा शुभंगुर्भव ॥ ६९ ॥

हरिगीतिका ।

जे जगत जनको कुपंथ डारहिं, वक्र शिक्षित तुरगसे ।
जे हरहिं परम विवेक जीवन, काल दारुण उरगसे ॥
जे पुण्यवृक्षकुठार तीखन, गुपति व्रत मुद्रा करैं ।
ते करनगुमट प्रहार भविजन, तब सुमारग पग धरैं ॥ ६९ ॥

शिक्षरिणी ।

प्रतिष्ठां यन्निष्ठां नयति नयनिष्ठां विघटय-
त्यकृत्येष्वाद्यत्ते मतिमतपसि प्रेम तनुते ।
विवेकस्योत्सेकं विदलयति दत्ते च विपदं
पदं तदोपाणां करणनिकुलम्बं कुरु वशे ॥ ७० ॥

धनाक्षरी ।

ये ही हैं कुगलिके निदानी दुख दोष दानी;
इनहीकी संगतसों संग मार बहिये ।
इनकी मगनतासों विमोको बिनाश होय,
इनहीकी प्रीतसों अनीत पन्थ गहिये ॥
ये ही तपभावकों बिडारै दुराचार धरैं,
इनहीकी तपत विवेक भूमि दहिये ।
ये ही इन्द्री मुमट इनहिं जीतै सोई साधु,
इनको मिलापी सो तो महापापी कहिये ॥ ७० ॥

शार्दूलविकीरित ।

यत्तां मौनमगारमुज्झतु विधिप्रागल्भ्यमभ्यस्यता-
मस्त्वन्तर्गणमागमश्रममुपादत्तां तपस्तप्यताम् ।

श्रेयःपुञ्जनिकुञ्जमञ्जनमहावातं न चेदिन्द्रिय-
व्रातं जेतुमवैति भस्मनि हुतं जानीतं सर्वं ततः ७१

मौनके धरैया गृह त्यागके करैया विधि,
रीतके सधैया पर निन्दासों अपूठे हैं ।
विद्याके अभ्यासी गिरिकंदराके वासी शुचि;
अंगके अचारी हितकारी वैन छूठे हैं ॥
आगमके पाठी मन लाय महा काठी भारी ;
कष्टके सहनहार रामाहुसों रूठे हैं ॥

इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते;
इन्द्रिनके जीते विना सरवंग झूठे हैं ॥ ७१ ॥

धर्मध्वंसधुरीणमभ्रमरसावारीणमापत्प्रथा-
लङ्कर्मणिमशर्मनिर्मितिकलापारीणमेकान्ततः ।

सर्वाग्नीनमनात्मनीनमनयात्यन्तीनमिष्टे यथा-
कामीनं कुप्यथाध्वनीनमजयन्नक्षौधमक्षेमभाक् ॥ ७२ ॥

धर्मतरुमंजनको महा मत्त कुंजरसे;
आपदा भंडारके भरनको करोरी हैं ।

सत्यशील रोकवेको पौढ़ परदार जैसे;
 दुर्गतिके मारग चलायवेकों घोरी हैं ॥
 कुमतिके अधिकारी कुनैपथके विहारी;
 मद्रभाव ईधन जरायवेकों होरी है ।
 मृपाके सहाई दुरभावनाके भाई ऐसे;
 विषयाभिलाषी जीव अघके अघोरी हैं ॥ ७२ ॥

कमलाधिकार ।

निम्नं गच्छति निम्नगेव नितरां निद्रेव विष्कम्भते
 चैतन्यं मदरेव पुज्यति मदं धूम्येव धत्तेऽन्धताम् ।
 चापल्यं चपलेव चुम्बति दवज्वालेव तृष्णां नय-
 त्युल्लासं कुलटाङ्गनेव कमला स्वैरं परिभ्राम्यति ॥ ७३ ॥

मत्तगयन्द ।

नीचकी ओर दैर सरिता जिम, धूम बढ़ावत नींदकी नाई ।
 चंचलता प्रघटै चपला जिम, अंध करै जिम धूमकी झाई ॥
 तेज करै तिसना दव ज्यों मद; ज्यों मद पोषित मूढके ताई ।
 ये करतूति करै कमला जग; डोलत ज्यों कुलटा विन साई ॥
 दायादाः स्पृहयन्ति तस्करगणा मुष्णन्ति भूमीभुजो
 गृह्णन्ति च्छलमाकलय्य हुतभुग्मस्मीकरोति क्षणात् ।
 अम्भः प्रावयते क्षितौ चिनिहितं यक्षा हरन्ते हठा-
 दुर्वृत्तास्तनया नयन्ति निधनं शिखण्डधीनं धनम् ७४

वंधु विरोध करै निशवासर; दंडनकों नरचै छल जोवै ।
 पावक दाहत नीर बहावत, है दगओट निशाचर होवै ॥
 भूतल रक्षित जक्ष हरै करकै दुरवृत्ति कुसंतति खोवै ।
 ये उतपात उठै धनके ढिग; दामधनी कहु क्यों मुख सोवै ७४
 नीचस्यापि चिरं चट्टनि रचयन्त्यायान्ति नीचैर्नति
 शत्रोरप्यगुणात्मनोऽपि विदधत्युच्चैर्गुणोत्कीर्तनम् ।
 निर्वेदं न विदन्ति किंचिदकृतज्ञस्यापि सेवाक्रमे
 कष्टं किं न मनस्विनोऽपि मनुजाः कुर्वन्ति विचारिणः ॥

धनाक्षरी ।

नीच धनवंत ताहि निरख असीस देय;
 वह न विलोकै यह चरन गहत है ।
 वह अकृतज्ञ नर यह अज्ञताको घर;
 वह मद लीन यह दीनता कहत है ।
 वह चित्त कोप ठानै यह वाको प्रभु मानै;
 वाके कुवचन सब यह पै सहत है ।
 ऐसी गति धारै न विचारै कछु गुण दोष;
 अरथामिलाषी जीव अरथ चहत है ॥ ७५ ॥

लक्ष्मीः सर्पति नीचमर्णवपयः सङ्गादिवाम्भोजिनी-
 संसर्गादिव कण्टकाकुलपदा न कापि धत्ते पदम् ।

चैतन्यं विपसन्निधेरिव नृणामुज्जासयत्यङ्गसा
धर्मस्थाननियोजनेन गुणिभिर्ग्राह्यं तदस्याः फलम् ७६

नीचहीकी ओरकों उमंग चलै कमला सो;
पिता सिंधु सलिलस्वभाव याहि दियो है ।
रहै न सुथिर है सकंटक चरन याको;
बसी कंजमाहिं कंजकैसो पद कियो है ॥
जाको मिलै हितसों अचेत कर डारै ताहि;
विपकी बहन तातैं विपकैसो हियो है ।
ऐसी ठगहारी जिन धरमके पंथडारी;
करकै सुकृति तिन याको फल लियो है ॥ ७६ ॥

दानाधिकार.

चारित्रं चिनुते तनोति विनयं ज्ञानं नयत्युन्नतिं
पुष्पाति प्रशमं तपः प्रवलयत्युल्लासयत्यागमम् ।
पुण्यं कन्दलयत्यघं दलयति स्वर्गं ददाति क्रमा-
न्निर्वाणश्रियमातनोति निहितं पात्रे पवित्रे धनम् ७७

३१ मात्रा सवैया छंद ।

चरन अखंड ज्ञान अति उज्जल; विनय विवेक प्रशम अमलान ।
अनघ सुभाव सुकृति गुन संचय; उच्च अमरपद बंध विधाना ।
आगमगम्य रम्य तपकी रुचि; उद्धत मुक्ति पंथ सोपान ।
ये गुण प्रघट होंय तिनके घट; जे नर देहि सुपचहि दान ७७

दारिद्र्यं न तमीक्षते न भजते दौर्भाग्यमालम्बते
 नाकीर्तिर्न पराभवोऽभिलषते न व्याधिरास्कन्दति ।
 दैन्यं नाद्रियते दुनोति न दरः क्लिश्नन्ति नैवापदः
 पात्रे यो वितरत्यनर्थदलनं दानं निदानं श्रियाम् ॥७८॥

पदपद ।

सो दरिद्र दल मलहि; ताहि दुर्भाग न गंजहि ।
 सो न लहै अपमान; सु तो विपदा भयभंजहि ॥
 तिहि न कोइ दुख देहि; तासु तन व्याधि न बढुइ ।
 ताहि कुयश परहरहि, सुमुख दीनता न कढुइ ॥
 सो लहहि उच्चपदजगत महँ, अध अनरथ नासहि सरव ।
 कहै कुँवरपाल सो धन्य नर, जो सुखेत वोवै दरव ॥७८॥

लक्ष्मीः कामयते मतिर्मृगयते कीर्तिस्तमालोके
 प्रीतिश्चुम्बति सेवते सुभगता नीरोगतालङ्कति ।
 श्रेयःसंहतिरभ्युपैति वृणुते स्वर्गोपभोगस्थिति-
 मुक्तिर्वाञ्छति यः प्रयच्छति पुमान्पुण्यार्थमर्थं निजम् ॥

घनाक्षरी ।

ताहिको सुबुद्धि धरै रमा ताकी चाह करै,
 चंदन सरूप हो सुयश ताहि चरचै ।
 सहज सुहाग पावै सुरग समीप आवै,
 बार बार मुकति रमनि ताहि अरचै ॥
 ताहिके शरीरकों अलिंगति अरोगताई,
 मंगल करै मिताई प्रीत करै परचै ।

जोई नर हो सुचेत चित्त समता समेत,
घरमके हेतको सुखेत धन खरचै ॥ ७० ॥

मन्दाक्रान्ता ।

तस्यासन्ना रतिरनुचरी कीर्तिरुत्कण्ठिता श्रीः
स्निग्धा बुद्धिः परिचयपरा चक्रवर्तित्वश्रुद्धिः ।
पाणौ प्राप्ता त्रिदिवकमला कामुकी मुक्तिसंपत्
सप्तक्षेत्र्यां घपति विपुलं वित्तवीजं निजं यः ॥ ८० ॥

पञ्चावती ।

ताकी रति कीरति दासी सम, सहसा राजरिद्धि घर आवै ।
सुमति सुता उपजै ताके घट, सो मुरलोक संपदा पावै ॥
ताकी दृष्टि लखै शिव मारग, सो निरबंध भावना भावै ।
जो नर त्याग कपट कुंवरा कह, विधिसौं ससखेत धन वायै ॥ ८० ॥

तपमभावाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

यत्पूर्वार्जितकर्मशैलकुलेशं यत्कामदावानल-
ज्वालाजालजलं यदुग्रकरणग्रामाहिमन्त्राक्षरम् ।
यत्प्रत्यूहतमः समूहदिवसं यल्लब्धिलक्ष्मीलता-
मूलं तद्विविधं यथाविधि तपः कुर्वीत वीतस्पृहः ८१

षट्पद ।

जो पूरव कृत कर्म, पिंड गिरदलन वज्रघर ।
जो मनमथ दव ज्वाल, माल सँग हरन मेवझर ॥

जो प्रचंड इंद्रिय भुजंग, धंभन सुमंत्र वर ।

जो विभाव संतम सुपुंज, खंडन प्रभात कर ॥

जो लब्धि वेल उपजंत घट, तामु मूल दृढता सहित ।

सो सुतप अंग बहुविधि दुविधि, करहि विबुधिवंचारहित ८१

यस्माद्विघ्नपरम्परा विघटते दास्यं सुराः कुर्वते

कामः शाम्यति दाम्यतीन्द्रियगणः दत्त्याणमुत्सर्पति ।

उन्मीलन्ति महर्द्धयः कलयति ध्वंसं च यः कर्मणां

स्वाधीनं त्रिदिवं शिवं च भवति श्लाघ्यं तपस्तत्र किम्॥

घनाक्षरी ।

जाके आदरत महा रिद्धिसों मिलाप होय,

मदन अव्याप होय कर्म वन दाहिये ।

विघन विनास होय गीरवाण दास होय,

ज्ञानको प्रकाश होय भो समुद्र थाहिये ॥

देवपद खेल होय मंगलसों मेल होय,

इन्द्रिनिकी जेल होय मोषपंथ गाहिये ।

जाकी ऐसी महिमा प्रघट कहै कौरपाल,

तिहुंलोक तिहुंकाल सो तप सराहिये ॥८२॥

कान्तारं न यथेतरो ज्वलयितुं दक्षो दवाग्निं विना

दावाग्निं न यथापरः शमयितुं शक्तो विनाभ्योधरम् ।

निष्णातः पवनं विना निरसितुं नान्यो यथाभ्योधरं

कर्मौघं तपसा विना किमपरो हन्तुं समर्थस्तथा॥८३॥

मत्तगयन्द ।

जो वर कानन दाहनकों दव; पावकसों नहि दूसरो दीसै ।
जो दवआग बुझै न ततक्षण; जो न अखंडित मेघ वरीसै ॥
जो प्रघटै नहि जौलग मारुत; तौलग घोर घटा नहि खीसै ॥
त्यों घटमें तपवज्रविना दृढ; कर्मकुलाचल और न पीसै ॥८३॥

लगधरा ।

संतोषस्थूलमूलः प्रशमपरिकरस्कन्धबन्धप्रपञ्चः

पञ्चाक्षीरोधशाखः स्फुरदभयदलः शीलसंपत्प्रवालः ।

श्रद्धात्मः पूरसेकाद्विपुलकुलबलैश्वर्यसौन्दर्यभोगः

स्वर्गादिप्राप्तिपुष्पः शिवपदफलदः स्यात्तपःकल्पवृक्षः ॥

पदपद ।

सुदृढ मूल संतोष; प्रशम गुन प्रबल पेढ ध्रुव ।

पंचाचार सु शाख; शील संपत्ति प्रवाल हुव ॥

अभय अंग दलपुंज; देवपद पहुप सुमंडित ।

सुकृतभाव विस्तार; भार शिव सुफल अखंडित ॥

परतीत धार जल सिंच किय; अति उत्तंग दिन दिन पुषित ।

जयवंत जगत यह सुतपतरु; मुनि विहंग सेवहि सुखित ॥ ८४ ॥

भावनाधिकार ।

शार्दूलविक्रीडित ।

नीरागे तरुणीकटाक्षितमिव त्यागव्यपेतप्रभोः

सेवाकष्टमिवोपरोपणमिवाम्भोजन्मनामश्मनि ।

विज्वग्वर्पमिचोपरक्षितितले दानार्हदर्चातपः-

स्वाध्यायाध्ययनादि निष्फलमनुष्ठानं विना भावनाम्॥

पञ्चावती छन्द ।

ज्यों नीराग पुरुषके सनमुख; पुरकामिनि कटाक्ष कर ऊठी ।

ज्यों धन त्यागरहित प्रभुसेवन; ऊसरमें वरपा जिम झूठी ॥

ज्यों झिलमाहिं कमलको बोंवन; पवन पकर जिम बांधिये मूठी ।

ये करतूति होंय जिम निष्फल; त्यों विनभावक्रिया सब झूठी ८५

सर्वे ब्रूँप्सति पुण्यमीप्सति दयां धित्सत्ययं मित्सति

क्रोधं दित्सति दानशीलतपसां साफल्यमादित्सति ।

कल्याणोपचयं चिकीर्षति भवाम्मोघेस्तटं लिप्सते

मुक्तिस्त्रीं परिरिप्सते यदि जनस्तद्भावयेद्भावनाम् ८६

धनाक्षरी ।

पूरव करम दहै; सरवज्ञ पद लहै;

गहै पुण्यपंथ फिर पापमैं न आवना ।

करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै;

लागै दानशील तप सफल सुहावना ॥

पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट;

शर्म साध धर्मकी धरामैं करै भावना ।

एते सब काज करै अलखको अंगधरै;

चेरी चिदानंदकी अकेली एक भावना ॥ ८६ ॥

पृथ्वी ।

विवेकचनसारिणीं प्रशमशर्मसंजीवनीं

भवार्णचमहातरीं मदनदावमेधावलीम् ।

चलाक्षमृगवागुरां गुरुकपायशैलाशनिं

विमुक्तिपथवेसरीं भजत भावनां किं परैः ॥ ८७ ॥

प्रशमके पोपवेको अम्रतकी धारासम;

ज्ञानवन सींचवेको नदी नीरमरी है ।

चंचल करण मृग बांधवेकों वागुरासी;

कामदावानल नासवेको मेघ क्षरी है ॥

प्रवल कपायगिरि भंजवेको वज्र गदा,

भो समुद्र तारवेको पौढी महा तरी है ।

मोक्षपन्थ गाहवेकों वेशरी विलायतकी,

ऐसी शुद्ध भावना असंढ धार दरी है ॥ ८७ ॥

शिखरिणी ।

धनं दत्तं विचं जिनवचनमभ्यस्तमखिलं

क्रियाकाण्डं चण्डं रचितमवनौ सुप्तमसहृत् ।

तपस्तीव्रं तप्तं चरणमपि चीर्णं चिरतरं

न चेच्चित्ते भावस्तुयवपनवत्सर्वमफलम् ॥ ८८ ॥

अमानक छन्द ।

गह पुनीत आचार, जिनागम जोवना ।

कर तप संजम दान, भूमि का सोवना ॥

ए करनी सच निफल, होय विन भावना ।
ज्यों तुप वोए हाथ, कछू नहि आवना ॥ ८८ ॥
वैरागाधिकार ।

हारिणी ।

यदशुभरजःपाथो दृष्टेन्द्रियद्विरदाङ्कुशं
कुशलकुसुमोद्यानं माद्यन्मनःकपिशृङ्खला ।
विरतिरमणीलीलावेक्ष्य स्मरज्वरमेपजं
शिवपथरथस्तद्वैराग्यं चिन्तय भवामयः ॥ ८९ ॥

घनाक्षरी ।

अशुभता धूर हरवेकों नीर पूर सम,
विमल विरत कुलवधूको सुहाग है ।
उदित मदन जुर नाशवेकों जुरांकुश,
अक्षगज थंमनको अंकुशको दाग है ॥
चंचल कुमन कपि रोकवेको लोहफन्द,
कुशल कुसुम उपजायवेको बाग है ।
सूषा मोक्षमारग चलायवेको नामी रथ,
ऐसो हितकारी भयभंजन विराग है ॥ ८९ ॥

वसन्ततिलका ।

चण्डानिलः स्फुरितमब्दचयं द्वाविं-
वृक्षव्रजं तिमिरमण्डलमर्कविम्बम् ।
वज्रं महीध्रनिबहं नयते यथान्तं
वैराग्यमेकमपि कर्म तथा समग्रम् ॥ ९० ॥

अमानक छन्द ।

ज्यों समीर गंभीर, घनाघन छय करै ।
वज्र विदारै शिखर, दिवाकर तम हरै ॥
ज्यों दव पावक पूर, दहै वनकुंजको ।
त्यों भंजै वैराग, करमके पुंजको ॥ ९० ॥

दित्तरिणी ।

नमस्या देवानां चरणवरिवस्या शुभगुरो-
स्तपस्या निःसीमक्लमपदमुपास्या गुणवताम् ।
निपधारण्ये स्यात्करणदमविद्या च शिवदा
विरागः कृपागः क्षपणनिपुणोऽन्तः स्फुरति चेत् ॥

पद्मावती छन्द ।

कीनी तिन सुदेवकी पूजा, तिन गुरुचरणकमल चित लायो ।
सो वनवास वस्यो निशवासर, तिन गुनवंत पुरुष यश गायो ॥
तिन तप लियो कियो इन्द्री दम, सो पूरन विद्या पढ आयो ।
सब अपराध गए ताको तज, जिन वैरागरूप धन पायो ॥ ९१ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

भोगान्कृष्णभुजङ्गभोगविपमान्नाज्यं रजःसंनिभं
बन्धून्बन्धनिबन्धनानि विषयग्रामं विपात्रोपमम् ।
भूतिं भूतिसहोदरां तृणतुलं स्त्रैणं विदित्वा त्यजं-
स्तेष्वासक्तिमनाविलो विलभते मुक्तिं विरक्तः पुमान् ॥

घनाक्षरो छन्द ।

जाकों भोग भाव दीसैं कोरे नागकेसे फन,
 राजको समाज दीसैं जैसो रजकोप है ।
 जाको परवारको बढाव घेरावंध सुझै,
 विपै सुख सौंजकों विचारै विपपोप है ॥
 लसै यों विभूति ज्यों भसमिको विभूति कहै,
 बनता बिलासैं बिलोकै दृढ दोष है ।
 ऐसो जान त्यागै यह महिमा विरागताकी,
 ताहीको वैराग सही ताके ढिग मोप है ॥ ९२ ॥

इति २२ अधिकार समाप्तम्

अथ उपदेश गाथा ।

वपेन्द्रवज्रा ।

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्तिः सत्त्वानुकम्पा शुभपात्रदानम् ।
 गुणानुरागः श्रुतिरागमस्य नृजन्मवृक्षस्य फलान्यमूनि ९३
 मत्तगयन्द ।

कै परमेश्वरकी अरचा विधि, सो गुरुकी उपसर्पन कीजे ।
 दीन विलोक दया धरिये चित, प्रासुक दान सुपत्तिहिं दीजे ॥
 गाहक हो गुनको गहियै, रुचिसों जिन आगमको रस पीजे ।
 ये करनी करिये ग्रहमैं बस, यो जगमें नरभोफल लीजै ॥ ९३ ॥

शिखरिणी ।

त्रिसंध्यं देवार्चा विरचय च यं प्रापय चशः

त्रियः पात्रे घ्रापं जनय नयमार्गं नय मनः ।

सरकोधादारीन्दलय कलय प्राणिषु दयां

जिनोक्तं सिद्धान्तं शृणु वृणु जवान्मुक्तिकमलाम् ॥

हरिगीता छन्द ।

जो करै साध त्रिकाल सुमरण, जास जगयश विस्तैर ।

जो सुनै परमानहिं सुरुचिसौ, नीत मारग पग धैर ॥

जो निरख दीन दया प्रभुंजै, कामक्रोधादिक हरै ।

जो सुधन सप्त सुखेत खरचै, ताहि शिवसंपति बरै ॥ ९४ ॥

शार्दूलविक्रीडित ।

कृत्वाहंत्पदपूजनं यतिजनं नत्वा विदित्वागमं

हित्वा सङ्गमधर्मकर्मठत्रियां पात्रेषु दत्वा धनम् ।

गत्वा पद्धतिमुत्तमक्रमजुषां जित्वान्तरारिब्रजं

स्मृत्वा पञ्चनमस्क्रियां कुरु करकोडस्थमिष्टं सुखम् ॥

वस्तु छन्द ।

देव पुजहिं देव पूजहिं, रचहिं गुरु सेव ।

परमागमरुचि धरहिं, तजहिं दुष्टसंगत ततक्षण ।

गुणि संगति आदरहिं, करहिं त्याग दुर्मश भक्षण ॥

देहिं मुपात्रहिं दान नित, जपै पंचनवकार ।

ये करनी जे आचरहिं, ते पावै भवपार ॥ ९५ ॥

हारिणी ।

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-

भ्युद्यजननी याति स्फीतिं यथा गुणसन्ततिः ।

कलयति यथा वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः

कुशलसुलभे न्याये कार्ये तथा पथि वर्तनम् ॥ ९६ ॥

दोहा छन्द ।

गुन अरु धर्म सुथिर रहै, यश प्रताप गंभीर ।

कुशल वृक्ष जिम लह लहै, तिहि मारग चल वीर ॥ ९६ ॥

शिवरिणी ।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणमनं

मुखे सत्या वाणी श्रुतमधिगतं च श्रवणयोः ।

हृदि स्वच्छा वृत्तिर्विजयि भुजयोः पौरुषमहो

विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥ ९७ ॥

कवित्तछन्द ।

बंदन विनय मुकट सिर ऊपर, सुगुरुवचन कुंडल जुगकान ।

अंतर शत्रुविजय भुजमंडन, मुकतमाल उर गुन अमलान ॥

त्याग सहज कर कटक विराजत, शोभित सत्य वचन मुख पान ।

भूषण तजहिँ तऊ तन मंडित, याँतै सन्तपुरुष परधान ॥ ९७ ॥

भवारण्यं मुक्त्वा यदि जिगमिषुर्मुक्तिनगरीं

तदानीं मा कार्पीर्विषयविषवृक्षेषु वसतिम् ।

यतश्लायाप्येषां प्रथयति महामोहमचिरा-

वयं जन्तुर्यस्मात्पदमपि न गन्तुं प्रभवति ॥ ९८ ॥

नोट-नीचे लिखे तीन कवित्तोंके मूल श्लोक नहिँ मिले.

घनाक्षरी ।

गहैं जे सुजन रीत गुणीसों निवाहैं प्रीत,

सेवा साथै गुरुकी विनैसों कर जोरकैं ।

विद्याको विसनघरँ परतिय संग हरँ,
 दुर्जनकी संगतिसों बैठे मुख मोरकैं ॥
 तजैं लोकनिन्द्य काज पूजैं देव जिनराज,
 करैं जे करन थिर उमंग बहोरकैं ।
 तेई जीव सुखी होय तेई मोख सुखी होय,
 तेई होंहि परम करम फन्द तोरकैं ॥ १ ॥

परनिन्दा त्याग कर मनमें वैराग घर,
 क्रोध मान माया लोभ चारों परिहर रे ॥
 हिरदेमें तोष गहु समतासों सीरो रहु,
 घरमको भेद लहु खेदमें न पर रे ॥
 करमको बंश खोय मुक्तिको पन्थ जोय,
 सुकृतिको बीजबोय दुर्गतिसों डर रे ।
 अरे नर ऐसो होहि वार वार कहं तोहि,
 नहिं तो सिघार तूं निगोद तेरो घर रे ॥ २ ॥

३१ मात्रा सवैया छन्द ।

आलश त्याग जाग नर चेतन, बल सँभार मत करहु विलंब ।
 इहां न सुख लवलेश जगतमहिं, निव विरपमैं लौ न अंब ॥
 तातै तूं अंतर विपक्ष हर, कर विलक्ष निज अक्षकंदव ।
 गह गुन ज्ञान बैठ चारितरथ, देहु मोष मग सन्मुख बंव ॥३॥

मालिनी ।

अमजदजितदेवाचार्यपट्टोदयाद्रि-

द्युमणिविजयसिंहाचार्यपादारविन्दे ।

मधुकरसमतां यस्तेन सोमप्रभेण

व्यरचि मुनिपनेत्रा सूक्तिमुक्तावलीयम् ॥ ९९ ॥

कवित्त छन्द ।

जैन वंश सर हंस दिगम्बर; मुनिपति अजितदेव अति आरज ।

ताके पद वादीमदभंजन; प्रघटे विजयसेन आचारज ॥

ताके पट्ट भये सोमप्रभ; तिन ये ग्रन्थ कियो हित कारज ।

जाके पढत सुनत अवधारत, हँ सुपुरुष जे पुरुष अनारज ॥ ९९ ॥

इन्द्रवज्रा ।

सोमप्रभाचार्यमभा च लोके वस्तु प्रकाशं कुरुते यथाशु ।

तथायमुच्चैरुपदेशलेशः शुभोत्सवज्ञानगुणास्तनोति ॥ १०० ॥

भाषाग्रन्थकर्त्ताकी ओरसे नामादि.

दोहा छंद ।

नाम सूक्तिमुक्तावली; द्वाविंशति अधिकार ।

शत श्लोक परमान सब; इति ग्रन्थविस्तार ॥ १ ॥

कुँवरपाल वानारसी; मित्र जुगल इकचित्त ।

तिनहिं ग्रन्थ भाषा कियो; बहुविधि छन्द कवित्त ॥ २ ॥

सोलहसै इक्यानवे; ऋतु ग्रीष्म वैशाख ।

सोमवार एकादशी; करनछत्र सित पाख ॥ ३ ॥

इति श्रीसोमप्रभाचार्यविरचिता सिन्दूरप्रकरापरपर्याया सूक्तिमुक्तावली

भाषाछन्दानुवादसहिता समाप्ता ।

श्रीः

अथ ज्ञानवाचनी.

घनाक्षरी।

ओंकार शब्द विशद याके उभयरूप,
एक आतमीक भाव एक पुद्गलको ।
शुद्धता स्वभावलिये उठ्यो राय चिदानन्द,
अशुद्ध विभाव लै प्रभाव जड़वलको ॥
त्रिगुण त्रिकाल तातैं व्यय ध्रुव उत्तपात,
ज्ञाताको सुहात वात नहीं लाग खलको ।
वानारसीदासजूके हृदय ओंकारवास,
जैसो परकाश शशि पक्षके शुक्लको ॥ १ ॥
निरमल ज्ञानके प्रकार पंच नरलोक,
तामें श्रुतज्ञान परधान कर पायो है ।
ताके मूल दोय रूप अक्षर अनक्षरमें,
अनक्षर अग्र पिंड सैनमें बतायो है ॥
बावन वरण जाके असंख्यात सन्निपात,
तिनिमें नृप ओंकार सज्जनसुहायो है ।
वानारसी दास अंग द्वादश विचार यामें,
ऐसे ओंकार कंठ पाठ तोहि आयो है ॥ २ ॥
महामंत्र गायत्री के मुख ब्रह्मरूप मंड्यो,
आतम प्रदेश कोई परम प्रकाश है ।

तापर अशोक वृक्ष छत्रध्वज चामर सौ,
 पवन अग्नि जल वैसे एक वास है ॥
 सारीके अकार तामें रुद्र रूप चितवत,
 महातम महावृत्त तामें बहु भास है ।
 ऐसो ओंकारको अमूल चूल मूलरस,
 वानारसीदासजूके वदन विलास है ॥ ३ ॥
 सिद्धरूप शिवरूप भेष अवभेषरूप,
 नररूप न्यायरूप विधिरूप वात्तमा ।
 गुणरूप ज्ञानरूप ज्ञायक गंभीररूप,
 भोगरूप भोगीरूप सरस सुहातमा ॥
 एकरूप आदिरूप अगम अनादिरूप,
 असंख्य अनंतरूप जातिरूप जातमा ।
 वानारसीदास द्रव्यपूजा व्यवहाररूप,
 शुद्धता स्वभावरूप यहै शुद्ध आतमा ॥ ४ ॥
 धुंधवाउ ह्रदै भयो शुद्धता विसरि गयो,
 परगुणरंग रख्यो पर ही को रुखिया ।
 निजनिधि निकट विकट भई नैन विन,
 क्षणकमें सुखी तामें क्षणकमें दुखिया ॥
 समकित जल विना त्रषित अनादि काल,
 विषय कषायवहि अरणमें धुखिया ।
 वानारसीदास जिन रीति विपरीति जाके,
 भेरे जानें ते तो नर मूढ़नमें सुखिया ॥ ५ ॥

अनुभवज्ञानतै निदान आनमान झूठ्यो,
 सरधानवान वान छहों द्रव्यकरसे ।
 करम उपाधि रोग लोग जोग भोग राते,
 भोगी त्रिया योगी करामातहूको तरसे ॥
 दुर्गति विषाद न उछाह सुर भौनवास,
 समता सुक्षिति आतमीक भेष वरसे ।
 वानारसीदासजूके वदन रसन रस,
 ऐसे रसरसिया ते अरसको परसे ॥ ६ ॥
 आवरण समल विमल भयो ताके तुलै,
 मोह आदि हने काहु काल गुनकसिया ।
 लीन भयो लवलागी मगन बिभावत्यागी,
 ज्योतिके उदोत होत निज गुण पसिया ॥
 वानारसीदास निज आतम प्रकाश भये,
 आवे ते न जाहि एक ऐसे वासवसिया ।
 अरस परस दस आदि ही अनन्त जन्तु,
 सुरससवादराचै सोई साँचो रसिया ॥ ७ ॥
 इस ही सुरसके सवादी भये ते तो सुनौ,
 तीर्थकरचक्रवर्ति शैली अध्यातमकी ।
 बल वासुदेव प्रति वासुदेव विद्याधर,
 चारणसुनिन्द्र इन्द्र छेदी बुद्धि भ्रमकी ॥

अट्ठावीस लवधिके विविध सधैया साधु,
सिद्धिगति भये कीन्हीं सुगम अगमक्री ।

वानारसीदास ऐसो अमीकुंडपिंड पायो,
तहांलों पहुंच कालक्रमकी न जमकी ॥ ८ ॥

इतर निगोदमें बिभाव ताके बहुरूप,
तामें हू खभाव ताको एक अंश आवै है ।

वहै अंश तेजपुंज वादर अगति जैसें,
एकतैं अनेक रस रसना बढ़ावै है ॥

आगे जोर बल्यो घ्राण चक्षु श्रोत्र नरदेह,
देह देही भिन्न दीखे भिन्नता ही भावै है ।

वानारसीदास निजज्ञानको प्रकाश भयो,
शुद्धतामें वास किये सिद्धपद पावै है ॥ ९ ॥

उदै भयो भानु कोऊ पंथी उठ्यो पंथकाज,
कहै नैनतेज थोरो दीप कर चाहिये ।

कोऊ कोटीध्वज नृप छत्रछांह पुरतज,
ताहि हौंस भई जाय ग्रामवास रहिये ॥

मंगल प्रचंड तज काहू ऐसी इच्छा भई,
एक खर निज असवारी काज चाहिये ।

वानारसीदास जिनवचन प्रकाश सुन,
और बैन सुन्यो चाहै तासों ऐसी कहिये ॥ १० ॥

ऊंचे वंशकी बढ़ाई प्रीतपनों प्रीतिताँई,
 गुण गरबाई पिहुलाई धनो फेर है ।
 बचन विलासको निवास बन सधनाई,
 चतुर नागर नर मुरनको घेर है ॥
 कीरति सराहको प्रवाह वहै महानदी,
 एतो देश उपमा है सवै जग जेर है ।
 हेरि हेरि देख्यो कोऊ और न अनेरो ऐसो,
 बानारसीदास बसुधामें गिरि मेर है ॥ ११ ॥

रीति विपरीति रंग राख्यो परगुण रस,
 छायो झूठे भ्रम ताँते झूटी निधि घरकी ।
 तेरे घर ऋद्धि है अनंत आपरंग आये,
 नेकु जो गलरी फेरे हाय होय हरकी ॥
 कायके उपायसेती एती होंस पूरै भले,
 निजत्रियाखुटे जेती होंस पूजै नरकी ।
 बानारसीदास कहै मूढ़को विचार यह,
 कोटीध्वज भयो चाहै आस करै परकी ॥ १२ ॥

ऋतु वरसात नदी नाले सर जोरचढ़े,
 बढै नाहि मरबाद सागरके फैलकी ।
 नीरके प्रवाह तृण काठवृन्द बहे जात,
 चित्रावेल आइ चढ़ै नाहीं काहू गेलकी ॥

वानारसीदास ऐसे पंचनेके परपंच,
रंचक न संच आवै वीर बुद्धि छैलकी ।

कछु न अनीत न क्यों प्रीति परगुणसेती,
ऐसी रीति विपरीत अध्यात्मशैलकी ॥ १३ ॥

लवरूपातीत लागी पुण्यपाप आंति भागी,
सहज स्वभाव मोहसेनावल भेदकी ।
ज्ञानकी लवधि पाई आत्मलवधि आई,
तेज पुंज कांति जागी उमग अनन्दकी ॥

राहुके विमान बढे कला प्रगटत पूर,
होत जगाजोत जैसे पूनमके चंदकी ।
वानारसीदास ऐसे आठ कर्म अमभेद,
सकति संभाल देखी राजा चिदानंदकी ॥ १४ ॥

लिखतपढ़त ठाम ठाम लोक लक्षकोटि,
ऐसो पाठ पढ़े कछू ज्ञान हू न बढ़िये ।
मिथ्यामती पचि पचि शास्त्रके समूह पढ़े,
बंधीकलवाजे पशुचामढोल मढ़िये ॥

दीपक संजोय दीनो चक्षुहीन ताके कर,
विकट पहार वापै कबहुं न चढ़िये ।

वानारसीदास सो तो ज्ञानके प्रकाश भये,
लिख्यो कहा पढ़े कछू लख्यो है सो पढ़िये ॥ १५ ॥

एक मृतपिण्ड जैसे जलके संयोग छते,
 भाजन विशेष कोट क्षणकमें खेद है ।
 तैसे कर्मनीरचिदानन्दकी प्रणति दीखै,
 नरनारी नपुंसक त्रिविध सुवेद है ॥
 वानारसीदास अब वाको धूप याको तप,
 छूटत संयोग ये उपाधिनको छेद है ।
 पुमालके परचै विशेष जीव भेद भये,
 पुगल प्रसंग विना आतम अभेद है ॥ १६ ॥
 ये ही ज्ञान सबद सुनत सुर ताहि सुन,
 पटरस स्वाद मानै तू तो ताहि मान रे ।
 पिण्ड विरहण्डकी खवर खोजै ताहि खोज,
 परगुण निज गुण जानै ताहि जान रे ॥
 विषय कषायके विलास मंडै ताहि छंड,
 अमल अखंड ऋद्धि आनै ताहि आन रे ।
 वानारसीदास ज्ञाता होय सोई जानै यह,
 मेरे भीत ऐसी रीत चित्त सुधि ठान रे ॥ १७ ॥
 उद्यम करत नर स्वारथके काज सब,
 स्वारथके उद्यमको हूँ रख्यो बहर सो ।
 स्वारथको भजै निरस्वारथको तज रख्यो,
 शहरको वन जानै वनको शहर सो ॥

स्वारथ भलो है जो तू स्वारथको पहिचानै,
स्वारथ पिछाने विन स्वारथ जहर सो ।

बानारसीदास ऐसे स्वारथके रंगराचे,
लोकनके स्वारथको लागत कहर सो ॥ १८ ॥

उलट पलट नट खेलत मिलत लोक,
याके उलटत भव एक तान है रखो ।

अज हूं न ठाम आवै विकथा श्रवण भावै,
महामोह निद्रामें अनादि काल स्वैरखो ॥

बानारसीदास जागे जागै तासों बनि आवै,
जिनवर उकति अमृत रस च्वैरखो ।

उलटि जो खेलै तो तो ख्याल सो उठाय धरै,
उलटिके खेले विन खोटे ख्याल है रखो ॥ १९ ॥

कौन काज मुगध करत बध दीनपशु,
जागी ना अगमज्योति कैसो जज्ञ करि है ।

कौन काज सरिता समुद्र सरजल डोहै,
आतम अमल डोहो अजहूं न हरि है ॥

काहे परिणाम संकलेश रूप करै जीव ।
पुण्यपाप भेद किये कहूं न उघरि है ।

बानारसीदास जिन उकति अमृत रस,
सोई ज्ञान सुने तू अनंत भव तरि है ॥ २० ॥

खेलत अनन्तकाल मये पै न खेद पावै,
 तीन सौ तेताल राजू मापकी तलकमें ।
 केई स्वांग घर खेले वरष असंख्य कोटि
 केई स्वांग फेर लावै पलक पलकमें ॥
 खेलें जेतें जन्तु तातें खेलने अनन्त गुणें,
 वानारसीदास जानै ज्योतिकी झलकमें ।
 खेले तें बहुत ख्याल देखे तें अल्प जन्तु,
 देखे ते भी खेल बैठे ख्याल है खलकमें ॥२१॥

गुरुमुख तुवक सुवक भरे श्रुत सोर,
 कालकी लवधि कलचंपी दरम्यानकी ।
 जामकी अगमबुद्धि जोग उपजोग शुद्धि,
 रंजकअरथ ज्वाला लागी शुभ ध्यानकी ॥
 इत ज्ञातादल उत मोहसेना आई वन,
 वानारसीदास जू कुमक लीजो न्यानकी ।
 जीवै न अवश्य जाके बन्दूककी गोली लागै,
 जागै न मिथ्यात जोपै गोली लागै ज्ञानकी ॥२२॥

घटमें विघट घाट उलट ऊरषवाट,
 परगुण साधें ते अनन्त काल तथको ।
 सुपुमना आदि इला पिंगलाकी सोंज भई,
 पटचक्रवेधी गण जीत्यो मनमंथको ॥

सुलब्धो है कमल वनारसी विशेष ताको,
 सुनिवेकी इच्छा भई जिनमत ग्रन्थको ।
 ऐसे ही जुगति पाय जोगी जोग निधि साधै,
 जोगनिधि साधै तो सिधायै सिद्धपंथको ॥ २३ ॥
 नीच मतिहीन कहै सो तो न ग्हे केवलीपैं,
 कहै कर्महीन सो तो सिद्ध परमितको ।
 धियागारी धरें धिया सारसुत ऐसी धरी,
 मेघाके मिलापसों मथन निज चितको ॥
 मूरख कहैं ते साधैं परम अवधिवार,
 तहां न विचार कछु हित अनहितको ।
 बानारसीदास तोसो निज ज्ञान गेह आवे,
 लोगनकी गारी सो सिंगार समकितको ॥ २४ ॥
 चंचलता बाला वैस भौरी दै दै भूमि फिरै,
 घर तरु भूमि देखै घूमत भरमते ।
 यों ही पर योगपरणतिसेती परबंध,
 औदयिक भाव मूढ़ पावे ना मरमते ॥
 निजकृत मानै तातें घटनि विशेष मानै,
 बड़ै परजाय याही कठिन करमते ।
 बानारसीदास ऐसे विकल विभाव छूटै,
 बुद्धि विसराम पावै स्वभाव धरमते ॥ २५ ॥

छत्रधार बैठो घने लोगनकी भीरभार,
 दीखत स्वरूप सुसनेहिनीसी नारी है ।
 सेना चारि साजिके बिराजें देश दोही फेरी,
 फेरसार करें मानो चौपर पसारी है ॥
 कहत वनारसी बजाय धौसा वारवार,
 रागरस राच्यो दिन चारहीकी वारी है ।
 खुल्यो ना खजानो न खजानचीको खोजपायो,
 राज खसि जायगो खजाने बिन म्बारी है ॥ २६ ॥
 जागो राय चेतन सहज दल जुरि आये,
 मुरे कर्मरिपुभाव मनमें उमाहवी ।
 सरहद भई याकी लोकालोक परिमाण,
 इन्द्रचन्द्र चितवत चोपकर चाहवी ॥
 वानारसीदासज्ञाता ज्ञान सेना बनि आई,
 आदि छैं अन्त बिन ऐसी ही निवाहवी ।
 खजानची शुभध्यान ज्ञानको खजानो पूरो,
 सूरु आप साहिव मुखिर ऐसी साहिबी ॥ २७ ॥
 झाग उठें वामें यामें क्रोधफेन फैलि रहे,
 त्रिवलतरंगरंग दह्नमें आवना ।
 वामें तृणकाठ धनधान्यपरिग्रह यामें,
 वामें मलपंक याहि बंधद्रोह भावना ॥

बानारसीदास वामें आकृति अनेक उठें,
 यहां कुलकौड योनि जाति दोष लावना ।
 बहो जात जल तामें येते कविभाव उठें,
 आत्मा बहिर तामें कहाँते स्वभावना ॥ २८ ॥

निजकाज सबहीको अध्यात्म शैली मांझ,
 मूढ क्यों न खोज देखै खोज औरवानमें ।
 सदा यह लोकरीति सुनी है बनारसीजू,
 वचनप्रशान्त नैकु शानीनके कानमें ॥

चेरी जैसें मल्लिमलि धोवत विराने पांव,
 परमनरंजिवेको सांझ ओ विहानमें ।
 निजपांव क्यों न धोवै? कोई सखी ऐसो कहै,
 मो सी कोऊ आलसन और न जहानमें ॥ २९ ॥

टेककरि मूरखविरानें घर टिक रह्यो,
 जानै मेरे यही घर मैं भी याही घरको ।
 घर परमारथ न जानै तातैं अमघेरो,
 ठौर विना और ठौर अधर पघरको ॥

पंचको भखायो कहै परपंच वंचद्रोह,
 संग्रह समूह कियो सो तो पिंड परको ।
 बानारसीदास ज्ञातावृन्दमें विचार देख्यो,
 परावर्त्तपूरणी जनम ऐसे नरको ॥ ३० ॥

ठांव मृगमद मृग नाभि पुदगलगुन,
 विसतरचो पैनतें विशेषे द्वंद्व वनमें ।
 साहिवके काज मृद अटत अनेक ठौर,
 तनको जो भिन्न मानें तो तो तेरे तनमें ॥
 कंठमाहि मणि कोऊ मूरख विसरि गयो,
 सो तो उपखानों सांचो मयो दीन जनमें ।
 वानारसीदास जिहँ काजको जगत फिरै,
 सो तो काज सरै तेरे एक ही वचनमें ॥ ३१ ॥
 झूल्यो तू निगोद कोऊ काल पाय ढाँकि आयो,
 प्रत्येक शरीर पंच थावरमें तें घरचो ।
 पुनि विकलिंदी इंदी पंच परकार चार,
 नरक तिर्यच देव, पुनि पुनि संचरचो ॥
 वानारसीदास अब नरमव कर्म भूमि,
 गंठिभेद कीन्हों मोक्षमारगमें पै घरचो ।
 चेतरे चतुर नर अज हूं तू क्यों न चेतै ?
 इस अवतार आयो एते घाट उत्तरचो ॥ ३२ ॥
 द्वंद्व लौण सागरमें नेक हू न ढील करै,
 क्षारजल वसै वाके क्षारजल पै नहीं ।
 सीतवदासीताहरिकान्तारक्ताश्रोतस्वाद,
 स्वादी होय सोई स्वादै कोई काहू दै नहीं ॥

सुभरि विभावसिञ्चु समता स्वभावश्रोत,
 वानारसी लाभै ताको भ्रमणको भै नहीं ।
 संगी मच्छ सारिखो स्वभावज्ञाता गहि राख्यो,
 राख्यो सोई जानै भैया कहवेको है नहीं ॥ ३३ ॥

नैननतैं अगम अगम याही वैननतैं,
 उलट पलट वहै कालकूट कहरी ।
 मूलूविन पाये मूढ कैसें जोग साधि आवै,
 सहज समाधिकी अगम गति गहरी ॥
 अध्यात्म सुन्यो तो पै सरधान है न आवै,
 तौ तौ भैया तैं तो बडी राजनीति चहरी ।
 वानारसीदास ज्ञाता जापै सधै सोई जाने,
 उदधि उधानतैं अधिक मनलहरी ॥ ३४ ॥

तत्त्व निजकाज कखो सत्त्व परगुण गह्यो,
 मनकी लहर मानों डसैं नाग कारेसे ।
 छिनकमें तपी छिन जपी हैके जापजपै,
 छिनकमें भोगी छिन जोग परजारेसे ॥

वानारसीदास एतो पूर्वकृत बंध ताके,
 औदयिक भाव तेई आपो कर धारेसे ।

जब लग मत्त तौलों तत्त्वकी पहुंच नाहीं,
 तत्त्व पायें मूढमती लागें मतवारेसे ॥ ३५ ॥

थिर थंम उपल निपुल ज्योति सरतीर,
 सत्ता आये आपनी न कोऊ कोके दलको ।
 भासै प्रतिविम्ब अम्बु वायुसों अनेक फैल,
 धूजतो सो दीखै पै न धूजै थंम थलको ॥
 जाकी दृष्टि पुगललों चेतन न भिन्न चितै,
 आचरण देखे सरधान न विमलको ।
 बनारसीदास ज्ञान आतम सुथिर गुण,
 डोलै परजाय सो विकार कर्मजलको ॥ ३६ ॥
 द्रव्यथकी दोउनकी सरहद देहमात्र,
 भावथकी लोकपरिमाण वाकी इधिना ।
 भाव सरहद याकी अलोकतें अधिकार्द,
 ये तो शुभ काजकारी बातें कष्ट सिधि ना ॥
 याके तो अमेद ऋद्धि अमल अखंड पूर,
 वाके सेना परदल कष्ट निज रिधि ना ।
 बनारसीदास दोउ मीढ़ि देखी दुनियाँमें,
 एक दिसि तेरी विधि एक दिसि विधिना ॥ ३७ ॥
 धर्मदेव नरको वचन जैसो गिरिराज,
 मिथ्याती वचन शुद्धारथको पटंतरो ।
 पारस पाषाण जैसैं जाति एक जेतो भेद,
 मूरख दरश जैसैं दरश महंतरो ॥

वानारसीदास कंकसार अन्यसार जैसे,
 जनमको चौस जैसो चौस मरणंतरो ।
 अध्यात्म शैली अन्य शैलीको विचार तैसो,
 ज्ञाताकी सुदृष्टिमाहिं लागै एतो अंतरो ॥ ३८ ॥

नरभव पाय पाय बहु भूमि धाय धाय,
 पर गुण गाय गाय बहु देह धारी है ।
 नरभव पीछे देह नरक अनेक भव,
 फिर नर देव नर असंख्यात बारी है ॥
 एक देवभव पीछे तिर्यच अनंत भव,
 वानारसी संसारनिवास दुःखकारी है ।
 क्षायक सुमतिपाय मोह सेना बिछुराय,
 अब चिदानंदराय शक्ति सँभारी है ॥ ३९ ॥

पामर वरण शूद्र वास तव देह बुद्धि,
 अशुभको काज ताहि तातैं बड़ी लाज है ।
 वैश्यको विचार वाके कछू करतूति फेर,
 वैश्य वास वसै तौलों नाहिं जोगराज है ॥
 क्षत्री शुद्ध परचंड जैतवार काज जाके,
 वानारसीदास ब्रह्म अगम अगाज है ।
 जैसे वास वसै लोय तामें तैसी बुद्धि होय,
 जैसी बुद्धि तैसी क्रिया क्रिया तैसो काज है ४०

फटिक पाषाण ताहि मोतीकर माने कोऊ,
 घुंघची रक्त कहा रतन समान है ।
 हंस वक्र सेत इहां सतेको न हेत कमू,
 रोरी पीरी भई कहा कंचनके वान है ॥
 मेय भगवानके समान कोऊ जान भयो,
 मुद्राको मंडान कहा मोक्षको मुयान है ।
 वानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देखो,
 काय जोग कैसे होउ गुण परधान है ॥ ४१ ॥
 वेदपाठवाले ब्रह्म कहें पै विचार विना;
 शिव कोई भिन्न जान शैव गुणगावहीं ।
 जैनी पर जतन जतन निजभिन्न जान,
 वानारसी कहै चारवाक घुंघवावहीं ॥
 बौद्ध कहै बुद्ध रूप काह एक देशवसै,
 न्यायके करनहार ऊरध बतावहीं ।
 छहों दरशनमाहिं छतो आदि छिपि रहो,
 ब्रूख्यो न मिथ्यात ततैं प्रगट न पावहीं ॥ ४२ ॥
 भेषधर कोटिक नख्यो है लखचौरासीमें,
 विना गुरुज्ञान वरतें न विवसावमें ।
 गुरु भगवान तूही भगवानभ्रान्ति छूटै,
 भ्रान्तिसे सुगुरुभापै जैसें खीर तावमें ॥

वानारसीदास ज्ञाता भगवानभेद पायो,
 भयो है उछाह तेरे वचन कहावमें ।
 भेषधार कहै भैया भेषहीमें भगवान,
 भेषमें न भगवान भगवान भावमें ॥ ४३ ॥

मोक्ष चलिवेको पंथ भूले पंथ पथिक ज्यों,
 पंथबलहीन ताहि सुखरथ सारसी ।
 सहजसमाधि जोग साधिवेको रंगभूमि,
 परम अगम पद पढिवेको पारसी ॥
 मनसिन्धु तारिवेको शब्द धरै है पोत,
 ज्ञानघाट पाये श्रुतलंगर लैझारसी ।
 समकित नैननिको याके नैन अंजनसे,
 आतमा निहारिवेको आरसी बनारसी ॥ ४४ ॥

जिनवाणी दुग्धमाहिं विजया सुमतिडार,
 निजस्वाद कंदवृन्द चहलपहलमें ।
 विवेक विचार उपचार ए कसूंभो कीन्हों,
 मिथ्यासोफी मिटि गये ज्ञानकी गहलमें ॥

शीरनी शुक्लध्यान अनहद नाद तान,
 गान गुणमान करै सुजस सहलमें ।
 वानारसीदास मध्यनायक समासमूह,
 अध्यातमशैली चली मोक्षके महलमें ॥ ४५ ॥

रसातल तलं पंच गोलक अनन्त अंतु;
 तामें दोऊ राशि अन्तरहित स्वरूप है ।
 कटुक मधुर जौलों अगनित भिन्नताई;
 चिकणताभाव एक जैसें तेलरूप है ॥
 जैसें कोऊ जात अंध चौइन्द्री न कहियत,
 द्रव्यको विचार मूढभावको निरूप है ।
 वानारसीदास प्रभु वीर जिन ऐसो कखो,
 आत्म अभव्य भैया सोऊ सिद्धरूप है ॥ ४६ ॥
 लक्षकोट जोरिजोरि कंचन अंघार कियो,
 करता मैं याको ये तो करै मेरी शोभ को ।
 धामधन भरो मेरे और तो न काम कछू,
 सुख विसराम सो न पावैं कहं थोभको ॥
 ऐसो बलवन्त देख मोह नृप खुशी भयो,
 सैनापति थाप्यो जैसे अहंभार मोभको ।
 वानारसीदास ज्ञाता ज्ञानमें विचार देख्यो,
 लोगनको लोभ लाग्यो लागे लोग लोभको ४७
 बाबनवरण ये ही पदत वरण चारि,
 काहू पढ़ै ज्ञान घड़े काहू दुख द्वंदजू ।
 वरण भंडार पंच वरण रतनसार,
 भौर ही भंडार भाववरण सुछंदजू ॥

वरणतें मित्रता सुवरणमें प्रतिभासै,
 सुगुण सुनत ताहि होत है अनंद जू ।
 वानारसीदास जिनवाणी वरणन कियो,
 तेरी वाणी वरणाव करै बड़े वृन्द जू ॥ ४८ ॥
 शकबंधी सांचो शिरीमाल जिनदास सुन्यो;
 ताके वंश मूलदास विरद बढ़ायो है ।
 ताके वंश क्षितिमें प्रगट भयो खड्गगसेन,
 वानारसीदास ताके अवतार आयो है ॥
 वीहोलिया गोत गर बतन उद्योत भयो,
 आगरेनगर ताहि भेटे सुखपायो है ।
 'वानारसी' 'वानारसी' खलक बखान करै,
 ताको वंश नाम ठाम गाम गुण गायो है ॥ ४९ ॥
 खुशी हैके मन्दिर कपूरचन्द साहु बैठे,
 बैठे कौरपाल सभा जुरी मनभावनी ।
 वानारसीदासजूके वचनकी बात चली,
 याकी कथा ऐसी ज्ञाताज्ञानमनलावनी ॥
 गुणवंत पुरुषके गुण कीरतन कीजे,
 पीतांबर प्रीति करी सज्जन सुहावनी ।
 वही अधिकार आयो ऊंघते विछोना पायो,
 हुकम प्रसादतें भयी है ज्ञानवावनी ॥ ५० ॥

सोलह सो छियासीये संवत कुंवारमास,
 पक्ष उजियारे चन्द्र चढ़वेको चाव है ।
 विजैदशी दिन आयो शुद्ध परकाश पायो,
 उत्तरा आषाढ़ उडुंगन यहै दाव है ॥
 वानारसीदास गुणयोग है शुक्लवाना,
 पौरुषप्रधान गिरि करण कहाव है ।
 एक तो अरथ शुभ महरत वरणाव,
 दूसरे अरथ यामें दूजो वरणाव है ॥ ५१ ॥
 हेतवन्त जेते ताको सहज उदारचित्त,
 आगें कहों एतो वरदान मोहि दीजियो ।
 उत्तम पुरुष शिरीवानारसीदास यश,
 पन्नगस्वभाव एक ध्यानसों सुनीजियो ॥
 पवनस्वभाव विसतार कीज्यो देशदेश,
 अमर स्वभाव निज स्वाद रस पीजियो ।
 वावन कवित्त ये तो मेरी मतिमान भये,
 हंसके स्वभाव ज्ञाता गुण गहलीजियो ॥ ५२ ॥
 इति श्रीवानारसी नामादित ज्ञानवावनी ।

अथ वेदनिर्णयपंचासिका.

चूडामणि छन्द ।

जगतविलोचन जगतहित, जगतारण जग जाना ।

वन्दहुं जगचूडामणी, जगनायक परधाना ॥

नमहुं ऋषभस्वामीप्रमुख, जिनचौवीस महन्ता ।

गुरुचरण चितराख मुख, कहूं वेदविरतन्ता ॥ १ ॥

मनहरण । (खड़ीबोली)

केवलीकथितवेद अन्तर गुप्त भये,

जिनके शब्दमें अमृतरस चुवाहै ।

अव ऋगुवेद यजुर्वेद शाम अथर्वण,

इनहींका परभाव जगतमें हुवा है ॥

कहत बनारसी तथापि मैं कहूंगा कछु,

सही समझेंगे जिनका मिथ्यात मुवा है ।

मतवारो मूरख न मानै उपदेश जैसे,

उलुवा न जाने किसिओर मानु उवा है ॥ २ ॥

दोहा ।

कहहुं वेदपंचासिका, जिनवानी परमान ।

नर अजान जानें नहीं, जो जाने सो जान ॥ ३ ॥

१ अन्य कवियोंने इसे मुक्कामणि लिखा है, १३ और १२ के विश्राम से इसमें २५ मात्रा होती हैं. दोहाके अन्त लघुवर्णको गुरु कर देनेसे यह छन्द बन जाता है.

ब्रह्मानाम युगादिजिन, रूप चतुर्मुख धार ।
समवसरण मंडानमें, वेद वखानें चार ॥ ४ ॥

धनाक्षरी ।

प्रथम पुनीत प्रथमानुयोगवेद जामें,
त्रेसठशलाका महापुरुषोंकी कथा है ।
दूजो वेद करणानुयोग जाके गरभमें,
वरनी अनादि लोकालोक थिति जथा है ॥
चरणानुयोग वेद तीसरो प्रगट जामें,
मोखपंथकारण आचार सिंधु मथा है ।
चौथोवेद दरव्यानुयोग जामें दरवके,
पटभेद करम उछेद सरवथा है ॥ ५ ॥

प्रथमवेद यथा:—

पदपद ।

तीर्थकर चौबीस, काम चौबीस मनुजतन ।
जिनमाता जिनपिता, सकल व्यालीसबाठ गन ॥
चक्रवर्ति द्वादश प्रमान, एकादश शंकर ।
नव प्रतिहर नव वासुदेव, नव राम शुभंकर ॥
कुलकर महन्त चवदह पुरुष, नव नारद इत्यादि नर ।
इनको चरित्र अरु गुणकथन, प्रथमवेद यह भेद धर ॥ ६ ॥

द्वितीयवेद यथा:—

अगम अनंत अलोक, अकृत अनिमित्त अखंड सभ ।
असंख्यातपरदेश, पुरुषआकार लोक नभ ॥

ऊरध स्वर्ग अधो पताल, नरलोक मध्यमुव ।
 दीप असंख्य उदधि, असंख मंडलाकार ध्रुव ॥
 तिस मध्य अढाई दीपलग, पंचमेरु सागर जुगम ।
 यह मनुजक्षेत्र परिमाण छिति, सुरविद्याधरको सुगम ॥ ७ ॥

मनहरण ।

सोलह सुरग नवग्रीव नव नवोत्तर,
 पंच पंचानुत्तर ऊपर सिद्धशिला है ।
 ता ऊपर सिद्धक्षेत्र तहां हैं अनन्तसिद्ध,
 एकमें अनेक कोऊ काहूसों न मिला है ॥
 अधोलोक पातालकी रचना अनेकविधि,
 नीचे सात नरकनिवास बहु विला है ।
 इत्यादि जगतथिति कही दूजेवेद माहिं,
 सोई जीव मानें जिन मिथ्यात उगिला है ॥ ८ ॥

तृतीयवेद यथा:—

मिथ्याकरतूति नाखी सासादन रीति भाखी,
 मिश्रगुणथानककी राखी मिश्र करनी ।
 सम्यकवचन सार कबो नानापरकार,
 श्रावकआचार गुन एकादश धरनी ॥
 परमादीमुनिकी क्रिया कहीं अनेकरूप,
 भारी मुनिराजकी क्रिया प्रमादहरनी ।
 चारितकरण त्रिधा श्रेणिधारा दुविधा है,
 एक दोषमुखी एक मोखमुखी वरनी ॥ १० ॥

चौपाई ।

उपशम क्षिपक यथावत चारित ।

परकृत अनुमोदनकृतकारित ॥

द्विविधि त्रिविधि पनविधि आचारा ।

तेरह विधि सत्रह परकारा ॥ ११ ॥

दोहा ।

वरनन संख्य असंख्यविधि, तिनके भेद अनंत ।

सदाचार गुणकथन यह, तृतीयवेद विरतंत ॥ १२ ॥

चतुर्थवेद यथाः—रूपक घनाक्षरी.

जीव पुदगल धर्म, अधर्म आकाश काल,

येही छहों दरब, जगतके धरनहार ।

एक एक दरबमें, अनंत अनंत गुन,

अनंत अनंत परजायके करनहार ॥

एक एक दरबमें, शक्ति अनंत वसै,

कोऊ न जनम धरै कोऊ न मरनहार ।

निहचै निवेद कर्मभेद चौथेवेद माहि,

वखानें सुगुरु मानै मोहको हरनहार ॥ १३ ॥

चौपाई ।

येही चारवेद जगमाहि । सर्व ग्रन्थ इनकी परछाहि ॥

ज्यों ज्यों धरम भयो विच्छेद । त्यों त्यों गुप्त भये ये वेद १४

१ इस छन्दमें बत्तीसवर्ण लघु गुरुके नियमरहित होते हैं, आठ. आठ आठ, आठ मिलाकर एक चरणमें ३२ वर्ण होते हैं अन्तमें नियमन लघु होता है.

दोहा ।

द्वादशांगवानी विमल, गर्भित चारों वेद ।

ते किन कीन्हें कव भये, सो सब वरनों भेद ॥ १५ ॥

युगलधर्म रचना कहों, कुलकर रीति वखान ।

ऋषभदेव ब्रह्मा कथा, सुनहु भविक धर कान ॥ १६ ॥

युगलधर्मयथा,—चौपाई ।

प्रथमहिं जुगलधर्म है जैसा । गुरुपरसाद कहहुं कछु तैसा ॥

जन्महिं जुगलनारिनर दोऊ । भाई वहिन न मानै कोऊ ॥ १७ ॥

दोहा ।

सुरसे सीरे सोमसे, बहुरागी बहुमित्र ।

होहिं एक्से जुगल सब, कौतूहली विचित्र ॥ १८ ॥

मनहरण ।

सबहीके चित्त अतिसरलस्वभावी नित्त,

सबहीके थिरचित्त कोऊ न सुगुलिया ।

हिये पुण्यरसपोष सहजसंतोष लिये,

गुननके कोष दुखदोषके उगुलिया ॥

कोऊ नहिं लरै कोऊ काहूको न धन हरै,

कोऊ कबहुं न करै काहूकी चुगलिया ।

समतासहित संकलेशतारहित सब,

सुखिया सदीव ऐसे जीव हैं जुगलिया ॥ १९ ॥

भूपन नवीन बन्ध मलहीन सवहीके,
 घर घर निकट कल्पतरुवाटिका ।
 नाहीं रागद्वेषभाव नाहीं बंधको वदाव,
 नाहीं रोग ताप न बिलोके कोऊ नाटिका ॥
 विविधपरिश्रम सबके घर देखिये पै,
 काहूके न पोरि परद्वार न कपाटिका ।
 अल्पअहारी सब मृदुतनधारी सब,
 सुंदरअकारी सब ऐसी परिपाटिका ॥ २० ॥

दोहा ।

घर घर नाटक होहि नित, घर घर गीत संगीत ।
 कवहं कोऊ न देखिये, वदनपीतं भयभीत ॥ २१ ॥

मनहरण ।

जिनके अल्प संकल्प विकल्प दोऊ,
 धोरो मुखअल्प अल्पअहमेवता ।
 जिनके न कोऊ अरि दीरघ शरीर धरि,
 त्रिपतिकी दृष्टा धरै विपति न बरवता ॥
 जिनके विषै वदाव पत्योपमतीनआव,
 सबै नर राव कोऊ काहूको न सेवता ।

१ मकानका आगेका भाग. २ कियाड़. ३ पंखा. शोवाचल
 मुर. ४ बोलना (मितभाषि). ५ अहंपना. ६ अनुभव करना.
 ७ तीन पत्यकी आयु.

ऐसे भद्रमानुष जुगलअवतारपाय,
 करि करि भोग मरि मरि होंहि देवता ॥ २२ ॥
 जिनके जनम माहि मातपिता मर जाहि,
 व्यापै न वियोग दुख शोक नहि घरना ।
 अपने अँगूठाको अमृतरसपान कर,
 जिनको अपनो तन वर्द्धमान करना ॥
 अन्तकाल जिनको असातावेदनी न होय,
 छींक आये अथवा जँमाई आये मरना ।
 जिनको शरीर खिर जाय ज्यों कपूर उडै,
 ऐसो जिनवानीमें जुगलधर्म वरना ॥ २३ ॥

चौपाई ।

जुगलधर्म जब लेय मरोरा । वाकी काल रहै कछु थोरा ॥
 प्रगटहि तहां चतुर्दशप्रानी । कुलकर नाम कहावैं ज्ञानी ॥ २४ ॥
 सब सुजान सबकी गति नीकी । सब शंका भेटहि सबजीकी ।
 होहि विछिन्न कल्पतरु ज्योंज्यों । कुलकर आगम भाषहि त्योंत्यों ॥

दोहा ।

कछो सबनि मरि मरि जनम, हरि हरि भांति कहाव ।
 धरि धरि तन मरि मरि गये, करि करि पूरण आव ॥ २५ ॥
 इहिविधि चवदह मनु भये, कछु कछु अन्तरकाल ।
 तीन ज्ञान संयुक्त सब, मति श्रुति अवाधि रसाल ॥ २७ ॥

चाँपाई ।

तेरह मनुके नाव जु आने । नाभिराय चौदहें वस्ताने ॥
मरुदेवी तिनकी वरनारी । श्रीलवंत सुंदरि मुकुमारी ॥ २८ ॥
ताके गर्भ भये अवतारी । ऋषभदेवजिन समकित्तवारी ।
तीनज्ञान संयुक्त मुहाये । अगणित नाम जगतमें गाये ॥ २९ ॥

ऋषभदेव कथनः—

दोहा ।

ऋषभदेव जे जे दशा, घरीं किये जे काम ।
ते ते पदगर्भित भये, प्रगट जगतमें नाम ॥ ३० ॥
जे ब्रह्माके नाम सब, जगतमाहिं बिल्यात ।
ते गुणसों करतूतिसों, ऋषभदेवकी बात ॥ ३१ ॥

चाँपाई ।

जनमत नाम भयो गुमबेला । आदिपुरुष अवतार अकेला ॥
मातापिता नाम जब राखा । ऋषभकुमार जगत सब भाखा ३२
नाभि नाम राजाके जाये । नाभिकमलउत्पन्न कहाये ॥
इन्द्र नरेन्द्र करें जब सेवा । तब कहिये देवनको देवा ॥ ३३ ॥

१ वैष्णव सम्प्रदायमें कल्पना की है कि श्रीकृष्णजीने जब पृथिवी
तुराके पेटमें रखली, तब ब्रह्माजीने धवदाके इन्हें हुंटा बटवृक्षके पंभपर
सोतेहुये मिले, तब इनके पेटमें सन्देह किया। श्रीकृष्णजीने जलने पेटमें इन्हें
धुस जानें दिया और फिर मुह बंदकर निकलने नदी दिया, तब ब्रह्माजी
श्रीकृष्णकी नाभिमेंसे कमल उदयन कर उसकी नालमें पृथिवीगड़ित
निकले तबसे ब्रह्मा नाभिकमलउत्पन्न कहलाये।

जुगलरीति तज नीति उधरता । तातें कहैं सृष्टिके करता ॥
 असिमसिद्धिषिवाणिजके दाता । ताकारण विधि नाम विधाता ॥
 क्रियाविशेष रचीं जग जेती । जगत विरञ्चि कहैं प्रभु सेती ॥
 जुगकी आदि प्रजा जब पालें । तब जग नाम प्रजापति आलें ३५

दोहा ।

क्रियो नृत्य काहू समय, नटी अप्सरा वाम ।
 जगत कहै ब्रह्मा रचो, तिय तिलोत्तमा नाम ॥ ३६ ॥

चौपाई ।

गुरुविन मये महामुनि जब हीं । नाम स्वयंभू प्रगटोतवहीं ॥
 ध्यानारूढ़ परमतप साधें । परमइष्ट कह जगत अराधें ॥ ३७ ॥
 भरतखंडके प्राणी जेते । प्रजा भरतराजाके तेते ।
 भरतनरेश ऋषभकी साखा । तातें लोक पितामह भाखा ३८
 केवलज्ञानरूप जब होई । तब ब्रह्मा भापै सब कोई ॥
 कंचनगदंगर्भित जग भासै । नाम हिरण्यगर्भ परकासै ॥ ३९ ॥

दोहा ।

कमलासनपर बैठिके । देहिं धर्म उपदेश ।
 चमर छत्र लख जग कहै । कमलाशन लोकेश ॥ ४० ॥

चौपाई ।

आत्मभूमि रूप दरसावै । तबहिं आत्मभू नाम कहावै ॥
 सकलजीवकी रक्षा भाखै । नाम सहस्रपातु जग राखै ॥ ४१ ॥

समवसरनमहिं चौमुखि दीसैं । चतुरानन कह जगत अर्नीसैं ॥
 अक्षरविना वेदधुनि भासै । रचना रच गणधर परगासैं ४२
 चारवेद कहिये तब सेती । द्वादशांगकी रचना एती ॥
 जवधुनि मुनि अनंतता गहिये । तब प्रमु अनंतातमा कहिये ४३
 आदिनाथआदीश्वर जोई । आदि अन्तविन कहिये सोई ॥
 करै जगत इनहींकी पूजा । ये ही ब्रह्म और नहिं दूजा ४४
 जवलों जीव मृपामग दौरै । तबलों जानै ब्रह्मा औरै ॥
 जव समकित नैननसों सृष्टै । ब्रह्मा ऋषभदेव तब वृष्टै ४५

दोहा ।

आदीश्वर ब्रह्मा भये, किये वेद जिन चार ।
 नामभेद मतभेदसों, बढी जगतमें रार ॥ ४६ ॥

ब्रह्मलोक कथनः—चौपाई ।

और लक्ति मेरे मन आवै । सांचीवात सबनको भावै ॥
 ब्रह्मा ब्रह्मलोकको वासी । सो वृत्तान्त कहों परकासी ॥ ४७ ॥

कुंडलिया ।

ऊपर सब मुरलोकके, ब्रह्मलोक अभिराम ।
 सो सरवारयसिद्धि तमु, पंचानुत्तर नाम ॥
 पंचानुत्तर नाम, धाम एका अवतारी ।
 तहां पूर्वभव बसे, ऋषभजिन समकितधारी ॥
 ब्रह्मलोकसों चये, भये ब्रह्मा इहि भूपर ।
 ताते लोक कहान, देव ब्रह्मा सब ऊपर ॥ ४८ ॥

चौपाई ।

आदीश्वर युगादि शिवगामी । तीनलोकजनअंतरजामी ॥
 ऋषभदेव ब्रह्मा जगसाखी । जिन सब जैनधर्मविधि भाखी ४९
 ऋषभदेवके अगनितनाऊं । कहों कहां लैं पार न पाऊं ॥
 वे अगाध मेरी मति हीनी । तातें कथा समाप्त कीनी ॥ ५० ॥

पदपद ।

इहिविधि ब्रह्मा भये, ऋषभदेवाधिदेव मुनि ।
 रूप चतुर्मुख धारि, करी जिन प्रगट वेदधुनि ॥
 तिनके नाम अनंत, ज्ञानगर्भित गुणगूझे ।
 मैं तेते वरणये, अरथ जिन जिनके बूझे ॥
 यह शब्दब्रह्मसागर अगम, परमब्रह्म गुणजलसहित ।
 किमि लहै बनारसि पार पद, नर विवेक भुजवलरहित ॥ ५१ ॥

इति वेदनिर्णयपंचासिका.

अथ त्रेशठशलाकापुरुषोंकी नामावली.

वस्तुछन्द ।

नमो जिनवर नमो जिनवरदेव चौवीस ।

नरद्वादश चक्रधर, नव मुकुन्द नव प्रतिनारायण ।

नव हलधर सकल मिलि, प्रभु त्रेशठ शिवपथपरायण ॥

ए महंत त्रिभुवनमुकुट, परमधरमधनधाम ।

ज्यों ज्यों अनुक्रम अवतरे, त्योंत्यों वरनों नाम ॥ १ ॥

सोरठा ।

केई तदभव सिद्ध, निकटभव केई पुरुष ।

मृपागंठि उरविद्ध, सुमति शलाकाधर सकल ॥ २ ॥

वस्तुछन्द ।

ऋषभजिनवर ऋषभजिनवर भरतचक्रीश ।

श्रीअजित जिनेश हुव, सगरचक्रि संभवतीर्थकर ।

अभिनंदन सुमति जिन, पद्मप्रभ मुपास श्रीशंकर ॥

श्रीचन्द्रप्रभु सुविध जिन, शीतल जिन श्रेयांश ।

अश्वग्रीव प्रतिहर मयो, हलधर विजय सुवंश ॥ ३ ॥

सोरठा ।

हरि त्रिपृष्टि जिन जाय, वामुपूज्य जिन द्वादशम ।

तारक प्रतिहरि वाय, हलधर अचल द्विपृष्टि हरि ॥ ४ ॥

वस्तुछन्द ।

विमल जिनवर विमल जिनवर भेरुं प्रतिविष्णु ।

वल धर्म स्वयंभूहरि, जिन अनंत मधु प्रतिद्रामोदर ।
 वल सुप्रभ नाम हुव, पुरुषोत्तम हरि तासु सोदैर ॥
 धर्म जिनेश निशुंभ प्रति, नारायण नरभेस ।
 राम सुदर्शन नाम हुव, हरि नरसिंह नरेस ॥ ५ ॥
 सोरठा ।

मध्वनाम चक्रेश, चक्री सनतकुमार हुव ।
 चक्री शांति नरेश, भयहु शांति जित शांतिकर ॥ ६ ॥
 वस्तुछन्द ।

कुंथु चक्री कुंथु चक्री, कुंथु सर्वज्ञ ।
 अर सार्वभौम हुव, अर जिनेश प्रह्लाद प्रतिहरि ।
 वलमद्र मुनंदि हुव, पुंडरीक हरि बंधु तासु घर ॥
 सार्वभौम सुभौम हुव, वलि प्रतिहरि अवतार ।
 नन्दिमित्र वलदेव हित, केशव दत्तकुमार ॥ ७ ॥
 सोरठा ।

पद्म चक्रि जिन मल्लि, विजयसेन पटखंडजित ।
 मुनिसुव्रत हरि अल्लि, चक्रवर्ति हरिपेण हुव ॥ ८ ॥
 वस्तुछन्द ।

भयहु रावण भयहु रावणनाम, प्रतिकृष्ण ।
 रघुनन्दन राम हुव, वासुदेव लक्ष्मण गण्डिजै ।
 नमि जिनवर नेमि जिन, जरासंध प्रतिहरि भण्डिजै ॥

१ धर्मप्रभ. २ मधुकैटभ. ३ सहोदर, भाई (हलधर) ४ मधवा.
 ५ देवदत्त. ६ जयसेन.

हलधर पदम मुरारि हरि, ब्रह्मदत्त चक्रीस ।

पास जिनेसुर वीर जिन, ये नर तीनत्रिवीस ॥ ९ ॥

सोरठा ।

त्रिभुवनमाहिं उदार, त्रेयठ पद उत्कृष्ट जिय ।

भाविभूत उपचार, वन्दै चरण वनारसी ॥ १० ॥

तीर्थकर नामावली—पद्यपद ।

ऋषम अजित संभव जिनंद, अभिनंद मुमति घर ।

श्रीपदमप्रभ श्रीसुपास, चन्द्रप्रभ जिनवर ॥

सुविधिनाथ शीतल श्रेयांसप्रभु वामुपूज्य वर ।

विमल अनन्त सुधर्म शांति जिन कुंथुनाथ अर ॥

प्रभु मल्लिनाथ त्रिभुवनतिलक, मुनिसुव्रत नमि नेमि नर ।

पारस जिनेश वीरेश पद, नमति वनारसी जोर कर ॥ ११ ॥

चक्रचर्तिनाम—दोहा ।

भरत सगर मधवा सनत,—कुँवर शांति कुंधेश ।

अर मुभौम पदमारुची, जय हर्षेण ब्रह्मेश ॥ १२ ॥

प्रतिनारायण नाम—दोहा ।

अश्वग्रीव तारक भधू, मेरु निशुंभ प्रह्लाद ।

वलिराजा रावण जरा, सन्ध मुप्रतिहरिवाद ॥ १३ ॥

नारायणनाम—दोहा ।

त्रिपिप द्विपिष्ट स्वयंभु पुरु,—पोत्तम नरसिंहेश ।

पुण्डरीक दत्ताधिपति, ललमण हरिमथुरेश ॥ १४ ॥

बलभद्रनाम—दोहा ।

विजय अचल बल धर्मधर, सुप्रभ सुदर्शन नाम ।

सुनंदि नंदिमित्रेश रघु, नाथपदम नवराम ॥ १५ ॥

इति श्रीत्रैलोक्यशलाकापुरुषोत्तमी नामावली.

अथ मार्गणाविधान लिख्यते.

दोहा ।

वन्दहुं देव जुगादिजिन, सुमरि सुगुरु मुखभाख ।

चवदह मारगणा कहहुं, वरणहुं वासठ साख ॥ १ ॥

चौपाई ।

संजम भव्य अहार कषाय । दर्शन ज्ञान जोग गति कार्य ॥

लेख्या समकित सैनी वेद । इन्द्रिय सहितचतुर्दशभेद ॥ २ ॥

ए चौदह मारगणा सार । इनके वासठ भेद उदार ॥

वासठ संसारी जिय भाव । इनहिं उलंघि होय शिवराव ॥ ३ ॥

संजम सात भव्य द्वै भाय । द्विविधि अहारी चार कषाय ॥

दर्शन चार आठविधि ज्ञान । जोग तीन गति चारविधान ४

षट काया लेख्या षट होय । षट समकित सैनीविधि दोय ॥

वेद तीनविधि इन्द्रिय पंच । सकल ठीक गति वासठ संच ५

इनके नाम भेद विस्तार । वरणहुं जिनवानी अनुसार ।

वासठरूप खांग घर जीव । करै नृत्य जगमाहिं सदीव ॥ ६ ॥

प्रथम असंजम रूप विशेष । देशसंजमी दूजो भेष ॥
 तीजो सामायिक सुखधाम । चौथा छेदउथापन नाम ॥ ७ ॥
 पंचम पद परिहारि विशुद्धि । सूक्ष्म सांपराय पट बुद्धि ॥
 जथाख्यात चारित सातमा । सातों स्वांग धरै आत्मा ॥ ८ ॥
 भव्य अभव्य स्वांग घर दुधा । करै जीव जग नाटक मुधा ॥
 अनहारक आहारी होय । नाचै जीव स्वांग घर दोय ॥ ९ ॥
 कवहं क्रोध अग्नि लहलहै । कवहं अष्ट महामद गहै ॥
 कवहं मायामयी सरूप । कवहं मगन लोभ रसकूप ॥ १० ॥
 चार कपाय चतुर्विध भेष । धर जिय नाटक करै विशेष ॥
 कहं चक्षुदर्शनसों लखै । कहं अचक्षुदर्शनसों चखै ॥ ११ ॥
 कहं अवधि दर्शन सु प्रयुंज । कहं मुकेवलदर्शन पुंज ॥
 धर दर्शन मारगणा चारि । नाटक नटै जीव संसारि ॥ १२ ॥
 कुमतिज्ञान मिथ्यामति लीन । कुश्रुति कुआगममें परवीन ॥
 धरै विभंगा अवधि अज्ञान । सुमति ज्ञान समकित परवान ॥ १३ ॥
 सुश्रुतिज्ञान परमागम सुणै । अवधि ज्ञान परमाचार्य सुणै ॥
 मनपर्जय जानहिं मनभेद । केवलज्ञान प्रगट सब वेद ॥ १४ ॥
 एही आठ ज्ञानके अंग । नचै जीव इनरूप रसंग ॥
 मनोजोगमय होय कदाचि । बोलै वचन जोगसों राचि ॥ १५ ॥
 कायजोगमय मगन स्वकीय । नाचै त्रिविधि जोग धर जीया ॥
 सुरगति पाय करै सुखभोग । समसुखदुख नरगति संजोगा ॥ १६ ॥
 बहुदुख अल्पमुखी तिरजंच । नरक महादुःख है सुख रंच ॥
 चहुंगति जन्मन मरण कलेस । नटै जीव नानारसभेस ॥ १७ ॥

पृथिवी काय देह जिय धरै । अपकायिकमय है अवतरै ॥
 अग्निकायमहिं तपत स्वभाय । वायुकायमहिं कहिये वाया ॥ १८ ॥
 वनसपत्नी रूपी दुखमूल । लहि त्रसकाय धरै तन धूल ॥
 षटकाया षटविधि अवतार । धरि धरि मरै अनन्ती बार ॥ १९ ॥
 धरै कृष्णलेश्या परिणाम । नीललेश्यमय आतमराम ॥
 फिर धरै लेश्या कापोत । सहज पीतलेश्यामय होत ॥ २० ॥
 चेतन पद्मलेश्य परिवान । करै शुक्ललेश्या रसपान ॥
 इहिविधि षट लेश्या पद पाय । जगवासी शुभ अशुभ कमाय ॥ २१ ॥
 धर मिथ्यात्न झूठ सरदहै । बसि समकित सासादन गहै ॥
 सत्य असत्य मिश्र समकाल । सीधे समकित क्षायक चाल ॥ २२ ॥
 उपसम बोध धरै बहुवार । वेदै वेदकरूप विचार ॥
 धर षट समकित स्वांग विधान । करै नृत्य जिय जान अजान ॥ २३ ॥
 सैनीरूप असैनीरूप । दुविधिस्वांग जिय धरै अनूप ॥
 पुरुषवेद तृण अगनि उछाह । त्रियवेदी कारीसादाह ॥ २४ ॥
 वनदवदाह नपुंसकवेद । नटै जीव धर रूप त्रिभेद ॥
 थावरमहिं इकेन्द्री होय । त्रस संखादिक इन्द्रिय दोय ॥ २५ ॥
 पिपीलिकादिक इन्द्री तीन । चौरिन्द्रिय जिय अमरादीनि ॥
 पंचेन्द्री देवादिक देह । सब बासठि मारगणा एह ॥ २६ ॥
 जावत जिय मारगणारूप । तावत्काल वसै भवकूप ॥
 जब मारगणा मूल उछेद । तब शिव आपै आप अमेदा ॥ २७ ॥

दोहा ।

ये वासठ विधि जीवके, तनसन्वन्धी भाव ।

तज तनबुद्धि वनारसी, कीजे मोक्ष उपाव ॥ २८ ॥

इति वासठ मार्गण विधान.

अथ कर्मप्रकृतिविधान लिख्यते.

वस्तुछन्द ।

परमशंकर परमशंकर, परमभगवान्.

परब्रह्म अनादि शिव, अज अनंत गणपति विनायक ।

परमेश्वर परमगुरु, परमपंथ उपदेशदायक ॥

इत्यादिक बहु नाम धर, जगतबंध जिनराज ।

जिनके चरण वनारसी, बंदे निजहितकाज ॥ १ ॥

दोहा ।

नमो केवलीके वचन, नमो आतमाराम ।

कहौं कर्मकी प्रकृति सब, भिन्न भिन्न पद नाम ॥ २ ॥

चौपाई. (१५ मात्रा)

एकहि करम आठविधि दीस । प्रकृति एकसौ अड़तालीस ॥

तिनके नाम भेद विस्तार । वरणहुं जिनवर्णी अनुसार ॥ ३ ॥

प्रथमकर्म ज्ञानावरणीय । जिन सब जीव अज्ञानी क्रीय ॥

द्वितीय दर्शनावरण पहार । जाकी ओट अलख करतार ॥ ४ ॥

तीजा कर्म वेदनी जान । तासों निराबाध गुणदान ॥

चौथा महामोह जिन भनै । जो समकित अरु चारित हनै ॥ ५ ॥

पंचम आवकरण परधान । हनै शुद्ध अवगाहप्रमान ॥
 छडा नामकर्म विरतंत । करहि जीवको मूरतिवंत ॥ ६ ॥
 गोत्र कर्म सातमों बखान । जासों ऊंच नीच कुल मान ॥
 अष्टम अन्तराय विख्यात । करै अनन्तशक्तिको घात ॥ ७ ॥
 दोहा ।

ए ही आठों करममल, इनमें गर्भित जीव ।
 इनहिं त्याग निर्मल भयो, सो शिवरूप सदीव ॥ ८ ॥
 चौपाई ।

कहो कर्मतरु डाल सरीस । प्रकृति एकसो अड़तालीस ॥
 मतिज्ञानावरणी जो कर्म । सो आवरि राखै मतिधर्म ॥ ९ ॥
 श्रुतिज्ञानावरणी बल जहां । शुभश्रुतज्ञान फुरै नहिं तहां ॥
 अवधिज्ञानआवरण उदोत । जियको अवधिज्ञान नहिं होत १०
 मनपरजयआवरण प्रमान । नहिं उपजै मनपर्जय ज्ञान ॥
 केवलज्ञानावरणी कूप । तामहिं गर्भित केवलरूप ॥ ११ ॥
 वरणी ज्ञानावरणकी, प्रकृति पंचपरकार ।

अब दर्शन आवरण तरु, कहहुं तासु नव डार ॥ १२ ॥
 चक्षुदर्शनावरणी बंध । जो जिय करै होहि सो अंध ।
 अचक्षुदर्शनावरण बंधेव । शब्द फरस रस गंध न बेवा ॥ १३ ॥
 अवधिदर्शनावरण उदोत । विमल अवधिदर्शन नहिं होत ॥
 केवलदर्शआवरण जहां । केवलदर्शन होय न तहां ॥ १४ ॥
 त्यानगृद्धि निद्राबश परै । सो प्राणी विशेष बलधरै ॥
 उठि उठि चलै कहै कछु बात । करै प्रचंड कर्मउतपात ॥ १५ ॥

निद्रानिद्रा उदय स्वकीव । पलक उघाट सकै नहिं जीव ॥
 प्रचलाप्रचला जावतकाल । चंचल अंग यहै मुख लाल १६
 निद्रा उदय जीव दुख भैर । उठ चलै बैठै गिरि पैर ॥
 रहै आंख प्रचलासों घुली । आधी मुद्रित आधी खुली १७
 सोवतमाहिं सुरति कछु रहै । बारवार लघु निद्रा गहै ॥
 इति दर्शनावरणि नवधार । कहों वेदनी द्वयपरकार ॥ १८ ॥

दोहा ।

साता करम उदोतसों, जीव विषयमुख वेद ।
 करम असाताके उदय, जिय वेदै दुख खेद ॥ १९ ॥

चौपाई ।

अव मोहिनी दुविधिगुरुभनै । इक दरशन इक चारित हनै ॥
 दर्शनमोह तीन विधि दीस । चारितमोह विधान पचीस २०
 प्रथम मिथ्यातमोहकी दौर । जिय सरदहै औरकी और ॥
 दूजी मिश्रमोहकी चाल । सत्य असत्य गहै समकाल ॥ २१ ॥
 समकितमोह तीसरी दशा । करै मलिन समकितकी रसा ॥
 अव कषाय सोलहविधि कहों । नोकषाय नवविधि सरदहों २२
 प्रथमकषाय कहावै कोप । जाके उदय छिमागुण लोप ।
 द्वितियकषाय मान परचंड । विनय विनाश करै शतसंठ ॥ २३ ॥
 तीजी मायारूप कषाय । जाके उदय सरलता जाय ॥
 लोभकषाय चतुर्थमभेद । जासु उदय संतोष उल्लेद ॥ २४ ॥

दोहा ।

ये ही चारकषाय मल, अनुक्रम सूक्ष्म थूल ।

चारों कीजे चौगुने, चन्द्रकला समतूल ॥ २५ ॥

अनन्तानुबंधीय कषाय । जाके उदय न समकित थाय ॥

अप्रत्याख्यानिया उदोत । पंचमगुणथानक नहिं होता ॥ २६ ॥

प्रत्याख्यान कहावै सोय । जहां सर्वसंयम नहिं होय ॥

सो संज्वलन नाम गुरु भनै । यथाख्यातचारित जो हनै २७

क्रोध मान माया अरु लोभ । चारों चारचारविधि शोभ ॥

ए कषाय सोलह दुखधाम । अब नव नोकपायके नाम ॥ २८ ॥

रागद्वेषकी हांसी जोय । हास्यकषाय कहावै सोय ॥

सुखमें मगन होय जिय जहां । रतिकषाय रस वरसै तहां २९

जहां जीवको कछु न सुहाय । तहां मानिये अरति कषाय ॥

थरहर कंपै आतमराम । जामहिं सो कषाय भय नाम ॥ ३० ॥

रुदन विलाप वियोग दुख, जहां होय सो सोग ।

जहां ग्लानि मन ऊपजै, सो दुर्गच्छा रोग ॥ ३१ ॥

नगर दाह सम परगट दीस । गुप्त पैजावा अग्नि सरीस ॥

महा कलुषता धरें सदीव । वेद नपुंसकधारी जीव ॥ ३२ ॥

अब वरनों तियवेदकी, रचना सुनि गुरु भाष ।

कारीसाकीसी अगनि, गर्भित छल अमिलाष ॥ ३३ ॥

ज्यों करीसाकी अगनि, धुआँ न परगट होय ।
 मुलग मुलग अन्तर दहै, रहै निरन्तर सोय ॥ ३४ ॥
 त्यों वनितावेदी पुरुष, बोले मीठे बोल ।
 बाहिर सब जग बश करै, भीतर कपटकलोल ॥ ३५ ॥
 कपट लटपसों आपको, करै कुगतिके बंध ।
 पाप पंथ उपदेश दे, करै औरको अंध ॥ ३६ ॥
 आपा हत औरन हत, वनितावेदी सोय ।
 अब लक्षण ताके कहो, पुरुष वेद जो होय ॥ ३७ ॥
 ज्यों तृण पूलाकी अगनि, दीखै शिखा उतंग ।
 अल्परूप आलाप घर, अल्पकालमें मंग ॥ ३८ ॥

तैसें पुरुषवेद घर जीव । धर्म कर्ममें रहै सदीव ॥
 महामगन तप संजम माहिं । तन ताँवै तनको दुख नाहिं ॥ ३९ ॥
 चित उदार उद्धत परिणाम । पुरुषवेद घर आतमराम ॥
 तीन निश्चात पचीस कपाय । अष्टाईस प्रकृति समुदाय ॥ ४० ॥
 अब सुन आयु चार परकार । नर पशु देव नरक धिति धार ॥
 मानुष आयु उदय नर भोग । लह तिरजंच आयु पशु जोग ॥ ४१ ॥
 देव आयु सुरवर विख्यात । नरक आयुसों नरक निपात ॥
 वर्नी आयु कर्मकी वान । नामकर्म अब कहैं वखान ॥ ४२ ॥
 पिंड प्रकृति चौदह परकार । अष्टाईस अपिंड विस्तार ॥
 पिंडमेद पेंसठ परगन । मिलि तिराणवै हाँहि नमन ॥ ४३ ॥

ते तिराणवै कहं वखान । पिंड अपिंड वियालिस जान ॥

प्रथमपिंड प्रकृती गतिनाम । सुर नर पशु नारक दुखधाम ॥ ४४
सोरठा ।

सुरगतिसों सुर गेह, नरक्षरीर नरगति उदय ।

पशुगतिसों पशुदेह, नरकवसावै नरक गति ॥ ४५ ॥

चीपाई ।

चहुंगति आनुपूरवी चार । द्वितिय पिंड प्रकृती अवधार ॥

मरण समय तज देह स्वीय । परभव गमन करै जब जीव ॥ ४६ ॥

आनुपूरवी प्रकृति पिरैरि । भावीगतिमें आनै धेरि ॥

आनपूरवी होय सहाय । गहै जीव नूतन परजाय ॥ ४७ ॥

तृतीय प्रकृति इन्द्रिय अधिकार । इग दुग तिग चदु पंच विचार ॥

फरसरसन नासा दृग कान । जथाजोग जिय नाम वखाना ॥ ४८ ॥

तन इन्द्रिय धारै जो कोय । मुख नासा दृग कान न होय ॥

सो एकेन्द्रिय थावर काय । भूजल अगनि वनस्पति वाय ॥ ४९ ॥

जाके तन रसना द्वय थोक । संख गिडोला जलचर ओक ॥

इत्यादिक जो जंगम जन्त । ते द्वै इंद्री कहै सिद्धन्त ॥ ५० ॥

जाके तन मुख नाक हजूर । धुन पिपीलिका कानखजूर ॥

इत्यादिक तेइन्द्रिय जीव । आंख कानसों रहत सदीव ॥ ५१ ॥

जाके तन रसना नाशा आंखि । विच्छु सलम टीड अलि माखि ॥

इत्यादिक जे आतमराम । ते जगमें चौइंद्री नाम ॥ ५२ ॥

देह रसन नासा दृग कान । जिनके ते पंचेद्री जान ॥

नर नारकी देव तिरजंच । इन चारहुके इंद्री पंच ॥ ५३ ॥

चौथी प्रकृति शरीर विचार । औदारिक वैक्रियक अहार ॥
 तैजस कार्माण मिल पंच । औदारिक मानुष तिरजंच ॥ ५४ ॥
 वैक्रिय देव नारकी धरै । मुनि तपवल आहारक करै ॥
 तैजस कार्माण तन दोय । इनको सदा धरै सवकोय ॥ ५५ ॥
 जैसी उदय तथा तिन गही । चौथी पिंड प्रकृति यह कही ॥
 अब बंधन संघातन दोय । प्रकृति पंचमी छठवीं सोय ॥ ५६ ॥
 बंधन उदय काय बंधान । संघातनसों दिढ संघान ॥
 दुहुँकी दश शाखा द्वय खंध । जथाजोग काया संबंध ॥ ५७ ॥
 अब सातमी प्रकृति परसंग । कहौ तीन तन अंग उपंग ॥
 औदारिक वैक्रियक अहार । अंग उपंग तीन तनधार ॥ ५८ ॥

दोहा ।

सिर नितंब उर पीठ करि, जुगल जुगल पद टेक ।
 आठ अंग ये तनविषै, और उपंग अनेक ॥ ५९ ॥
 तैजस कार्माण तन दोय । इनके अंग उपंग न होय ॥
 कहहुं आठमी प्रकृति विचार । षट् संस्थान रूप आकार ६०
 जो सर्वग चारु परधान । सो है समचतुरस्र संठान ॥
 ऊपर थूल अधोगत छाम । सो निगोधपरिमंडल नाम ॥ ६१ ॥
 हेट थूल ऊपर कृश होय । सातिक नाम कहावैं सोय ॥
 कूबर सहित वक्र वपु जासु । कुवज अकार नाम है नासु ॥ ६२ ॥
 लघुलुपी लघु अंग विधान । सो कहिये वामन संठान ॥
 जो सर्वग अगुंदर मुंड । सो संठान कहावैं हुंड ॥ ६३ ॥

कही आठमीप्रकृति छभेद । अब नौमी संहनन निवेद ॥
 है संहनन हाड़को नाम । सो पट्टविधि थभै तन धाम ॥ ६४ ॥
 वज्र कील कीलित संधान । ऊपरि वज्रपट्ट बंधान ॥
 अंतर हाड वज्रमय वाच । सो है वज्रवृषभनाराच ॥ ६५ ॥
 जहँ सव हाड़ वज्रमय जोय । वज्रमेग्न सो अविचल होय ॥
 ऊपर वेढरूप सामान । नाम वज्रनाराच वखान ॥ ६६ ॥
 वज्र समान होहिँ जहँ हाड । ऊपर वज्ररहित पट आड ॥
 वज्ररहित कीलीसों विद्ध । सो नाराच नाम परसिद्ध ॥ ६७ ॥
 जाके हाड़ वज्रमय नाहिँ । अर्द्धवेध कीली नसमाहिँ ॥
 ऊपर वेठवँधन नहिँ होय । अर्द्धनराच कहावै सोय ॥ ६८ ॥
 जहां न होय वज्रमय हाड । नहिँ पटबंधन कीली गाड ॥
 कीली विन दिढ बंधन होय । नाम कीलिका कहिये सोय ६९ ॥
 जहां हाड़सों हाड़ न वंधै । अमिल परस्पर संधि न संधै ॥
 ऊपर नसाजाल अरु चाम । सो सेवट संहनन नाम ॥ ७० ॥
 ये संहनन छविधि वरणई । नवमी प्रकृति समापति भई ॥
 दशमी प्रकृति गमन आकाश । ताके दोय भेद परकाश ७१
 दोहा ।

शुभविहाय गतिके उदय, भली चाल जिय धार ।

अशुभविहाय उदोतसों, ठानै अशुभ विहार ॥ ७२ ॥

पदरिछन्द ।

अब कहूँ ग्यारमी प्रकृतिसंच । जो वरणभेद परकार पंच ॥

सित अरुण पीत दुति हरित श्याम । ये वर्ण प्रकृतिके पंच नाम ७३

जो वर्ण प्रकृति जाके उदोत । ताको अरीर तिह वर्ण होत ॥
 रस नाम प्रकृति चारमी जान । सो पंचभेद विवरण वस्तान ७४
 कटु मधुर तिक्त आमल कषाय । रसउदय रसीली होय काय ।
 जाको जो रस प्रकृती उदोत । ताके तन तसो स्वाद होत ७५
 तेरही प्रकृति गंधमयी होय । दुर्गंध मुगन्ध प्रकार दोय ॥
 जो जीव जो प्रकृति करै बंध । तिह उदय तासु तन सोइ गंध ७६
 अब फरस नाम चौदवीं वानि । तिस कहीं आठ शाखा वस्तानि ॥
 चीकनी रुक्ष कोमल कठोर । लघु भारी शीतल तप्त जोर ॥ ७७ ॥

दोहा ।

प्रकृति चीकनीके उदय, गहै चीकनी देह ।
 रुखी प्रकृति उदोतसों, रुखीकाया गेह ॥ ७८ ॥
 कठिन उदयसों कठिन तन, मृदु उदोत मृदु अंग ।
 तपतउदयसों तपततन, शीतउदय शीतंग ॥ ७९ ॥

पद्वरि छंद ।

जहँ भारी नाम परकृति उदोत । तहँ भारी तनधर जीव होत ॥
 लघुप्रकृति उदयधर जीव जोय । अति हल्दी काया धरँ सोय ८०
 ए पिंडप्रकृति दशचार भास्ति । इनहींकी पैसठ कहीं सास्ति ॥
 अब अष्टावीस अपिण्ड ठानि । तिनके गुणरूप कहीं वस्तानि ८१
 जब प्रकृति अगुरुलघु उदयदेय । तब जीव अगुरुलघु तन धरेय
 उपघात उदय सो अंग व्याप । जासों दुख पावै जीव आप ॥ ८२ ॥

परघात उदयसों होय अंग । जो करै औरको प्राण भंग ॥

उत्सासप्रकृति जब उदय देय । तब प्राणी सास उसास लेय ८३

आतप उदोत तन जथा भान । उद्योत उदय तन शशि समान

त्रस प्रकृति उदय धर जीव जोय । जंगम शरीरधर चलै सोय ८४

थावर उदोतधर प्राणधार । लहि थिर शरीर न करै विहार ॥

सूक्ष्म उदोत लघु देह जास । सो मारै मरै न और पास ८५

बादर उदोत तन थूल होय । सबहीके मारे मरै सोय ॥

परजापति प्रकृति उदय करंत । जिय पूरी परजापति धरंत ८६

जो प्रकृति अपर्जापत धरेय । सो पूरी परजापत न लेय ॥

प्रत्येक प्रकृति जाके उदोत । सो जीव वनस्पति काय होत ॥ ८७ ॥

जब तुचा काठ फल फूल पात । जहँ बीज सहित जियराशिसात ॥

जो एक देहमें जीव एक । सो जीवराशिकहिये प्रत्येक ॥ ८८ ॥

प्रत्येक वनस्पति द्विविधिजान । सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित वखान ॥

जो धारै राशि अनन्तकाय । सो सुप्रतिष्ठित कहिये सुभाय ॥ ८९ ॥

जामें नहि होय निगोदघाम । सो अप्रतिष्ठित प्रत्येकनाम ॥

अव साधारणवनस्पति काय । सो सूच्छम वादर द्विविधि थाय ९०

सूच्छम निगोद जगमें अमेय । वादर यह दूजा नामधेय ॥

धरि भिन्न भिन्न कार्माण काय । मिलि जीव अनन्त इकत्र आय ९१

संग्रहहि एक नो कर्म देह । तिस कारण नाम निगोद एह ॥

सो षिण्ड निगोद अनन्तरास । जियरूप अनंतानंत भास ॥ ९२ ॥

भर रहे लोकनभमें सदीव । ज्यों घड़ामाहिं भर रहें घीव ॥
 सूक्ष्म अरु बादर दोय साख । पुनि नित्य अनित्य दुभेद भाख ९३
 जो गोलकरूपी पंचधाम । अंडर खंडर इत्यादि नाम ॥
 ते सातनरकके हेट जान । पुनि सकललोकनभमें वखान ॥९४॥
 दोहा ।

एक निगोद शरीरमें, जीव अनंत अपार ।
 धरें जन्म सब एकठे, मरहिं एक ही वार ॥ ९५ ॥
 मरण अठारह वार कर, जनम अठारह बेव ।
 एक स्वास उस्वासमें, यह निगोदकी टेव ॥ ९६ ॥
 एक निगोदशरीरमें, एते जीव वखान ।
 तीन कालके सिद्ध सब, एक अंश परिमान ॥ ९७ ॥
 वदैं न सिद्ध अनंतता, घटैं न राशि निगोद ।
 जैसेके तैसे रहें, यह जिनवचनविनोद ॥ ९८ ॥
 ताते वात निगोदकी, कह कहलौ कोय ।
 साधारण प्रकृतीउदय, जिय निगोदिया होय ॥ ९९ ॥
 यह साधारण प्रकृतिलों, वरणी चौदह साख ।
 बाकी चौदह जे रहें, ते वरणों मुख भाख ॥ १०० ॥

पदरिचन्द्र ।

थिरप्रकृति उदयथिरता अभंग । अस्तिर उदोतसों अधिर अंग ॥
 शुभप्रकृतिउदय शुभरीति सर्व । जहँ अशुभउदय तहँ अशुभपर्व ॥
 सौभागप्रकृति जाके उदोत । सो प्राणी सबको इष्ट होत ।
 दुर्भागप्रकृतिके उदय जीव । सबको अनिष्ट लागे सदीव ॥२॥

जहँ सुस्वरप्रकृति उदय वखान । तहँ कंठ कोकिला मधुरवान ॥
 जो दुस्वरप्रकृति उदोत धार । ताकी ध्वनि ज्यों गर्दभपुकार ॥३॥
 आदेयप्रकृति जाके उदोत । ताको बहु आदर मान होत ॥
 जब अनादेयको उदय होय । तब आदर मान करै न कोय ॥४॥
 असनामउदय जिस जीव पाहिं । ताकी अस कीरति जगतमाहिं ॥
 अहँ प्रगट भालमाहँ अजसरेख । तहँ अपजस अपकीरति विशेष ५
 निर्माणचितेरा उदय आय । सब अंगउपंग रचै बनाय ॥
 तीर्थकरनामप्रकृति उदोत । लहि जीव तीर्थकरदेव होत ॥ ६ ॥

दोहा ।

ये तिरानवे और दश, तनसंवन्धी आन ।

मिलहिं एकसोतीन सब, होहिं नामकी वान ॥ ७ ॥

चौपाई ।

नामप्रकृति संपूरण भई । पिंड अपिंड कही जो जुई ॥

पिण्डप्रकृति चौदह वनि रही । तिनकी पैसठ शाखा कही ॥८॥

अष्टादस अपिंड वरनई । ते सब मिलि तिरानवे भई ॥

वरनों गोतकरम सातमा । जासों ऊंच नीच आतमा ॥ ९ ॥

ऊंचगोत उद्योत प्रवान । होवै जीव उच्चकुलथान ॥

नीचगोत फलसंगति पाय । जीव नीचकुल उपजै आय ॥१०॥

गोत्रकर्मकी द्वयप्रकृति, तेहू कहीं बखानि ।

अंतराय अब पंचविधि, तिनकी कहों कहानि ॥ ११ ॥

अन्तराय अष्टम बटमार । सो है भद्र पंच परकार ॥

अन्तराय तरुकी है डार । निहचै एक एक विवहार ॥ १२ ॥

कहाँ प्रथम निहचैकी यात । जानु उदय आत्मगुण धान ॥

परगुन त्याग होहि नहिं जहां । दान अन्तराय कहि तहां ॥ १३ ॥

आत्मतत्त्वलाभकी हान । लाभअन्तराई सो जान ॥

जबलों आत्मभोग न होय । भोगअन्तराई है सोय ॥ १४ ॥

बारवार न जगै उपभोग । सो है अन्तराय उपभोग ॥

अष्टकर्मको करै न जुदा । वीरज अन्तरायका उदा ॥ १५ ॥

निहचै कही पंच परकार । अब सुन अन्तराय विवहार ॥

छतीवस्तु कछु देय न सकै । दान अन्तराई बल दकै ॥ १६ ॥

उद्यम करै न संपत्ति होय । लाभ अन्तराई है सोय ॥

विषयभोग सामग्री छती । जाँव न भोग कर सकै रती ॥ १७ ॥

रोग होय कै भोग न जुँरै । भोगअन्तरायबल फुरै ॥

एक भोगसामग्री सार । ताकौ भोग जु बारंवार ॥ १८ ॥

क्रीले सो कहिये उपभोग । ताहू को न जुँरै संजोग ॥

यह उपभोगघातकी कथा । वीरजअन्तराय सुन जथा ॥ १९ ॥

शक्ति अनंत जीवकी कही । सो जगदज्ञानाहिं दब रही ॥

जगमें शक्ति कर्मआधीन । कबहुं सबल कबहुं बलहीन ॥ २० ॥

तनइन्द्रियबल फुरै न जहां । वीरजअन्तराय है तहां ॥

ताते जगतदशा परवान । नय राखी भारी भगवान ॥ २१ ॥

दोहा ।

ये वरणी व्यवहार की, अन्तराय विधि पंच ॥

अन्तर बहिर विचारतै, संशय रहै न रंच ॥ २२ ॥

स्यादवाद जिनके वचन, जो मानै परमान ।

सो जानै सब नयदशा, और न कोऊ जान ॥ २३ ॥

सर्वघातियाकी प्रकृति, देशघातियावान ॥

बाकी और अघातिया, ते सब कहों बखान ॥ २४ ॥

केवलज्ञानावरणी वान । केवलदरशआवरण जान ॥

निद्रा पंच चौकरी तीन । प्रकृती द्वादश लीजे चीन ॥ २५ ॥

अनंतबंध अप्रत्याख्यान । प्रत्याखान चौक त्रिक जान ॥

सब मिथ्या मिश्रित मिथ्यात । ए इकवीस प्रकृति सब घात २६

दोहा ।

सर्वघातियाकी कही । विंशति एक बखान ।

अब वरणों छवीसविधि । देशघातिया वान ॥ २७ ॥

चौपाई ।

केवलज्ञानावरणी विना । बाकी चार आवरण गिना ॥

केवलदरशआवरण छोड़ । बाकी तीनों लीजे जोड़ ॥ २८ ॥

चारभेद संज्वलनकषाय । नवविधि नोकषाय समुदाय ॥

समयप्रकृति मिथ्यात बखान । अन्तरायकी पांचों वान ॥ २९ ॥

ए छवीस प्रकृति सब भई । देशघातियाकी वरनई ॥

बाकी रही एकसौ एक । ते सब कही घाति अतिरेक ॥ ३० ॥

दोहा ।

द्विविधगोत्र द्वय वेदनी । आयु चारविधिजानि ॥

मिल तिरानये नाम की एकोचरगत वानि ॥ ३१ ॥

चौपाई ।

जे घातहिं सव आतमदर्ब । ते ही कही घातिया सर्व ॥

जे कछु घात करहिं कछु नाहिं । देशघातिया ते इन माहिं ॥ ३२ ॥

जे न करहिं आतमवल घात । ते अघातिया कहीं विन्यात ॥

अब गुन पुण्यपापके भेद । भिन्न भिन्न सब कहों निवेद ॥ ३३ ॥

इक सातवेदनी स्वभाव । नरकआयु विन तीनों आव ॥

ऊंचगोत्र मानुषगति भली । मानुषआनुपूरवी रली ॥ ३४ ॥

सुरगति सुरानुपूरवि जान । जात पंचैन्द्री एक बखान ॥

पंच शरीर पंच संघात । बंधनसहित पंचसंगात ॥ ३५ ॥

अंग उपंग तीनविधि भास । विद्याति वर्ण गंध रस फास ॥

पहिला समचतुरस्र सँठान । वज्रवृषभनाराच बखान ॥ ३६ ॥

भली चाल आतप उद्योत । पर परघात अगुरुलघु होत ॥

सास उसास प्रतेक प्रवान । तस बादर पर्याप्त जान ॥ ३७ ॥

धिर शुभ शुभग सुखर आदेय । जसनिर्माण तीर्थकर धेय ॥

पुण्यप्रकृतिकी अडसठ वान । पापप्रकृति अब कहों बखान ॥ ३८ ॥

सर्वघातियाकी इकवीस । देशघातियाकी छब्बीस ॥

ये सैतालिस प्रकृती कहीं । बाकी और कहें जो रहीं ॥ ३९ ॥

प्रकृति असाता नीचकुल, नरकआयु गति दोय ।

पशु नारकि इन दुहुनकी, आनुपूर्वी जोय ॥ ४० ॥

चार जाति पंचेन्द्री विना । पंचसंहनन प्रथम न गिना ॥

समचतुरसविन पंचअकार । वर्णादिक विंशति परकार ॥ ४१ ॥

बुरी चाल थावर उपघात । सूक्ष्म साधारण विख्यात ॥

अनादेय अपर्यापत दशा । दुर्भग दुस्वर अशुभ अपजशा ४२

अथिरसमेत एकसो वान । ए सब पापप्रकृति परवान ॥

केती बंध उदय केतीक । तिनकी बात कहों अब ठीका ॥ ४३ ॥

दोहा ।

चारबंध वरणादिमें, बाकी सोलह नाहिं ।

एक बंधमिथ्यातमें, द्वै गर्भित इसमाहिं ॥ ४४ ॥

तनबंधन संघातकी, प्रकृति पंचदश जान ।

पंच बंध दश बंध विन, ये अट्ठाइस वान ॥ ४५ ॥

अट्ठाइसको बंध नाहिं, बंध एकसोबीस ॥

इनमें दोय बढ़ाइये, होहिं उदयवाबीस ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

बंध उदय विशेष यह बात । एक मिथ्यात तीन मिथ्यात ॥

एई दोय अधिक परनई । प्रकृति एकसोंबाविस भई ॥ ४७ ॥

अब विपाक वरनों विधि चार । पुद्गल जीव क्षेत्र भव धार ॥

जे पुद्गलविपाककी वान । ते बासठविधि कहों बखान ॥ ४८ ॥

पंच शरीर बंधसंघात । अंग उपंग अठारह वात ॥
छह संहनन छहों संठान । वर्णादिक गुन बीन बलान ॥४९॥
धिर उदोत आतप निरमान । अधिर अगुरुलमु अशुभ विशान ॥
साधारण प्रतेक उपघात । शुभ परघात सुवासठ वात ॥ ५० ॥
जीव विपाक अठत्तर गनी । द्विविधि गोत्र द्वयविधि वेदनी ॥
सर्वघात अरु देशविघात । संतालीस प्रकृति विख्यात ॥५१॥
तीर्थकर वादर उन्वास । सूक्ष्म परजापत परकास ॥
अपरजापति सुस्वर गेय । दुस्वर अनादेय आदेय ॥ ५२ ॥
जस अपजस त्रस थावर वान । दुर्भग शुभग चाल द्वयजान ॥
इन्द्री जाति पंचविधि गही । गति चारों एती सब कही ॥५३॥

बोहा ।

जीवविपाकीकी कही, प्रकृति अठत्तर ठौर ॥
क्षेत्रविपाकी अत्र कहों, भवविपाकिनी और ॥ ५४ ॥
आनुपूर्वी चार विधि, क्षेत्रविपाकी जान ।
चार आयुबलकी प्रकृति, भवविपाकिया वान ॥ ५५ ॥
घाति अघाती त्रिविधि कहे, पुण्य पाप द्वय चार ।
बंध उदय दोल कहे, वरनें चार विपाक ॥ ५६ ॥
अत्र इन आठों करमकी, धिति जयन्य उत्तकृष्ट ।
कहों वात संक्षेपसों, सुनों कान दे इष्ट ॥ ५७ ॥

चापाई ।

जानावरणीकी धिति दीस । कोडाकोडीसागरतीस ॥
यह उत्कृष्टदशा परवान । एकसुहृत् जयन्य बलान ॥ ५८ ॥

द्वितीय दर्शनावरणीकर्म । थिति उत्कृष्ट कहों मुन मर्म ॥

कोडाकोडी तीस समुद्र । एकमुहूरतकी थिति बुद्र ॥ ५९ ॥

तीजा कर्म वेदनी जान । कोडाकोडीतीस वखान ॥

यह उत्कृष्ट महाथिति जोय । जघन मुहूरतवाह होय ॥ ६० ॥

चौथा महामोह परधान । थिति उत्कृष्ट कही भगवान ॥

सागरसत्तरकोडाकोडि । लघुथिति एकमुहूरत जोडि ॥ ६१ ॥

पंचम आयु कही जगदीस । उत्कृष्टी सागर तेतीस ॥

थिति जघन्य मुमुहूरतएक । यों गुरु कही विचार विवेक ॥ ६२ ॥

छटा नामकर्मथिति कहों । कोडाकोडि बीस सरदहों ॥

सागर यह उत्कृष्टविधान । आठमुहूर्त जघन्य वखान ॥ ६३ ॥

गोत्रकर्म सातवां सरीस । उत्कृष्टी थिति सागरबीस ॥

कोडाकोडिकाल परमान । लघुथिति आठ मुहूरतमान ॥ ६४ ॥

अष्टम अंतराय दुखदानि । उत्कृष्टी थिति कहों वखानि ॥

सागरकोडाकोडी तीस । लघुथिति एकमुहूरत दीस ॥ ६५ ॥

वरनी आठों कर्मकी, । थिति उत्कृष्ट जघन्य ॥

बाकी मध्यम और थिति, । ते असंख्यधा अन्य ॥ ६६ ॥

अब वरनों पल्योपमकाल । तथा सागरोपमकी चाल ॥

कूपभरे जे रोम अपार । ते वरनें नाना परकार ॥ ६७ ॥

पल्योपमके भेद अनेक । ताते यहां न वरना एक ॥

जोगन कूप रोमकी वात । कही जैनमतमें विख्यात ॥ ६८ ॥

कूपकथा जैसी कह्युं कही । सो पत्योपम कहिये नही ॥
पत्योपम दश कोड़ाकोड़ि । सब एकत्र कीजिये जोड़ि ॥६९॥

एक सागरोपम सो काल । यह प्रमान जिनमतकी चाल ॥
यहै सागरोपमकी कथा । यथा मुनी में वरणी तथा ॥ ७० ॥

आठकर्म अठतालसों, प्रकृतिभेद विलार ।

कै जानें जिन केवली, कै जानें गनवार ॥ ७१ ॥

अल्पबुद्धि जैसी मुझ पाहिं । तैसी में वरनी इसमाहिं ॥
पंडित मुनी हँसो मत कोय । अत्यमती भाषाकवि होय ॥७२॥

कर्मकांड आगम अगम, यथाशक्ति मन आन ।

भाषा में रचना कही, बालबोधमें जान ॥ ७३ ॥

कलसा-गीताछन्द.

यह कर्मप्रकृतिविधान अविचल, नाम ग्रन्थ मुद्रावना ।
इसमाहिं गर्भित सुपुतचेतन, गुप्त बारह भावना ॥
जो जान भेद बखान सरदहिं, शब्द अर्थ विचारसी ।
सो होय कर्मविनाश निर्मल, शिवस्वरूप वनारसी ॥ ७४ ॥

श्लोक ।

संवत् सत्रहसौ समय, फाल्गुणमान वसन्त ।
ऋतु शशिवार सप्तमी, तब यह नयो सिद्धंत ॥ ७५ ॥

श्रुति श्रीकर्मप्रकृतिविधान.

अथ कल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषानुवाद.

दोहा

परमज्योति परमात्मा, परमज्ञान परवीन ।

बंदों परमानंदमय, घट घट अंतरलीन ॥ १ ॥

चौपाई । (१५ मात्रा.)

निर्भयकरन परम परधान । भवसमुद्र जलतारण जान ॥

शिवमन्दिर अधहरण अनिन्द । वन्दहुं पासचरणअरविन्द ॥२॥

कमठमानभंजन वरवीर । गरिमासागर गुणगंभीर ॥

सुरगुरु पार लहें नाहिं जासु । भैं अजान जंपों जस तासु ॥३॥

प्रभुस्वरूप अति अगम अथाह । क्यों हमसे इह होय निवाह ॥

ज्यों दिनअंध उल्लको पोतै । कहि न सकै रविकिरनउदोत ४

मोहहीन जानै मनमाहि । तोड न तुमगुण वरणें जाहिं ॥

प्रलयपयोधि कुरै जल वौनै । प्रगटहिं रतन गिनै तिहि कौन ५

तुम असंख्य निर्मलगुणखानि । भैं मतिहीन कहों निजवानि ॥

ज्यों बालक निज बांह पसार । सागरपरिमित कहै विचार ६

जो जोगीन्द्र करहिं तप खेद । तउ न जानहिं तुमगुणभेद ॥

भगतिभाव मुझ मन अभिलास । ज्यों पंखी बोलहिं निज भाख ७

तुम जसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन आधार ॥

आवै पवन पद्मसर होयै । ग्रीष्मतपत निवारै सोय ॥ ८ ॥

तुम आवत भविजन मनमाहिं । कर्मनिदंथ शिथिल हो जाहिं॥

ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजङ्ग लगे चहुंओर॥१५॥

तुम निरखतजन दीनदयाल । संकटतें छूटहिं ततकाल ॥

ज्यों पशुघेर लेहिं निशिचोर । ते तज भागहिं देखत भोर१०

तू भविजन तारक किम होह । ते चित धार तिरहिं लै तोह॥

यह ऐसैं करि जान स्वभाउ । तिरै मसक ज्यों गर्भितबाउ ११

जिन सब देव किये वश्र वाम । तैं छिननैं जीत्यो सो काम ॥

ज्यों जल करै अग्निकुलहानि । बड़वानल पीवै मो पानि॥१२॥

तुम अनन्त गरुवा गुण लिये । क्योंकरभक्ति धरुं निजहिये॥

हैं लघुरूप तिरहि संसार । यह प्रभुमहिमा अकथ अपार १३

क्रोध निवार कियो मनशांति । कर्म सुभटजीते किहिं मांति ॥

यह पटतर देखहु संसार । नीलवृक्ष ज्यों दहै तुसार ॥१४॥

मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूप समध्यावहिं तोहि॥

कमलकर्णिका विन नहिं और । कमलबीज उपजनकी टार१५

जब तुह ध्यानधरै मुनि कोय । तत्र विदेह परमात्म होय ॥

जैसैं धातु शिलातन त्याग । कनकस्वरूप धैं जब आग १६

जाके मन तुम करहु निवास । विनस जाय क्यों विग्रह तास ॥

ज्यों महन्त विच आवै कोय । विग्रह मूल निवारै सोय॥१७॥

करहिं विवुष जे आत्म ध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥

जैसैं नीर सुधा अनुमान । पीवत विष विकारफी हान ॥१८॥

तुम भगवंत विमल गुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥
ज्यों नीलिया रोग दृग गहै । वर्ण विवर्ण संखसों कहै ॥ १९ ॥

दोहा ।

निकट रहत उपदेश सुनि, तरुवर भये अशोक ।
ज्यों रवि ऊगत जीव सव, प्रगट होत भुविलोक ॥ २० ॥
सुमनवृष्टि जो सुरकरहि, हेठ वीटमुख सोहि ।
त्यों तुम सेवत सुमनजन, वंध अधोमुख होहि ॥ २१ ॥
उपजी तुम हिय उदधिर्ते, वाणी सुधा समान ।
जिहिं पीवत भविजन लहहि, अजर अमर पदथान ॥ २२ ॥
कहहिं सार तिहुंलोकको, ये सुरचामर दोय ।
भावसहित जो जिन नमें, तसु गति ऊरध होय ॥ २३ ॥
सिंहासन गिरि मेरु सम, प्रमुधुनि गरजित घोर ।
श्याम सुतन घनरूप लख, नाचत भविजन मोर ॥ २४ ॥
छवि हत होंहि अशोकदल, तुमभामंडल देख ।
वीतरागके निकट रह, रहत न राग विशेष ॥ २५ ॥
शीखि कहै तिहुंलोकको, यह सुरदुंदुभि नाद ।
शिवपथ सारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २६ ॥
तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छविदेत ।
त्रिविधिरूप धर मनहुं शशि, सेवत नखतसमेत ॥ २७ ॥

पदरिछन्द ।

प्रभु तुम शरीर दुति रतन जेम । परताप पुंज जिम शुद्ध हेमा ॥
अति धवलसुजस रूपा समान । तिनके गढ़ तीन विराजमान ॥ २८ ॥

सेवहिं सुरेन्द्र कर नमित माल । तिन श्रीसुकुट तजदेहिं माल ॥
 सुव चरण लगत लहलहं प्रीतिनिहिं रमहि और जन मुमनरीति २९
 प्रसुभोग विमुख तन कर्म दाह । जन पार करत भवजल निवाह ॥
 ज्यों माटीकलश नुपक होय । ले भार अघोमुख तिरहि तोय ३०
 तुम महाराज निर्द्वन निराश । तज विभव विभव सब जगविक्रश
 अक्षर स्वभावसैलिलै न कोय । महिमा अनन्त भगवंत सोय ३१
 कोप्यो सु कमठ निज वैर देख । तिन करी धूल वर्षा विधेख ॥
 प्रसु तुम छाया नहिं मई हीन । सो भयो पापि लंपट मलीन ३२
 गरजंत घोर घन अंधकार । चमकंत विज्जु जलमुसलधार ॥
 चरपंत कमठ धरध्यान रुद्र । दुस्तर करंत निजभवसमुद्र ३३

चस्तु छन्द ।

मेघमाली मेघमाली आप बल फोरि ।

भेजे सुरत पिशाचगण, नाथ पास उपसर्ग कारण ।

अग्नि जाल झलकंत मुख, धुनि करंत जिमि मत्तवारण ॥

कालरूप विकराल तन, मुंडमाल तिह कंठ ।

है निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदृढगंठ ॥ ३४ ॥

चौपाई ।

जे तुम चरणकमल तिहुंकाल । सेवहिं तज मायाजंजाल ॥

भाव भगतिमन हरष अपार । धन्य २ जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥

भवसागरमहं फिरत अजान । मैं तुह मुजअ नुन्यो नहिं कान ॥

जो प्रमुनाम मंत्र मन धरै । तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥

मनवांछित फल जिनपदमाहिं । मैं पूरव भव पूजे नाहिं ॥
 माया भगन फिरयो अज्ञान । करहिं रंकजन मुझ अपमान ३७
 मोहतिमर छायो दृग मोहि । जन्मान्तर देख्यो नहिं तोहि ॥
 तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं । मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥
 सुन्यो कान जस पूजे पाय । नैनन देख्यो रूप अधाय ॥
 भक्ति हेतु न भयो चित चाव । दुखदायक किरियाविन भाव ३९
 महाराज शरणागत पाल । पतितउधारण दीनदयाल ॥
 सुमिरण करहुं नाथ निज शीस । मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥
 कर्मनिकन्दनमाहिमा सार । अशरणशरण सुजश विसतार ॥
 नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय । तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥ ४१ ॥
 सुरगण वन्दित दया निधान । जगतारण जगपति जगजान ॥
 दुखसागरतें मोहि निकासि । निर्भयथान देहु सुखराशि ॥ ४२ ॥
 मैं तुम चरणकमल गुन गाय । बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥
 जन्मजन्म प्रभु पावहुं तोहि । यह सेवा फल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

दोधकान्त वेसरीछन्द । पदपद.

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजश जे भविजन भापहिं ।
 ते निज पुण्य भंडार, संच चिरपाप प्रणासहिं ॥
 रोमरोम हुलसति अंग, प्रभु गुणमनध्यावहिं ।
 स्वर्गसंपदा भुंज, वेग पंचम गति पावहिं ॥
 यह कल्याणमन्दिर कियो, कुमुदचन्द्रकी बुद्धि ।
 भाषा कहत वनारसी, कारण समकितशुद्धि ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्रं.

अथ साधुवन्दना लिख्यते.

श्लोकाः ।

श्रीजिनभाषित भारती, सुमरि आन मुखपाठ ।

कहों मूल गुण साधुके, परमित विंशतिआठ ॥ १ ॥

पंचमहाव्रत आदरन, समति पंच परकार ।

प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, पट अवशिक आचार ॥ २ ॥

भूमिशयन भंजनतजन, वसनत्याग कचलोच ।

एकवार लघुअसन थिति—असन दंतवन मोच ॥ ३ ॥

चौपाहं ।

थावर जन्तु पंच परकार । चार भेद जंगम तन धार ।

जो सब जीवनको रखपाल । सो मुसाधु बन्दहुं तिरकाल ॥ १ ॥

संतत सत्य वचन मुख कहै । अथवा मौनविरत धर रहै ।

मृषावाद नहिं बोलै रती । सो जिन नारग सांचा जती ॥ ५ ॥

कौड़ी आदि रतन परजंत । घटित अघट धनभेद अनंत ॥

दत्त अदत्त न फरसै जोय । तारण तरण मुनीश्वर सोय ॥ ६ ॥

पशु पंखी नर दानव देव । इत्यादिक रमणी रति सेव ॥

तजहिं निरन्तर मदन विकार । सो मुनि नमहुं जगत हिनकार ॥ ७ ॥

द्विविधि परिग्रह दशविधि जान । संस्र असंस्त्र अनन्त कर्मान ॥

सकल संगतज होय निराश । सो मुनि लई मोक्ष पददाम ॥ ८ ॥

अधोद्वष्टि मारग अनुसरै । प्राशुक भूमि निरख पग धरै ॥

सदय हृदय साधै शिव पंथ । सो तपीश निरभय निर्ग्रन्थ ॥ ९ ॥

निरभिमान निरवद्य अदीन । कोमल मधुर दोष दुख हीन ॥

ऐसे सुवचन कहै स्वभाव । सो ऋषिराज नमहुं धरि भाव १०

उत्तम कुल श्रावक संचार । तासु गेह प्राशुक आहार ॥

मुजै दोष छियालिस टाल । सो मुनि वंदौ सुरति संभाल ॥ ११ ॥

उचितवस्तु निजहित परहेत । तथा धर्म उपकरण अचेत ॥

निरख जतनसों गहै जु कोय । सो मुनि नमहुं जौर कर दोय १२

रोगविकृति पूरव आदान । नवदुवार मल अंग उठान ॥

डारै प्राशुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुं भगति उरधार १३

कोमल कर्कश हरुष सभार । रुक्ष सचिक्कण तपत तुसार ॥

इनको परसन दुख सुखलहै । सो मुनिराज जिनेश्वर कहै ॥ १४ ॥

आमल कटुक कषायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥

इन्हिं स्वाद रति अरति नवेव । सो ऋषिराज नमहि तिहँ देव १५

शुभ सुगंध नाना परकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥

नासा विषय गनहिं समतूल । सो मुनि जिनशासनतरुमूल १६

श्यामहरित सित लोहित पीत । वरण विवरण मनोहर भीत ॥

ए निरखै तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध १७

शब्द कुशब्दहिं समरस साद । श्रवण सुनत नहिं हरष विषाद ॥

युति निंदा दोऊं सम सुणै । सो मुनिराज परम पद मुणै ॥ १८ ॥

सामादक साधे तिहुं काल । मुक्ति पंथकी करै सँमान ॥
 शत्रुमित्रदोऊं सम गण । सो मुनिराज करमरिषु दण ॥ १० ॥
 अर्हत सिद्ध सूरि उचझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
 इनके चरणनमें मन लाय । तिस मुनिवरके बन्दों पाय ॥ २० ॥
 पावन पंचपरम पद हृष्ट । जगतमाहि जाँन उत्कृष्ट ॥
 ठानै गुणश्रुति बारंवार । सो मुनिराज लैह भवपार ॥ २१ ॥
 ज्ञान क्रिया गुणवारै चित्त । दोष विलोक करै प्राप्ति ॥
 नित प्रतिक्रमणक्रियारसलीन । सो मुसाधु संजम परवीन ॥ २२ ॥
 श्रीजिनवचन रचन विसतार । द्वादशांग परमागम तार ॥
 निजमति मान करै सज्जाँड । सो मुनिवर बंदहुं धर माट ॥ २३ ॥
 काउसगमुद्रा धर निच । शुद्धस्वरूप विचारै चित्त ॥
 त्यागै त्रिविधजोग ममकार । सो मुनिराज नमो निरधार ॥ २४ ॥
 प्राशुक शिला उचित मूखेत । अचल अंग समभाव सचेत ॥
 पश्चिमरैन अल्प निद्राल । सो योगीश्वर बँचै फाल ॥ २५ ॥
 धर्मध्यान जुत परम विचित्र । अन्तर बाहिज सहज पवित्र ॥
 न्हान विलेपन तजै त्रिकाल । बन्दों सो मुनि दीनदयाल ॥ २६ ॥
 लोकलाजविगलित भयहीन । विषयवासनारहित बर्दीन ॥
 नगन दिगम्बर मुद्राधार । सो मुनिराज जगत सुतकारा ॥ २७ ॥
 सधन केश गर्भित मलक्रीच । तस असंख्य उतपति तमुर्वाचा ॥
 कच लुंचै यह कारण जान । सो मुनि नमहुं जोरजुगपान ॥ २८ ॥

लुधा वेदनी उपश्रम हेत । रस अनरस समभाव समेत ॥
 एकवार लघु भोजन करै । सो मुनि मुक्ति पंथ पगधरै २९
 देह सहारौ साधन मोष । तबलों उचित कायबल पोष ॥
 यह विचार थिति लेहि अहार । सो मुनि परम धरम धनधार ३०
 जहँ जहँ नवदुवारमलपात । तहँ तहँ अमित जीव उत्पात ॥
 यह लख तजहि दंतवन काज । सो शिवपथसाधक ऋषिराज ३१
 ये अट्ठाविस मूल गुण, जो पालहि निरदोष ।
 सो मुनि कहत बनारसी, पावै अविचल मोष ॥ ३२ ॥

इति साधुवन्दना.

अथ मोक्षपैडी लिख्यते.

द्रोहा ।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खै मुनमल ।
 जो तुझ अंदरचेतना, वहै तुसाड़ी अल ॥ १ ॥
 ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला ।
 अक्खै रोचकशिक्षनो, गुरु दीनदयल्ला ॥
 इस बुझै बुध लहलहै, नहि रहै मयल्ला ।
 इसदा मरम न जानई, सो द्विपद वयल्ला ॥ २ ॥
 जिसदौ गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला ।
 जिसना संसै तिमिरसों, सूझै झलमल्ला ॥

खनै जिन्हादी भूमिनौ, कुजान कुदरा ।
 सहज तिन्हादा वहजसों, चित रह दुदरा ॥ ३ ॥
 जिन्हा इक करमदा, दुविधा पद भरा ।
 इक अनिष्ट असोहणा, इक ज्ञाक प्रमदा ॥
 तिन्हां इक न सृजई, उपदेश अहारा ।
 वंककटाछे लोपना, ज्यों चंद गहारा ॥ ४ ॥
 जिन्हां चित इतवारसों, गुरुवचन न अरा ।
 जिन्हां आगें कथन यो, ज्यों क्रोदों दारा ॥
 बरसे पाहन भुम्भमें, नहि होय चहारा ।
 बोये बीज न ऊप्पजै, जल जाय वहारा ॥ ५ ॥
 चेतन इस संसारमें, तू सदा इकरा ।
 आपै रूप पिशाच, है तैं अप्पा छारा ॥
 आपै घुम्यां गिरि पया, किणिदिचा टारा ।
 जिन्हसों मिलन बिजोग है, तिनसों क्या तारा ॥ ६ ॥
 इस दुनियां दी भोजसों, तू गरबगहारा ।
 भया भार खम पुरुष, ज्यों छप्पर बिच बारा ॥
 सुपनैदा सुख मान तैं, अपना घर घारा ।
 फिरा भरमकी भौरमें, तू सहज बिलारा ॥ ७ ॥
 जोग अडंबर तैं क्रिया, कर अंदर मारा ।
 बंग बिभूति लगायके, लीनी मृग छारा ॥

है वनवासी तैं तजा, घरवार महला ।
 अप्पापर न पिछाणियां, सब झूठी गला ॥ ८ ॥
 माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सला ।
 तिहुं बादी करतूतसों, जियदा उरझला ॥
 ज्यों रुधिरादी पुट्सों, पट दीसै लला ।
 रुधिरानलहि पखालिये, नहि होय उजला ॥ ९ ॥
 जब लग तेरी समझमें, होदी हल चला ।
 सुजस बढ़ाई लाभनो, करदा छल बला ॥
 तबलग तू स्याणा नहीं, क्या मारइ कला ।
 सोर करंदा पालणै, ज्यों झूलै लला ॥ १० ॥
 किण तूं जकरा सांकला, किण पकरा पला ।
 मिदमकरा जौं उरझिया, उर जाल उगला ॥
 चेतन जड़ संजोगमें, तैं टांका झला ।
 तुही छुड़ावहि आपको, लख रूप इकला ॥ ११ ॥
 जो तैं दारिद मानिया, है ठलमठला ।
 जो तू मानहि संपदा, भरि दामहू गला ॥
 जो तू हुवा करंकसा, अरु भोगर मला ।
 सो सब नाना रूप है, नाचै पुद्गला ॥ १२ ॥
 जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूप रसला ।
 वै संघा भरि जोवना, वृढा अरु बला ॥

लंब मझोला ठांगना, गोरा अरु फल्ला ।
 सो सब नानारूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १३ ॥
 जो जीरण है झरपडै, जो होय नवल्ला ।
 जो मुरझावै मुककैं, फुल्ला अरु फल्ला ॥
 जो पानीमें वह चलै, पावकमें जल्ला ।
 सो सब नानारूप हैं, निहचै पुद्गल्ला ॥ १४ ॥
 एक कर्म दीसै दुवा, ज्यो तुलदा पल्ला ।
 हरवै तन गुरुवैतसों, अथ ऊरय थल्ला ॥
 अशुभरूप शुभरूप है, दुहु दिशिनो चल्ला ।
 धरै दुविधि विस्तार जाँ, बट विरस्त जल्ला ॥ १५ ॥
 पवन परै रे जो उढै, माटी बिच गल्ला ।
 जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥
 पापी पावक पौन भू, चहुंयामें रल्ला ।
 सो सब नाना रूप है, निहचै पुद्गल्ला ॥ १६ ॥
 खिणरोवे खिणमें हंसै, जाँ मदमतवल्ला ।
 त्यों दुहुंवादी मौजसों, बेहोश सँभल्ला ॥
 ईकसबीच विनोद है, इकमें खलफल्ला ।
 समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंतो हलभल्ला ॥ १७ ॥
 जाति दुहुंकी एक जाँ, मणि पथर डल्ला ।
 जल विथार सँकोच सों, कहिए नदि नल्ला ॥

उद्धत जलपरवाहमें, जौं मौंर बुलछा ।
 त्यों इस कर्म विपाकदे, विच ऊंचा खल्ला ॥ १८ ॥
 दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोई अटल्ला ।
 ऊंच नीच इक सम करै, कलिकाल पटल्ला ॥
 अघ ऊरघ ऊरघ अघो, थिति उथल पुथल्ला ।
 अरहट हार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥ १९ ॥
 पाया देवशरीरज्यों, नलनीर उछल्ला ।
 भव पूरण कर दहि पया, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥
 पुण्य पाप विच खेद है, यह भेद न भल्ला ।
 ज्ञान क्रिया निरदोष है, जहँ मोख महल्ला ॥ २० ॥
 वतनु तु साढा मोहमें, जौं रोह रुहल्ला ।
 थिति प्रवाण तुझ नो भया, गुरुज्ञान दुहल्ला ॥
 अव घट अंतर घटगई, भव भीर चुहल्ला ।
 परम चाह परगट भई, शिव राह सहल्ला ॥ २१ ॥
 ज्ञान दिवाकर ऊगियो, मति किरण प्रवल्ला ।
 है शत खंड बिहंडिया, अम तिमर पटल्ला ॥
 सत्य प्रतापै भंजिया, दुर्गती दुहल्ला ।
 अंगि अंगारे दज्जिया, जौं तूल पहल्ला ॥ २२ ॥

दोहा ।

यह सतगुरुदी देशना, कर आसव दीवाड़ि ।
 लुद्धी पैड़ि मोखदी, करम कपाट उघाड़ि ॥ २३ ॥

भव यिति जिनकी घटगई, तिनको यह उपदेश ।

कहत बनारसिदास यों, मूढ़ न समझे लेख ॥ २४ ॥

इति श्रीमोक्षपंथः.

अथ कर्मछत्तीसी लिख्यते.

दोहा ।

परम निरंजन परमगुरु, परमपुरुष परमान ।

वन्दहुं परमसमाधिगत, भयभंजन भगवान् ॥ १ ॥

जिनवाणी परमाण कर, सुगुरु शीख मन आन ।

कछु जीव अरु कर्मको, निर्णय कहीं बखान ॥ २ ॥

अगम अनंत अलोकनभ, तामें लोक अक्रान् ।

सदाकाल ताके उदर, जीव अजीव निवास ॥ ३ ॥

जीव द्रव्यकी द्वै दशा, संसारी अरु सिद्ध ।

पंच विकल्पअजीव के, अस्त्य अनादि असिद्ध ॥ ४ ॥

गगन, काल, पुद्गल, धरम, अरु अघर्म अभियान ।

अब कछु पुद्गल द्रव्यको, कहीं विशेष बियान ॥ ५ ॥

चरमदृष्टिसों प्रगट है, पुद्गल द्रव्य अनंत ।

जड़ लक्षण निर्जीव दल, रूपी मूर्तिवन्त ॥ ६ ॥

जो त्रिभुवन यिति देखिये, धिर जंगम आकार ।

सो पुद्गल परवानको, है अनादि विनार ॥ ७ ॥

अब पुद्गलके वीसगुण, कहों प्रगट, समुझाय । . .
 गर्भित और अनन्तगुण, अरु अनन्त परजाय ॥ ८ ॥
 श्याम पीत उज्ज्वल अरुण, हरित मिश्र बहु भांति ।
 विविधवर्ण जो देखिये, सो पुद्गलकी कांति ॥ ९ ॥
 आमल तिक्त कषाय कटु, क्षार मधुर रसभोग ।
 ए पुद्गलके पांचगुण, षट मानहिं सबलोग ॥ १० ॥
 तातो सीरो चीकनो, रुखो नरम कठोर ।
 हलको अरु भारीसहज, आठ फरस गुणजोर ॥ ११ ॥
 जो सुगंध दुर्गंधगुण, सो पुद्गलको रूप ।
 अब पुद्गल परजायकी, महिमा कहों अनूप ॥ १२ ॥
 शब्द, गंध, सूक्ष्म, सरल, लम्ब, वक्र, लघु धूल ।
 विछुरन, मिदन, उदोत, तम, इनको पुद्गल मूल ॥ १३ ॥
 छाया, आकृति, तेज, दुति, इत्यादिक बहु भेद ।
 ए पुद्गलपरजाय सब, प्रगटहिं होय उछेद ॥ १४ ॥
 केई शुभ केई अशुभ, रुचिर, भयानक भेष ।
 सहज स्वभाव विभाव गति, अरु सामान्य विशेष ॥ १५ ॥
 गर्भित पुद्गलपिंडमें, अलख अमूरति देव ।
 फिर सहज भवचक्रमें, यह अनादिकी देव ॥ १६ ॥
 पुद्गलकी संगति करै, पुद्गलहीसों प्रीति ।
 पुद्गलको आपा गौं, यहै भरमकी रीति ॥ १७ ॥

जे जे पुद्गलकी दशा, ते निज मानै हंस ।
 याही भरम विभावसों, बढै करमको वंश ॥ १८ ॥
 ज्यों ज्यों कर्म विपाकवश, ठानै अमकी मौल ।
 त्यों त्यों निज संपत्ति दुरै, जुरै परिग्रह फौज ॥ १९ ॥
 ज्यों वानर मदिरा पिये, विच्यूर डंकित गात ।
 भूत लौ कौतुक करै, त्यों अमको उत्पात ॥ २० ॥
 अम संशयकी भूलसों, लहै न सहज स्वकीय ।
 करम रोग समुझ नही, यह संसारी जीय ॥ २१ ॥
 कर्म रोगके द्वै चरण, बिषम दुहुंकी चाल ।
 एक कंप प्रकृती लिये, एक ऐंठि असराल ॥ २२ ॥
 कंपरोग है पाप पद, अकर रोग है पुण्य ।
 ज्ञान रूप है आत्मा, दुहुं रोगसों शून्य ॥ २३ ॥
 मूरख मिथ्यादृष्टिसों, निरखै जगकी रोंत ।
 डरहिं जीव सब पापसों, करहिं पुण्यकी होत ॥ २४ ॥
 उपजै पापविकारसों, भय तापादिक रोग ।
 चिन्ता खेद विधा बढै, दुखमानै सबलोग ॥ २५ ॥
 उपजै पुण्यविकारसों, विषयरोग विस्तार ।
 आरत रुद्र विधा बढै, सुख मानै संनार ॥ २६ ॥
 दोऊ रोग समान है, मूढ न जानै रीति ।
 कंपरोगसों भय करै, अकररोगसों प्रीति ॥ २७ ॥

मित्र २ लक्षण लखे, प्रगट दुहंकी भांति ।
 एक लिये उद्वेगता, एक लिये उपशांति ॥ २८ ॥
 कच्छपकीसी सकुच है, वक्र तुरगकी चाल ।
 अंधकारकोसो समय, कंपरोगके भाल ॥ २९ ॥
 बकरकूंदसी उमंग है, जकरबन्दकी चाल ।
 मकरचांदनीसी दिपै, अकररोगके भाल ॥ ३० ॥
 तमउद्योत दोऊं प्रकृति, पुद्गलकी परजाय ।
 भेदज्ञान विन मूढ़ मन, भटक भटक भरमाय ॥ ३१ ॥
 दुहं रोगको एक पद, दुहुंसों मोक्ष न होय ।
 विनाशीक दुहंकी दशा, विरला वृद्धै कोय ॥ ३२ ॥
 कोलु गिरै पहाड़ चढ़, कोऊ बूढ़ै कूप ।
 मरण दुहंको एक सो, कहिवेको द्वै रूप ॥ ३३ ॥
 भववासी दुविधा धरै, तातैं लखै न एक ।
 रूप न जानै जलधिको, कूप कोषको भेक ॥ ३४ ॥
 माता दुहंकी वेदनी, पिता दुहंको मोह ।
 दुहु वेड़ीसो बंधि रहे, कहवत कंचन लोह ॥ ३५ ॥
 जाति दुहंकी एक है, दोय कहै जो कोय ।
 गहै आचरै सरदहै, सुरवलभ है सोय ॥ ३६ ॥
 जाके चित जैसी दशा, ताकी तैसी दृष्टि ।
 पंडित भव खंडित करै, मूढ़ बढावै सृष्टि ॥ ३७ ॥

इति कर्म छत्तीसी.

अथ ध्यानवृत्तीसी लिख्यते.

दोहा ।

ज्ञान स्वरूप अनन्त गुण, निराबाध निरुपाधि ।
अविनाशी आनन्दमय, वन्दुं ब्रह्मसमाधि ॥ १ ॥
मानु उदय दिनके समय, चन्द्र उदय निधि होत ।
दोऊं जाके नाम मैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ २ ॥

चाँपाई । (सोळा माथा)

चेतहु पाणी मुन गुरुवाणी । अमृतरूप सिद्धांत बखानी ।
परगट दोऊं नय समुझावैं । मरसी होय मरम सो पावैं ॥ ३ ॥
चेतन जड अनादि संजोगी । आपहि करता आपहि भोगी ।
सहज स्वभाव शक्ति जव जागै । तब निहचैके मारग लागै ॥ ४ ॥
फिरकै देहबुद्धि जव होई । नयब्यवहार कहावैं सोई ।
भेदभाव गुन पांडित वृद्धै । जाको अगम अगोचर सुझै ॥ ५ ॥
प्रथमहि दान शील तप भावै । नय निहचै विवहार लखावैं ।
परगुणत्यागबुद्धि जव होई । निहचै दान कहावैं सोई ॥ ६ ॥
चेतन निज स्वभावमहँ आवैं । तब सो निश्चयनीन कहावैं ।
कर्मनिर्जरा होय विशेषै । निश्चय तप कहिये इह लेख ॥ ७ ॥
बिमलरूप चेतन अभ्यासै । निश्चयभाव तहां परगामै ।
अब सदगुरु व्यवहार बखानै । जाफा रहिगा तब जगजानै ॥ ८ ॥
मनबचकाय शक्ति कलु दीजै । सो व्यवहारी दान करीजै ।
मनबचकाय तजै जव नारी । कहिये सोई शील विवहागी ॥ ९ ॥

मनवचकाय कष्ट जब सहिये । तासों विवहारी तप कहिये ।
मनवचकाय लगनि ठहरावै । सो विवहारी भाव कहावै ॥ १० ॥
दोहा ।

दान शील तप भावना, चारों सुख दातार ।
निहचै सो निहचै मिलै, विवहारी विवहार ॥ ११ ॥
चौपाई ।

अब सुन चार ध्यान हितकारी । साधहिं मुक्तिपथ व्यापारी ॥
मुद्रा मूर्ति छवि चतुराई । कलामेष बलवेस बढ़ाई ॥ १२ ॥
फरस बरण रस गंध सुभाखा । इह रूपस्थध्यानकी शाखा ॥
इनकी संगति मनसा साधै । लगन सीख निज गुण आराधै ॥ १३ ॥
रहै मगन सो मूढ कहावै । अलख लखाव विचच्छण पावै ॥
अर्हत आदि पंच पदलीजे । तिनके गुणको सुमरण कीजे ॥ १४ ॥
गुणको खोज करत गुण लहिये । परमपदस्थध्यान सो कहिये ॥
चंचलता तज चित्त निरोधै । ज्ञानदृष्टि घटअन्तर शोधै ॥ १५ ॥
मिन्न मिन्न जड़ चेतन जोवै । गुण विलेच्छ गुणमाहिं समोवै ।
यह पिंडस्थध्यान सुखदाई । कर्मनिरजरा हेत उपाई ॥ १६ ॥
आप संभार आपसों जोरै । परगुणसों सब नाता तोरै ॥
लगै समाधि ब्रह्ममय होई । रूपातीत कहावै सोई ॥ १७ ॥

दोहा ।

यह रूपस्थपदस्थविधि, अरु पिंडस्थविचार ।
रूपातीत वितीत मल, ध्यान चार परकार ॥ १८ ॥

चापाहं ।

ज्ञानी ज्ञान भेद परकायै । ध्यानी होय सो ध्यान अभ्यासै ॥
 आर्त रौद्र कुध्यानहि त्यागै । धर्मशुक्लके मार्ग लागै ॥ १९ ॥
 आरत ध्यान चितवन कहिये । जाकी संगति दुरगति कहिये ॥
 इष्टविजोग विकलता भारी । अरि अनिष्ट संजोग दुखारी ॥ २० ॥
 तनकी व्यथा मगन मन झरै । अग्र शोचकर बांछति पुरै ॥
 ए आरतके चारों पाये । महा मोहरसों लपटायै ॥ २१ ॥
 अब सुन रौद्र ध्यानकी सैली । जहां पायनों मतिगति मैली ॥
 मनउछाहसों जीव विरोधै । हिये हर्षधर चोरी साधै ॥ २२ ॥
 विकसित झूटवचन मुखभासै । आनंदितचितविषया रासै ॥
 चारों रौद्र ध्यानके पाये । कर्मबन्धके हेतु बनाये ॥ २३ ॥

दोहा ।

आरतरौद्र विचारतें, दुखचिन्ता अधिकाय ।
 जैसे चढ़ै तरंगिनी, महामेघ जलपाय ॥ २४ ॥

चापाहं ।

आर्त रौद्र कुध्यान बन्धाने । धर्मध्यान अब सुनहु सवाने ॥
 केवल भाषित बाणी मानै । कर्मनाशको उद्यम डानै ॥ २५ ॥
 पूर्वकर्म उदय पहिचानै । पुण्याकार लोकथिति जानै ॥
 चारों धर्म ध्यानके पाये । जे समुझे ते मार्ग आवै ॥ २६ ॥
 अब सुन शुद्ध ध्यानकी बातें । मिटै मोहको मत्ता जातें ।
 जोय साध सिद्धांत विचारै । आनम गुण परगुण निर्यात ॥ २७ ॥

उपशम क्षपक श्रेणि आरोहै । पृथक्त वितर्क आदि पद सो है ॥

उपशम पंथ चढ़ै नहिं कोई । क्षपकपंथ निर्मल मन होई ॥ २८ ॥

तब मुनि लोकालोकविकासी । रहहिं कर्मकी प्रकृति पचासी ॥

केवल ज्ञान लहै जग पूजा । एक वितर्क नाम पद दूजा ॥ २९ ॥

जिनवर आयु निकट जब आवै । तहां वहत्तर प्रकृति खपावै ॥

सूक्ष्म चित्त मनोबल छोजा । सूक्ष्म क्रिया नाम पद तीजा ३०

शक्ति अनंत तहां परकाशै । ततस्त्रिन तेरह प्रकृति बिनाशै ॥

पंच लघूक्षर परमित बेरा । अष्ट कर्मको होय निबेरा ॥ ३१ ॥

चरण चतुर्थ साध शिव पावै । विपरीत क्रिया निर्वृत्ति कहावै ॥

शुद्ध ध्यानके चारों पाये । मुक्तिपंथकारण समुझाये ॥ ३२ ॥

शुद्ध ध्यान औपधि लगे, मिटै कर्मको रोग ।

कोइला छाड़ै कालिमा, होत अभिसंजोग ॥ ३३ ॥

* यह परमारथ पंथ गुन, अगम अनन्त वस्तान ।

कहत बनारसि अल्पमति, जथासकति परवान ॥ ३४ ॥

इति ध्यानवत्तीसी.

अथ अध्यातमवत्तीसी लिख्यते.

शुद्ध वचन सदगुरु कहै, केवल भाषित अंग ।

लोक पुरुषपरिमाण सब, चौदह रज्जु उत्तंग ॥ १ ॥

* यह दोहा "ख,, 'ग,, प्रतिमें नहीं है.

घृतघटपूरित लोकमें, धर्म अधर्म जकास ।

काल जीव पुद्गल सहित, छहों दरवको वास ॥ २ ॥

छहों दरव न्यारे सदा, मिलै न काहू कोय ।

छीर नीर ज्यों मिल रहे, चेतन पुद्गल दोय ॥ ३ ॥

चेतन पुद्गल यों मिलें, ज्यों तिरुमें खलि नेल ।

प्रगट एकसे देखिये, यह अनादिको खेल ॥ ४ ॥

बह वाके रससों रमै, वह वासों लपटाय ।

चुम्बक करपै लोहको, लोह लगै तिहँ धाय ॥ ५ ॥

जड़ परगट चेतन गुप्त, द्विविधा लखै न कोय ।

यह दुविधा सोई लखै, जो सुविचक्षण होय ॥ ६ ॥

ज्यों सुवास फल फूलमें, दही दूधमें धीव ।

पावक काठ पपाणमें, त्यों शरीरमें जीव ॥ ७ ॥

कर्मस्वरूपी कर्ममें, घटाकार घटमाहिं ।

गुणप्रदेश प्रच्छन्न सब, यातें परगट नाहि ॥ ८ ॥

सहज गुद्ध चेतन वसै, भावकर्मकी ओट ।

द्रव्यकर्म नोकर्मसों, बँधी पिंडकी पोट ॥ ९ ॥

ज्ञानरूप भगवान् शिव, भावकर्म चित भरे ।

द्रव्यकर्म तनकारमन, यह शरीर नोकर्म ॥ १० ॥

ज्यों कोठीमें धान धो, चमी नाहिं कननीन ।

चमी धोय कन राखिये, कोठी धोय झीच ॥ ११ ॥

कोठी सम नोकर्म मल, द्रव्य कर्म ज्यों धान ।

भावकर्ममल ज्यों चमी, कन समान भगवान् ॥ १२ ॥

द्रव्यकर्म नोकर्ममल, दोऊं पुद्गल जाल ।

भावकर्म गति ज्ञान मति, द्विविधि ब्रह्मकी चाल ॥ १३ ॥

द्विविधि ब्रह्मकी चालसों, द्विविधि चक्रको फेर ।

एक ज्ञानको परिणमन, एक कर्मको घेर ॥ १४ ॥

ज्ञानचक्र अन्तर गुप्त, कर्मचक्र प्रत्यक्ष ।

दोऊं चेतनभाव ज्यों, शुक्लपक्ष, तमपक्ष ॥ १५ ॥

निज गुण निज परजायमें, ज्ञानचक्रकी भूमि ।

परगुण पर परजायसों, कर्मचक्रकी धूमि ॥ १६ ॥

ज्ञानचक्रकी दरनिमें, सर्जग भांति सब ठौर ।

कर्मचक्रकी नौदसों, मृषा स्वप्नकी दौर ॥ १७ ॥

ज्ञानचक्र ज्यों दरशनी, कर्मचक्र ज्यों अंध ।

ज्ञानचक्रमें निर्जरा, कर्मचक्रमें बंध ॥ १८ ॥

ज्ञानचक्र अनुसरणको, देव धर्म गुरु द्वार ।

देव धर्म गुरु जो लखें, ते पावें भवपार ॥ १९ ॥

भववासी जानै नहीं, देवधरमगुरुभेद ।

परचो मोहके फन्दमें, करै मोक्षको खेद ॥ २० ॥

उदय सुकर्म कुकर्मके, रूखै चतुर्गति माहि ।

निरखै वाहिजदृष्टिसों, तहँ शिवमारग नाहि ॥ २१ ॥

देवधर्म गुरु हैं निकट, मूढ़ न जानै टार ।

बँधी दृष्टि मिथ्यातसों, लखै औरकी और ॥ २२ ॥

भेषधारिको गुरु कहै, पुण्यवन्तको देव ।

धर्म कहै कुल रीतिको, यह कुकर्मकी टेव ॥ २३ ॥

देव निरंजनको कहै, धर्म वचन परवान ।

साधु पुरुषको गुरु कहै, यह सुकर्मको ज्ञान ॥ २४ ॥

जानै मानै अनुभवै, करै भक्ति मन लाय ।

परसंगति आलस्य संधै, कर्मबन्ध अधिकार ॥ २५ ॥

कर्मबंधतें भ्रम बदै, भ्रमतें लखै न वाट ।

अंधरूप चेतन रहै, विना मुमति उद्घाट ॥ २६ ॥

सहजमोह जब उपशमै, रुचै सुगुरु उपदेश ।

तब विभाव भवधिति धटै, जग ज्ञान गुण लेख ॥ २७ ॥

ज्ञानलेश सो है मुमति, लखै मुकतिकी लीक ।

निरखै अन्तरदृष्टिसों, देव धर्म गुरु ठीक ॥ २८ ॥

ज्यों सुपरीक्षित जौहरी, काच डाल नणि लेख ।

त्यों सुबुद्धि मारग गहै, देव धर्म गुरु मेख ॥ २९ ॥

दर्शन चारित ज्ञान गुण, देव धर्म गुरु शुद्ध ।

परखै आत्म संपदा, तजै सनेह विरुद्ध ॥ ३० ॥

अरुचै दर्शन देवता, चरुचै चारित धर्म ।

दिट् परचै गुरुज्ञानसों, यट् मुमतिको धर्म ॥ ३१ ॥

सुमतिकर्मते शिव सधै, और उपाय न कोय ।

शिवस्वरूप परकाशसों, आवागमन न होय ॥ ३२ ॥

सुमतिकर्म सन्यक्तसों, देव धर्म गुरु द्वार ।

कहत वनारसि तत्त्व यह, लहि पावें भवपार ॥ ३३ ॥

इति श्रीअध्यातनवत्तीसी.

अथ श्री ज्ञानपच्चीसी लिख्यते.

सुरनर तिर्यग योनिमें, नरक निगोद भवत ।

महा मोहकी नींदसों, सोये काल अनंत ॥ १ ॥

जैसें ज्वरके जोरसों, भोजनकी रुचि जाइ ।

तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन न सुहाइ ॥ २ ॥

लगे भूख ज्वरके गये, रुचिसों लेय अहार ।

अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥

जैसें पवन झकोरतें, जलमें उठै तरंग ।

त्यों मनसा चंचल भई, परिगृहके परसंग ॥ ४ ॥

जहां पवन नहि संचरै, तहां न जल कल्लोल ।

त्यों सब परिगृह त्यागलों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥

ज्यों काहू विषधर डसै, रुचिसों नीम चवाय ।

त्यों तुम ममतासों मढे, भगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥

१ यह दोहा ख, ग, प्रतिमें नहीं है.

नीम रसन परसै नहीं, निर्विष तन जब होय ।

मोह घटे ममता मिटै, विषय न बाँछै कोय ॥ ७ ॥

ज्यों सछिद्र नौका चढ़े, बूढ़ अंध अदेख ।

त्यों तुम भवजलमें परे, विन विवेक घर भेख ॥ ८ ॥

जहां अखंडित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार ।

आतम रुचि नौका चढ़े, पावहु भव जल पार ॥ ९ ॥

ज्यों अंकुश मानै नहीं, महामत्त गजराज ।

त्यों मन तृष्णामें फिरै, गणै न काज अकाज ॥ १० ॥

ज्यों नर दाव उपावकैं, गहि आनै गज साधि ।

त्यों या मनवश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥

तिमिररोगसों नैन ज्यों, लखै औरफ्री और ।

त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या मतिकी दौर ॥ १२ ॥

ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग मिट जाय ।

त्यों सतगुरुउपदेशतैं, संशय वेग बिलाय ॥ १३ ॥

जैसैं सब जादव जरे, द्वारावतिकी आग ।

त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भाग ॥ १४ ॥

दीपायनसों ते वचे, जे तपसी निर्ग्रन्थ ।

तज माया समता गहो, यहै मुक्तिको पंथ ॥ १५ ॥

ज्यों कुधातुके फेटसों, घटवढ़ कंचनकांति ।

पापपुण्य कर त्यों भये, मूढातम बहु मांति ॥ १६ ॥

कंचन निज गुण नहिं तजै, वानहीनके होत ।

घटघट अंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥

पत्रा पीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय ।

त्यो प्रगतै परमातमा, पुण्यपापमलखोय ॥ १८ ॥

पर्व राहुके ग्रहणसों, सूर सोम छविछीन ।

संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होंहि मलीन ॥ १९ ॥

निवादिक चन्दन करै, मलयाचलकी वास ।

दुर्जनतैं सज्जन भये, रहत साधुके पास ॥ २० ॥

जैसैं ताल सदा भरै, जल आवै चहुं ओर ।

तैसैं आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१ ॥

ज्यों जल आवत मृदिये, सूखै सरवर पानि ।

तैसैं संवरके किये, कर्म निर्जरा जानि ॥ २२ ॥

ज्यों बूटी संजोगतैं, पारा मूर्छित होय ।

त्यो पुद्गलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥ २३ ॥

मेल खटाई मांजिये, पारा परगट रूप ।

शुक्लध्यान अभ्यासतैं, दर्शनज्ञान अनूप ॥ २४ ॥

कहि उपदेश बनारसी, चेतन अब कछु चेतु ।

आप बुझावत आपको, उदय करनके हेतु ॥ २५ ॥

इति श्रीज्ञानपंचोसी.

अथ शिवपच्चीसी लिख्यते.

दोहा ।

ब्रह्मविलास विकाशधर, चिदानन्द गुणठान ।

बन्दों सिद्धसमाधिमय, शिवस्वरूप भगवान ॥ १ ॥

मोह महातम नाशिनी, ज्ञान उदधिकी सींव ।

बन्दों जगतविकाशनी, शिवमहिमा शिवनीव ॥ २ ॥

चौपाई ।

शिवस्वरूप भगवान अवाची । शिवमहिमा अनुभवमति सांची ॥

शिवमहिमा जाके घट भासी । सो शिवरूप हुवा अविनासी ३

जीव और शिव और न होई । सोई जीववस्तु शिव सोई ॥

जीव नाम कहिये व्यवहारी । शिवस्वरूप निहचै गुणधारी ४

करै जीव जव शिवकी पूजा । नामभेदतैं होय न दूजा ॥

विधि विधानसों पूजा ठानै । तव शिव आप आपको जानै ५

तन मंडप मनसा जहँ वेदी । शुभलेख्या गह सहज सफेदी ॥

आतमरुचि कुंडली वखानी । तहां जलहरी गुरुकी वानी ६

भावलिंग सो मूरति थापी । जो उपाधि सो सदा अन्यापी ॥

निर्गुणरूप निरंजन देवा । सगुणस्वरूप करै विधिसेवा ॥ ७ ॥

समरस जल अमिषेक करावै । उपशम रसचन्दन घसि लावै ॥

सहजानन्द पुष्प उपजावै । गुणगर्भित जयमाल चढावै ॥ ८ ॥

ज्ञानदीपकी शिखा संवारै । स्याद्वाद घंटा झुनकारै ॥

अगम अध्यातम चौर दुलावै । क्षायक धूप स्वरूप जगावै ॥ ९ ॥

निहचै दान अर्घविधि होवै । सहजशील गुण असत दोवै ॥
तप नेवज काढै रस पावै । विमलभाव फल गम्बूढ़ आवै १०

जो ऐसी पूजा करै, ध्यानमगन शिवलीन ।

शिवस्वरूप जगमें रहै, सो साधक परवीन ॥ ११ ॥

सो परवीन मुनीश्वर सोई । शिवमुद्रा मंडित जो होई ॥

सुरसरिता करुणारसवाणी । मुमति गौरि अर्द्धरत्न वस्त्रानी ॥ १२ ॥

त्रिगुणभेद जहँ नयन विशेषा । विमलभावसमकित शशिलेखा ॥

सुगुरु शीख सिंगी उर बांधै । नयविबहार बाधन्वर कांधै ॥ १३ ॥

कवहुं तन कैलाश फलोले । कवहुं विवेकबेल चढ़ डोले ॥

रुंडमाल परिणाम त्रिभंगी । मनसा चक्र फिरै सरवंगी ॥ १४ ॥

शक्ति विमृति अंगछवि छाजै । तीन गुपति तिरशूल विराजै ।

कंठ विभाव विषम विष सोहै । महामोह विषहर नहिं पोहै १५

संजम जटा सहज सुख भोगी । निहचैरूप दिगम्बर जोगी ॥

ब्रह्म समाधिध्यान गृह साजै । तहां अनाहत डमरु बाजै ॥ १६ ॥

पंच भेद शुभज्ञान गुण, पंच वदन परधान ।

ग्यारह प्रतिमा साधतै, ग्यारह रुद्र समान ॥ १७ ॥

मंगल करन मोखपद ज्ञाता । यातैं शंकर नाम विख्याता ॥

जव मिथ्यामत तिमर विनाशै । अंधकहरण नाम परकाशै १८

ईश महेश अखयनिधिस्वामी । सर्व नाम जग अंतरजामी ॥

त्रिसुवन त्याग रमै शिवठामा । कहिये त्रिपुरहरण तव नामा १९

अष्टकर्मसों मिड़ै अकेला । महारुद्र कहिये तिहि वेला ॥
 मनकामना रहै नहि कोई । कामदहन कहिये तव सोई ॥२०॥
 भववासी भवनाम धरावै । महादेव यह उपमा पावै ॥
 आदि अन्त कोई नहि जानै । शंभुनाम सब जगत बखानै २१
 मोहहरण हर नाम कहीजे । शिवस्वरूप शिवसाधन कीजे ॥
 तज करनी निश्चयमें आवै । तव जगभंजन विरद कहावै २२
 विश्वनाथ जगपति जग जानै । मृत्युंजय तम मृत्यु न मानै ॥
 शुक्ल ध्यान गुण जब आरोहै । नाम कपूरगौर तव सोहै ॥२३॥
 इहिविधि जे गुण आदरै, रहै राचि जिहँ ठाँव ।
 जिहँ जिहँ मारग अनुसरै, ते सब शिवके नाँव ॥२४॥
 नाँव जथामति कल्पना, कहं प्रगट कहं गूढ़ ।
 गुणी विचारै वस्तु गुण, नाँव विचारै मूढ़ ॥ २५ ॥
 मूढ़ मरम जानै नहीं, करै न शिवसों प्रीति ।
 पंडित लखै वनारसी, शिवमहिमा शिवरीति ॥ २६ ॥

इति शिवपञ्चीसी.

अथ भवसिन्धुचतुर्दशी लिख्यते.

जैसें काह पुरुषको, पार पहुंचवे काज ।
 मारगमाहि समुद्र तहां, कारणरूप जहाज ॥ १ ॥
 तैसें सम्यकवंतको, और न कछु इलाज ।
 भवसमुद्रके तरणको, मन जहाजसों काज ॥ २ ॥

मनजहाज घटमें प्रगट, भवसमुद्र घटमाहिं ।

मूरख मर्म न जानहीं, बाहिर खोजन जाहिं ॥ ३ ॥

मूरखहूके घटविषै, जलजहाज अरु पौन ।

दृगमुद्रित मालीम तहँ, लखै सँभारै कौन ? ॥ ४ ॥

कर्मसमुद्र विभाव जल, विषयकषाय तरंग ।

चढवागनि तृष्णा प्रथल, ममता धुनि सरवंग ॥ ५ ॥

भरमभँवर तामें फिरै, मनजहाज चहुं और ।

गिरै खिरै बूझै तिरै, उदय पवनके जोर ॥ ६ ॥

जब चेतन मालिम जगै, लखै विषाक नजूम ।

डारै समता शृंखला, थकै भँवरकी घूम ॥ ७ ॥

मालिम सहज समुद्रको, जानै सब विरतंत ।

शुभोपयोग तहँ रत्न सम, अशुभ भाव जलजंत ॥ ८ ॥

जन्तु देख नहिं भय करै, रत्न देख उच्छाह ।

करै गमन शिवदीपको, यह मालिमकी चाह ॥ ९ ॥

दिशि परखै गुणजंत्रसों, फेरै शक्ति सुखान ।

धरै साथ शिवदीपमुख, वादवान शुभध्यान ॥ १० ॥

चहै शुद्ध उद्धत पवन, गहै क्षिपक दिशिलीक ।

लहै खवर शिवदीपकी, रहै दृष्टिगति ठीक ॥ ११ ॥

मनजहाज इहिविधि चलै, गेहै सिंधुजलवाट ।

आवै निज संपतिनिकट, पावै केवल घाट ॥ १२ ॥

मालिम उतर जहाजसों, करै दीप को दौर ।

तहां न जल न जहाज गति, नहिं करनी कलु और ॥ १३ ॥

मालिमकी कालिममिटी, मालिम दीप न दोय ।

यह भवसिन्धुचतुर्दशी, मुनिचतुर्दशी होय ॥ १४ ॥

इति सिन्धुचतुर्दशी.

अथ अध्यातम फाग लिख्यते.

अध्यातम विन क्यों पाइये हो, परमपुरुषको रूप ।

अषट अंग घट मिल रखो हो, महिमा अगम अनूप ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १ ॥

विषम विरप पूरो भयो हो, आयो सहज वसंत ।

प्रगटी सुरुचि सुगंधिता हो, मन मधुकर मयमंत ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ २ ॥

सुमति कोकिला गह गही हो, बही अपूरव वाट ।

भरम कुहर वादरफटे हो, घट जाहो जड़ ताट ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ३ ॥

मायारजनी लघु मई हो, समरस दिवशशिजीत ।

मोहपंककी थिति घटी हो, संशय शिशिर व्यतीत ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ४ ॥

शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहिं अशुभ पतझार ।

मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलिबिस्तार ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ५ ॥

शशिविवेक निर्मल भयो हो, धिरता अभिय झकोर ।

फैली शक्ति सुचन्द्रिका हो, प्रमुदित नैन चकोर ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ६ ॥

सुरति अग्निज्वाला जगी हो, समकित भानु अमन्द ।

हृदयकमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरन्द ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ७ ॥

दिढ कषाय हिमगिर गले हो, नदी निर्जरा जोर ।

धार धारणा बहचली हो, शिवसागर मुख ओर ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ८ ॥

वितथवात प्रभुता मिटी हो, जग्यो जथारथ काज ।

जंगलभूमि सुहावनी हो, नृप वसन्तके राज ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ९ ॥

भवपरणति चार्चरि भई हो, अष्टकर्म वनजाल ॥

अलख अमूरति आतमा हो, खेलै धर्म धमाल ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १० ॥

नयपंक्ति चाचरि मिलि हो, ज्ञानध्यान डफताल ।

पिचकारी पद साधना हो, संवर भाव गुलाल ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ ११ ॥

राग विराम अलापिये हो, भावभगति शुभ तान ।

रीझ परम रसलीनता हो, दीजे दश विधिदान ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १२ ॥

दया मिठाई रसभरी हो, तप मेवा परधान ।

शील सलिल अति सीयलो हो, संजम नागर पान ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १३ ॥

गुपति अंग परगासिये हो, यह निलज्जता रीति ।

अकथ कथा मुखभाखिये हो, यह गारी निरनीति ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १४ ॥

उद्धत गुण रशिया मिले हो, अमल विमल रसप्रेम ।

सुरत तरंगमहँ छकि रहे हो, मनसा वाचा नेम ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १५ ॥

परम ज्योति परगट भई हो, लगी होलिका आग ।

आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १६ ॥

प्रकृति पचासी लगि रही हो, भस्म लेख है सोय ।

न्हाय धोय उज्ज्वल भये हो, फिर तहँ खेल न कोय ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १७ ॥

सहज शक्ति गुण खेलिये हो, चेत वनारसिदास ।

सगे सखा ऐसे कहै हो, मिटै मोहदधि फास ॥

भला अध्यातमविन क्यों पाइये ॥ १८ ॥

इति अध्यातमधमार.

अथ सोलह तिथि लिख्यते.

चौपाई ।

परिवा प्रथम कला घट जागी । परम प्रतीतिरीति रसपागी ॥

प्रतिपद परम प्रीति उपजावै । वहै प्रतिपदा नाम कहावै ॥१॥

दूज दुहुंधी दृष्टि पसारै । स्वपरविवेकधारणा धारै ॥

दर्वित भावित दीसै दोई । द्वय नय मानत द्वितीया होई ॥२॥

तीज त्रिकाल त्रिगुण परकासै । त्रिविधिरूप त्रिभुवन आभासै ॥

तीनों शल्य उपाधि उछेदै । त्रिधा कर्मकी परिणति भेदै ॥३॥

चौथ चतुर्गतिको निरवारै । कर चकचूर चौकरी चारै ॥

चारों वेद समुझि घर आवै । तब सुअनंत चतुष्टय पावै ॥४॥

पांचै पंच सुचारित पाळै । पंचज्ञानकी सुरति संभालै ॥

पांचों इन्द्रिय करै निरासा । तब पावै पंचमगति वासा ॥५॥

छठ छहकाय स्वांग घर सोवै ॥ छहरस मगन छ आकृति होवै ॥

जब छहदरशनमें न अरुझै । तब छ दर्वसों न्यारो सुझै ॥६॥

सातें सातों प्रकृति खिपावै । सप्तभंग नयसों मन लावै ॥

त्यागै सात व्यसनविधि जेती । निर्भय रहै सात भयसेती ७

आठैं आठ महामद भंजै । अष्टसिद्धिरतिसों नहिं रंजै ॥

अष्टकर्ममलमूल बहावै । अष्टगुणात्म सिद्ध कहावै ॥८॥

नौमी नवरसमें रस बेवै । तौ समकित धर नवपद सेवै ॥

करै भक्तिविधि नव परकारा । निरखै नवतत्त्वनसों न्यारा ॥९॥

दशमी दशदिशितो मन मोरै । दश प्राणनसों नाता तोरै ॥
 दशविधि दान अभ्यंतर साधै । दशलच्छण मुनिधर्म अराधै १०
 ग्यारस ग्यारह प्रकृति विनाशै । ग्यारह प्रतिमापद परकाशै ॥
 ग्यारह रुद्र कुलिंग बखानै । ग्यारह विश्वा जोग जिन मानै ११
 बारस बारह विरति बढ़ावै । बारह विधि तपसों तन तावै ॥
 बारहभेद भावना भावै । बारह अंग जिनागम गावै ॥ १२ ॥
 तेरस तेरह क्रिया संभालै । तेरह विघन काठिया टालै ॥
 तेरहविधि संजम अवधारै । तेरह शानक जीव विचारै ॥ १३ ॥
 चौदश चौदह विद्या मानै । चौदह गुणशानक पहिचानै ॥
 चौदह मारगना मन आनै । चौदहरज्जु लोक परबानै ॥ १४ ॥
 पन्द्रस पन्द्रह तिथि गनिलीजे । पन्द्रह पात्र परसि धन दीजे ॥
 पन्द्रह जोगरहित जो धरणी । सो घट शून्य अमावस वरणी १५
 पूनों पूरण ब्रह्मविलासी । पूर गुण पूरण परगासी ॥
 पूरण प्रभुता पूरणमासी । कहै साधु तुलसी बनवासी ॥ १६ ॥

इति षोडशतिथिका.

अथ तेरह काठिया लिख्यते.

जे षट्पारै वाटमें, कहिं उपद्रव जोर ।

तिन्हें देश गुजरातमें, कहिं काठियांचोर ॥ १ ॥

त्यों यह तेरह काठिया, करहिं धर्मकी हानि ।
 तातैं कलु इनकी कथा, कहहुं विशेष वखानि ॥ २ ॥
 जूआ आलस शोक भँय, कुँकथा कौतुक कोह ।
 कृपणबुद्धि अज्ञानता, अँम निद्रा मँदे मोह^३ ॥ ३ ॥

प्रथम काठिया जूआ जान । जामें पंच वस्तुकी हान ।
 प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म । मिटै सुजश विनशै धनधर्म ॥ ४ ॥
 द्वितिय काठिया आलसभाव । जासु उदय नाशै विवसाव ॥
 बाहिर शिथिल होहिं सब अंग । अंतर धर्मवासना भंग ॥ ५ ॥
 ठग तीसरो शोक संताप । जासु उदय जिय करै विलाप ॥
 सूतक पातक जिहि पर होय । धर्मक्रिया तहँ रहै न कोय ॥ ६ ॥
 भय चतुर्थ काठिया वखान । जाके उदय होय बलहान ॥
 उर कंपै नहिं फुरै उपाय । तव सुधर्म उद्यम मिट जाय ॥ ७ ॥
 ठग पंचम कुकथा बकवाद । मिथ्यापाठ तथा ध्वनिनाद ॥
 जबलों जीव भगन इसमहिं । तबलों धर्म वासना नाहिं ॥ ८ ॥
 कौतूहल छठम काठिया । अमविलाससों हरषै हिया ॥
 सृषा वस्तु निरखै घर ध्यान । विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान ॥ ९ ॥
 कोप काठिया है सातमा । अग्नि समान जहां आतमा ॥
 आप न दाह औरको दहै । तहां धर्मरुचि रंचन रहै ॥ १० ॥
 कृपणबुद्धि अष्टम बटपार । जामें प्रगट लोभ अधिकार ॥
 लोभ माहिं ममता परकाश । ममतां करै धर्मको नाश ॥ ११ ॥

नवमा ठगं आज्ञान अगाध । जासु उदय उपजै अपराध ॥
 जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहां धर्म न होय १२
 दशम काठिया भ्रम विच्छेप । भ्रमसों अशुभ करमको लेप ॥
 अशुभ कर्म दुरमतिकी खानि । दुरमति करै धर्मकी हानि १३
 एकादशम काठिया नींद । जासु उदय जिय वस्तु न वींद ॥
 मन वच काय होय जड़रूप । बूढ़ै धर्म कर्मधनकूप ॥ १४ ॥
 ठग द्वादशम अष्टमद भार । जामें अकररोग अधिकार ॥
 अकररोग अरु विनयविरोध । जहँ अविनय तहँ धर्मनिरोध १५
 तेरम चरम काठिया मोह । जो विवेकसों करै विछोह ॥
 अविवेकी मानुष तिरजंच । धर्मधारणा धरै न रंच ॥ १६ ॥
 येही तेरह करम ठग । लेहि रतन त्रय छीन ॥
 यातें संसारी दशा । कहिये तेरह तीन ॥ १७ ॥

इति त्रयोदश काठिया.

अथ अध्यात्म गीत लिख्यते.

राग गौरी.

मेरा मनका प्यारा जो मिलै । मेरा सहज सनेही जो मिलै ॥ टेक ॥
 अवधि अजोघ्या आत्म राम । सीता सुमति करै परणाम ॥
 मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा सहज० ॥ १ ॥
 उपज्यो कंत मिलनको चाव । समता सखीसों कहै इसमाव ॥
 मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ २ ॥

मै विरहिन पियके आधीन । यों तलफों ज्यों जल बिन मीन ।

मेरा मनका प्यारा जो मिलै, मेरा० ॥ ३ ॥

बाहिर देखूं तो पिय दूर । घट देखे घटमें भर पूर ॥

मेरा० ॥ ४ ॥

घटमहि गुप्त रहै निरधार । वचनअगोचर मनके पार ॥

मेरा० ॥ ५ ॥

अलख अमूरति वर्णन कोय । कवधों पियको दर्शन होय ॥

मेरा० ॥ ६ ॥

सुगम सुपथ निकट है ठौर । अंतर आढ विरहकी दौर

मेरा० ॥ ७ ॥

जउ देखों पियकी उनहार । तन मन सर्वस डारों बार ॥

मेरा० ॥ ८ ॥

होहुं मगन मैं दरशन पाय । ज्यों दरियामें वृंद समाय ॥

मेरा० ॥ ९ ॥

पियको मिलों अपनपो खोय । ओला गल पाणी ज्यों होय ॥

मेरा० ॥ १० ॥

मैं जग हृंद फिरी सब ठोर । पियके पटतर रूप न ओर ॥

मेरा० ॥ ११ ॥

पिय जगन्नायक पिय जगसार । पियकी महिमा अगम अपार ॥

मेरा० ॥ १२ ॥

पिय सुमिरत सब दुख मिट जाहिं । भोरनिरख ज्यों चोर पलाहिं

मेरा० ॥ १३ ॥

भयभंजन पियको गुनंवाद । गजगंजन ज्यों केहरिनाद ॥

मेरा० ॥ १४ ॥

भागइ भरम करत पियध्यान । फटइ तिमिर ज्यों जगत मान

मेरा० ॥ १५ ॥

दोष दुरइ देखत पिय ओर । नाग डरइ ज्यों बोलत मोर ॥

मेरा० ॥ १६ ॥

बसों सदा मैं पियके गाँठ । पियतज और कहां मैं जाँउ ॥

मेरा० ॥ १७ ॥

जो पिय जाति जाति मम सोइ । जातहिं जात मिलै सब कोइ

मेरा० ॥ १८ ॥

पिय मोरे घट, मैं पियमाहिं । जलतरंग ज्यों द्विविधा नाहिं ॥

मेरा० ॥ १९ ॥

पिय मो करता मैं करतूति । पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति ॥

मेरा० ॥ २० ॥

पिय सुखसागर मैं सुखसीव । पिय शिवमन्दिर मैं शिवनीव ॥

मेरा० ॥ २१ ॥

पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम । पिय माधव मो कमल नाम ॥

मेरा० ॥ २२ ॥

पिय शंकर मैं देवि भवानि । पिय जिनवर मैं केवलवानि ॥

मेरा० ॥ २३ ॥

पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष । पिय जोगी मैं मुद्रा भेष ॥

मेरा० ॥ २४ ॥

पिय मो रसिया मैं रसरीति । पिय व्योहारिया मैं परतीति ॥

मेरा० ॥ २५ ॥

जहां पिय साधक तहाँ मैं सिद्ध । जहां पिय ठाकुर तहाँ मैं रिद्ध ॥

मेरा० ॥ २६ ॥

जहां पिय राजा तहाँ मैं नीति । जहाँ पिय जोद्धा तहाँ मैं जीति ॥

मेरा० ॥ २७ ॥

पिय गुणग्राहक मैं गुणपांति । पिय बहुनायक मैं बहुभांति ॥

मेरा० ॥ २८ ॥

जहाँ पिय तहँ मैं पियकै संग । ज्यों शशि हरिमें ज्योति अमंग ॥

मेरा० ॥ २९ ॥

पिय सुभिरन पियको गुणगान । यह परमारथपंथ निदान ॥

मेरा० ॥ ३० ॥

कहइ व्यवहार बनारसिनाव, चेतन सुमति सटी इकठाँव ॥

मेरा० ॥ ३१ ॥

इति चेतनसुमतिगीत.

अथ पंचपदविधान लिख्यते.

दोहा.

नमो ध्यानधर पंचपद, पंचसु ज्ञान अराधि ।
पंचसुचरण चितारचित, पंचकरनरिपुसाधि ॥ १ ॥

चौपाई (१५.)

वन्दों श्रीअरहंत अधीश । वन्दों स्वयंसिद्ध जगदीश ॥
वन्दों आचारज उबझाय । वन्दों साधुपुरुषके पाय ॥ २ ॥
एई पंच इष्ट आधार । इनमें देव एक गुरु चार ॥
सिद्ध देव परसिद्ध उदार । गुरु अरहंतादिक अनगार ॥ ३ ॥
सिद्ध सोई जस करै न कोइ । भयो कदाच न कबहूँ होइ ॥
अखय अखंडित अविचलधाम । निर्मल निराकार निरनाम ४
अब गुरु कहों चार परकार । परम निधान धरमधनधार ॥
मरमवंत शुभ कर्म सुजान । त्रिसुवनमार्हि पुरुष परधान ॥५॥
प्रथम परमगुरु श्रीअरहंत । द्वितिय परमगुरु सूरि महंत ॥
तृतीय परमगुरु श्रीउबझाय । चौथे परम सुगुरु मुनिराय ॥६॥
परम ज्ञान दर्शनमंडार । वाणी खिरै परम सुखकार ॥
परम उदारिक तनधारंत । परम सुगुरु कहिये अरहंत ॥ ७ ॥
धर्मध्यान धारै उत्तकिष्ट । भाषै धर्मदेशना मिष्ट ॥
धर्मनिधान धर्मसों प्रेम । धर्म सुगुरु आचारज एम ॥ ८ ॥
चौदह पूरव ग्यारह अंग । पढै मरम जानै सरवंग ॥
परको मर्म कहै समुझाय । यातै परम सुगुरु उबझाय ॥ ९ ॥

षट् आवश्यक कर्म नित करें । त्रिविधि कर्मममता परिहरे ॥
 विपुल करम साधे समकृती । परम सुगुरु सामानिक जती १०
 पंच सुपद कीजइ चितौन । दुरित हरन दुख दारिद दौन ॥
 यह जप मुख्य और जप गौन । इस गुण महिमा वरणै कौन ११

बोहा ।

महामंत्र ये पंचपद, आराधै जो कोय ।

कहत बनारसिदास पद, उलट सदाशिव होय ॥ १२ ॥

इति श्रीपंचपद विधान.

अथ सुमतिके देव्यष्टोत्तरशतनाम.

नमौ सिद्धिसाधक पुरुष, नमौ आतमाराम ।

वरणों देवी सुमतिके, अष्टोत्तरशत नाम ॥ १ ॥

रोडक छन्द ।

सुमति सबुद्धि सुधी सुबोधनिधिसुता पुनीता ।

शशिवदनी सेमुपी शिवमती धिपणा सीता ॥

सिद्धा संजमवती स्यादवादिनी विनीता ।

निरदोषा नीरजा निर्मला जगत अतीता ॥

शीलवती शोभावती, शुचिधर्मा रुचिरीति ।

शिवा सुभद्रा शंकरी, मेधा दृढपरतीति ॥ २ ॥

ब्रह्माणी ब्रह्मजा ब्रह्मरति, ब्रह्मअधीता ।

पदमा पदमावती वीतरागा गुणगीता ॥

शिवदायिनि शीतला राधिका, रमा अजीता ।

समता सिद्धेश्वरी सत्यभामा निरनीता ॥

कल्याणी कमल कुशलि, भवमंजनी भवानि ।

लीलावती मनोरमा, आनन्दी सुखस्नानि ॥ ३ ॥

परमा परमेश्वरी परम पंडिता अनन्ता ।

असहाया आमोदवती अभया अषहंता ॥

ज्ञानपंती गुणवती गौमती गौरी गंगा ।

लक्ष्मी विद्याधरी आदि सुंदरी असंगा ॥

चन्द्रामा चिन्ताहरणि, चिद्विद्या चिद्वेलि ।

चेतनवती निराकुला, शिवमुद्रा शिवकेलि ॥ ४ ॥

चिदवदनी चिद्रूप कला वसुमती विचित्रा ।

अर्चणी अक्षरा जगतजननी जगमित्रा ॥

अविकारा चेतना चमत्कारिणी चिदंका ।

दुर्गा दर्शनवती दुरितहरणी निकलंका ॥

धर्मधरा धीरज धरनि, मोहनाशिनी वाम ।

जगत विक्राशिनि भगवती, भरमभेदनी नाम ॥ ५ ॥

घत्तावन्द.

निपुणानवनीता, वितथवितीता, सुजसा भवसागरतरणी ।

निगमा निरवानी, दयानिधानी, यह सुबुद्धिदेवी वरणी ॥ ६ ॥

इति श्रीसुमतिदेविविशतक.

अथ शारदाष्टकं लिख्यते.

वस्तु छन्द.

नमो केवल नमो केवल रूप भगवान् ।
 मुख ओंकारधुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ॥
 रचि आगम उपदिशै भविक जीव संशय निवारै ॥

सो सत्यारथ शाखा तासु, भक्ति उर आन ।
 छन्द भुजंगप्रयातमें, अष्टक कहौं बखान ॥ १ ॥

भुजंगप्रयात.

जिनादेशजाता जिनेन्द्रा विख्याता ।
 विशुद्धप्रबुद्धा नमो लोकमाता ॥
 दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी ।
 नमो देविवागेश्वरी जैनवानी ॥ २ ॥
 सुधाधर्मसंसाधनी धर्मशाला ।
 सुधातापनिर्नाशनी मेघमाला ॥
 महामोहविध्वंसनी मोक्षदानी ।
 नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ३ ॥
 अखैवृक्षशाखा व्यतीतामिलापा ।
 कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥
 चिदानन्द-मूपालकी राजधानी ।
 नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ४ ॥

समाधानरूपा अनूपा अलुद्रा ।

अनेकान्तघा स्यादवादाङ्गमुद्रा ॥

त्रिधा सप्तधा द्वादशाङ्गी वखानी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ५ ॥

अक्रोपा अमाना अदंभा अलोभा ।

श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञानशोभा ॥

महापावनी भावना भव्यमानी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ६ ॥

अतीता अजीता सदा निर्विकारा ।

विषैवाटिकाखंडिनी खड्गधारा ॥

पुरापापविक्षेपकर्तृ कृपाणी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ७ ॥

अगाधा अवाधा निरंघ्रा निराशा ।

अनन्ता अनादीश्वरी कर्मनाशा ॥

निशंका निरंका चिदंका भवानी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ८ ॥

अशोका मुदेका विवेका विधानी ।

जगज्जन्तुमित्रा विचित्रावसानी ॥

समस्तावलोकानिरस्तानिदानी ।

नमो देवि वागेश्वरी जैनवानी ॥ ९ ॥

वस्तुच्छन्द.

जैनवाणी जैनवाणी सुनहिं जे जीव ।
 जे आगम रुचिधरें जे प्रतीति मन माहिं आनहि ।
 अवधारहिं जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहि ॥
 जे हितहेतु वनारसी, देहिं धर्म उपदेश ।
 ते सब पावहि परम सुख, तज संसार कलेश ॥ १० ॥

इति शारदाष्टक.

अथ नवदुर्गाविधान लिख्यते.

कवित्त.

प्रथमहिं समकितवंत लखि आपापर,
 परको स्वरूप त्यागी आप गहलेतु है ।
 बहुरि विलोक साध्यसाधक अवस्था भेद,
 साधक है सिद्धिपदको सुदृष्टि देतु है ॥
 अविरतगुणथान आदि छीनमोहअन्त,
 नवगुणथान निति साधकको खेतु है ॥
 संजम चिह्न विना साधक गुप्तरूप,
 त्यों त्यों परगट ज्यों ज्यों संजम सुचेतु है ॥ १ ॥
 जैसें काहू पुरुषको कारण ऊरध पंथ,
 कारण स्वरूपी गढ़ भूमिगिरिशृंग है ।
 तैसें साध्यपद देव केवल पुरुष लिंग,
 साधक सुमति देवीरूप त्रियलिंग है ॥

ज्ञानकी अवस्था दोऊ निश्चय न भेद कोऊ,
 व्यवहार भेद देव देवी यह व्यंग है ।
 ऐसो साध्य साधक स्वरूप सूयो मोक्षपंथ,
 संतनको सत्यारथ मूढ़नको ढिङ्ग है ॥ २ ॥
 जाको भौनभवकूप मुकुट विवेकरूप,
 अनाचार रासभ आरूढदुति गूझी है ।
 जाके एक हाथ परमारथ कलश दूजे,
 हाथ त्याग शक्ति वोहारी विधि बूझी है ।
 जाके गुणश्रवण विचार यहै वासी भोग,
 औपन भगतिरसरागसों अरूझी है ॥
 सो है देवी शीतला सुमति सूझै संतनको,
 दुरबुद्धि लोगनको रोगरूप सूझी है ॥ ३ ॥
 कूपसों निकस जबभूपर उदोत भई,
 तव और ज्योति मुख ऊपर विराजी है ।
 भुजा भई चौगुणी शक्ति भई सौगुणी,
 लजाय गए औगुणी रजायछिति छाजी है ॥
 कुंभसों प्रगट्यो नूर, रासभसों भयो सूर,
 सूप भयो छत्रसों वुहारी शस्त्र राजी है ।
 ऐपन को रंगसो तो कंचनको अंग भयो,
 छत्रपति नामभयो वासी रीति ताजी है ॥ ४ ॥

दोहा ।

जाके परसत परमसुख, दरसत दुख मिट जाहिं ।
यहै सुमति देवी प्रगट, नगर कोट घटमाहिं ॥ ५ ॥

कवित्त ।

यहै बंधबंधकस्वरूप मानवंदी भई,
यह है अनंदी चिदानंद अनुसरणी ।
यह ध्यान अगनि प्रगट भये ज्वालामुखी,
यहै चंडी मोह माहिषासुर निदरणी ॥
यहै अष्टभुजी अष्टकर्मकी शक्ति भंजै,
यहै कालवंचनी उलंघै कालकरणी ।
यहै अवला बली विराजै त्रिभुवन राणी,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरणी ॥ ६ ॥
यहै कामनाशिनी कमिक्षा कलिमें कहावै,
यहै ब्रह्मचारिणी कुमारी है अपरनी ।
यह है भगौति यहै दुर्गा दुर्गति जाकी,
यहै छत्रपती पुण्यपापतापहरनी ॥
यहै रामरमणी सहजरूप सीता सती,
यहै आदि सुंदरी विवेकसिंहचरनी ।
यहै जगमाता अनुकंपारूप देखियत,
यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ७ ॥

यहै सरस्वती हंसवाहिनी प्रगट रूप,
 यहै भवभेदिनी भवानी शंभुधरनी ।
 यहै ज्ञान लच्छनसों लच्छमी विलोकियत,
 यहै गुणरत्नमंडार मारभरनी ॥
 यहै गंगा त्रिविधि विचारमें त्रिपथ गौनी,
 यह मोक्षसाधनको तीरथकी धरनी ।
 यहै गोपी यहै राधा राधै भगवान मावै,
 यहै देवी सुमति अनेकभांति वरनी ॥ ८ ॥
 यहै परमेश्वरी परम ऋद्धि सिद्धि साधै,
 यहै जोग माया व्यवहार ढार ढरनी ।
 यहै पद्मावती पद्म ज्यों अलेप रहै,
 यहै शुद्ध शक्ति मिथ्यातकी कतरनी ॥
 यहै जिनमहिमा बखानी जिनशासनमें,
 यहै अखंडित शिवमहिमा अमरनी ।
 यहै रसमोगनी वियोगमें वियोगिनी है,
 यहै देवी सुमति अनेकभांतिवरनी ॥ ९ ॥

इति श्रीनवदुर्गा विधान.

अथ नामनिर्णयविधान लिख्यते.

; दोहा ।

काहू दिन काहू समय, करुणामाव समेत ।
 सुगुरु नामनिर्णय कहै, भविक जीव हितहेत ॥ १ ॥
 जीव द्विविधि संसारमें, अथिररूप थिररूप ।
 अथिर देहधारी अलख, थिर भगवानं अनूप ॥ २ ॥

कवित्त (३१ वर्ण)

जो है अविनाशी वस्तु ताको अविनाशी नाम,
 विनाशीक वस्तु जाको नाम विनाशीक है ।
 फूल मरै बास जीवै यहै भ्रमरूपीबात,
 दोऊ मरै दोऊ जीवै यहै बात ठीक है ॥
 अनादि अनंत भगवंतको सुजस नाम,
 भवसिंधु तारण तरण तहकीक है ।
 अवतारै मरै भी धरै जे फिर फिर देह,
 तिनको सुजस नाम अथिर अलीक है ॥ ३ ॥

दोहा ।

थिर न रहै नर नाम की, जथा कथा जलरेख ।
 एते पर मिथ्यामती, ममता करें विशेख ॥ ४ ॥

कवित्त.

जगमें मिथ्याती जीव भ्रम करै है सदीव,
 भ्रमके प्रवाहमें बहा है आगे बहेगा ।
 नाम राखिवेको महारंभ करै दंभ करै,
 यों न जानै दुर्गतिमें दुःख कौन सहैगा ॥

बार बार कहैं मोह भागवंत धनवंत,
मेरा नाव जगतमें सदाकाल रहैगा ।
याही ममतासों गहि आयो है अनंत नाम,
आगें योनियोनिमें अनंत नाम गहैगा ॥ ५ ॥
दोहा ।

बोल उठैं चित चौंकि नर, सुनत नामकी हांक ।
वहै शब्द सतगुरु कहैं, है अमकूप धमांक ॥ ६ ॥
कवित्त ।

जगतमें एक एक जनके अनेक नाम,
एक एक नाम देखिये अनेक जनमें ।
वा जनम और वा जनम और आगें और,
फिरता रहै पै याकी थिरता न तनमें ॥
कोई कल्पना कर जोई नाम धरै जाको,
सोई जीव सोई नाम मानें तिहूं पनमें ।
ऐसो विरतंत लख संतसों सुगुरु कहै,
तेरो नाम भ्रम तू विचार देख मनमें ॥ ७ ॥
दोहा.

नाम अनेक समीप तुव, अंग अंग सब ठौर ।
जासों तू अपनो कहै, सो अमरूपी और ॥ ८ ॥
कवित्त ।

केश शीस भाल मोह वरुणी पलक नैन,
गोलक कपोल गंड नासा मुख श्रौन है ।

अघर दसन ओठ रसना मसूदा तालु,
 घंटिका चिवुक कंठ कंधा उर भौन है ॥
 कांख कटि मुजा कर नाभि कुच पीठ पेट,
 अंगुली हथेली नख जंघाथल मौन है ।
 नितम्ब चरण रोम एते नाम अंगनके,
 तामें तू विचार नर तेरा नाम कौन है ॥ ९ ॥
 दोहा ।

नाम रूप नहिं जीवको, नहिं पुद्गलको पिंड ।
 नहिं स्वभाव संजोगको, प्रगट भरमको भिंड ॥ १० ॥
 यह सुनामनिर्णयकथा, कही सुगुरु संछेप ।
 जे समुझहिं जे सरदहें, ते नीरस निरलेप ॥ ११ ॥

इति श्रीनामनिर्णयविधान.

अथ नवरत्नकवित्त लिख्यते.

धन्वन्तरि छपणैक अमैर, घटर्षर्पर वैतालै ।
 वररुचि शंखुं वराहमिह (र), कालिदास नव लाल ॥ १ ॥
 विमलचित्त जाचैक शिथिल, मूढ तपस्वी प्रात ।
 कृपणबुद्धि तिर्यनरपत्नी, ज्ञानवन्त नव बात ॥ २ ॥

छप्पय ।

विमल चित्तकर मित्त, शत्रु छलबल वश किज्जय ।
 प्रभु सेवा वश करिय, लोभवन्तहिं धन दिज्जय ॥

युचति प्रेम वश करिय, साधु आदर वश आनिय ।
महाराज गुणकथन, बंधु समरस सनमानिय ॥
गुरुनमन शीस रससों रसिक, विद्या बल वृषि मन हरिय ।
मूरख विनोद विकथा वचन, शुभ स्वभाव जगवश करिय ॥३॥

जाचक लघुपद लहै, काम आतुर कलंक पद ।
लोभी अपजस लहै, असनलालची लहै गंद ॥
उन्नत लहै निपात, दुष्ट परदोष लहै तकि ।
कुमन विकलता लहै लहै संशय जु रहै चकि ॥
अपमान लहै निर्धन पुरुष, ज्वारी बहु संकट सहै ।
जो कहै सहज करकश वचन, सो जग अप्रियता लहै ॥ ४ ॥

शिथिल मूल दिढ करै, फूल चूटै जलसीचै ।
ऊरध डार नवाय, भूमिगत ऊरध खींचै ॥
जे मलीन मुरझाहिं, टेक दे तिनहिं सुधारइ ।
कूड़ा कंटक गलित पत्र, बाहिर चुन डारइ ॥
लघु वृद्धि करइ भेदै जुगल, वाड़ि सँवारै फल भखै ।
माली समान जो नृप चतुर, सो बिलसै संपति अखै ॥ ५ ॥

मूढ़ मसकती तपी, दुष्ट मानी गृहस्थ नर ।
नरनायक आलसी, विपुल धनवंत कृपण कर ॥
धरमी दुसह स्वभाव, वेद पाठी अघरम रत ।
पराधीन शुचिवन्त, भूमिपालक निदेशहत ॥

रोगी दारिद्र्यपीडित पुरुष, वृद्ध नारि रसगृह्यचित ।

एते विडम्ब संसारमें, इन सब कहँ धिक्कार नित ॥ ६ ॥

प्रात धर्म चिन्तवै, सहजहित मंत्र विचारै ।

चर चलाय चहुँ ओर, देशपुर प्रजा सम्हारै ॥

राग द्वेष हिय गोप, वचन अम्रत सम बोलै ।

समय ठौर पहिचान, कठिन कोमल गुण खोलै ॥

निज जतन करै संचय रतन, न्यायमित्र अरि सम गनै ।

रणमें निशंक है संचरै, सो नरेन्द्र रिपुदल हनै ॥ ७ ॥

कृपण बुद्धि यश हनें, कोप दृढ़ प्रीति विछोरै ।

दंभ विध्वंसै सत्य, क्षुधा मर्यादा तोरै ॥

कुव्यसन धन छय करै, विपति थिरता पद टारइ ।

मोह मरोरै ज्ञान, विषय शुभ ध्यान विडारइ ॥

अभिमान विछेदै विनय गुण, पिशुनकर्म गुरुता गिलै ।

कुक्कलाभ्यास नासहि सुपथ, दारिदसों आदर टलै ॥ ८ ॥

तियबल योवन समय, साधुबल शिवपथ संवर ।

नृपबल तेज प्रताप, दुष्टबल वचन अडम्बर ।

निर्धनबल सुमिलाप, दानिसेवा याचकबल ।

वाणिजबल व्यवहार, ज्ञानबल वरविवेकदल ॥

विद्या विनय उदारबल, गुणसमूह प्रभुबल दरब ।

परिवार स्वबल सुविचार कर, होहिँ एक समता सरब ॥ ९ ॥

नरपतिमंडन नीति, पुरुषमंडन मनवीरज ।
 पंडितमंडन विनय, तालसरमंडन नीरज ॥
 कुलतियमंडन लाज, वचनमंडन प्रसन्नमुख ।
 भक्तिमंडन कवि धर्म, साधुमंडन समाधिसुख ॥
 भुजबलसमर्थ मंडन क्षमा, गृहपति मंडन विपुल धन ।
 मंडन सिद्धान्त रुचि सन्त कहँ, कायामंडन लबन धन ॥ १० ॥
 ज्ञानवन्त हठ गहै, निधन परिवार बढ़ावै ।
 विधवा करै गुमान, धनी सेवक है धावै ॥
 वृद्ध न समझै धर्म, नारि भर्ता अपमानै ।
 पंडित क्रिया विहीन, राय दुर्वुद्धि प्रमानै ॥
 कुलवंत पुरुष कुलविधितजै, बंधु न मानै बंधुहित ।
 सत्यासधार अन्न संग्रहै, ए जगमें मूरख विदित ॥ ११ ॥

इति श्रीनवरत्न कवित्त.

अथ अष्टप्रकारजिनपूजन लिख्यते.

देहा ।

जलधारा चन्दन पुहुपै, अक्षत अरु नैवेद ।
 दीप धूप फल अर्घ्ययुत, जिनपूजा वसुमेद ॥ १ ॥
 जल-मलिन वस्तु उज्ज्वल करै, यह स्वभाव जलमाहिं ।
 जलसौं जिनपद पूजतैं, कृतकैलङ्क मिट जाहिं ॥ २ ॥

१ लावण्यता. २ पुष्प. ३ किये हुए पाप.

चन्दन-तप्तवस्तु शीतल करै, चन्दन शीतल आप ।

चन्दनसों जिन पूजतें, मिटै मोहसंताप ॥ ३ ॥

पुष्प-पुष्प चापधर पुष्पशर, धारै मनमथ वीर ।

यातें पूजा पुष्पकी, हरै मदनशरपीर ॥ ४ ॥

अक्षत-तन्दुल धवल पवित्र अति, नाम सु अक्षत तास ।

अक्षतसों जिन पूजतें, अक्षय गुणपरकास ॥ ५ ॥

नैवेद्य-परम अन्न नैवेद्य विधि, क्षुधाहरण तन पोष ।

जिनपूजत नैवेद्यसों, मिटहि क्षुधादिक दोष ॥ ६ ॥

दीपक-आपा पर देखै सकल, निशिमें दीपक होत ।

दीपकसों जिन पूजतें, निर्मलज्ञानउद्योत ॥ ७ ॥

धूप-पावक दहै सुगंधिको, धूप कहावै सोय ।

सेवत धूप जिनेशको, कर्म दहन छल होय ॥ ८ ॥

फल-जो जैसी करनी करै, सो तैसा फल लेय ।

फल पूजा जिनदेवकी, निश्चय शिवफल देय ॥ ९ ॥

अर्घ-यह जिन पूजा अष्टविधि, कीजे कर शुचि अंग ।

प्रतिपूजा जलधारसों, दीजे अर्घ अमंग ॥ १० ॥

इति अष्टप्रकार जिनपूजन.

अथ दशदानविधान लिख्यते.

गो सुवर्ण दासी भवन, गज तुरंग परधान ।

कुलकलत्र तिल भूमि रथ, ये पुनीत दशदान ॥ १ ॥

१ धनुष. २ जो कमी क्षय न हो.

अब इनको विवरण कहं, भावितरूप वस्तुनि ।

अलखरीति अनुभवकथा, जो समझै सो दानि ॥ २ ॥

चौपाई ।

गो कहिये इन्द्री असिबाना । वछरा उमंग भोग पय पाना ॥

जो इसके रसमाहिं न राचा । सो सबच्छ गोदानी साँचा ॥३॥

कनक तुरंग सु अक्षर दानी । तीनों शब्द सुवर्ण कहानी ॥

ज्यों त्यागै तीनहुँकी साता । सो कहिये सुवरणको दाता ॥४॥

परावीन पररूप गरासी । यों दुर्वुद्धि कहावै दासी ॥

ताकी रीति तजै बन ज्ञाता । तव दासीदातार विख्याता ॥ ५ ॥

तनमन्दिर चेतन धरवासी । ज्ञानदृष्टि घट अन्तरभासी ॥

समझै यह पर है गुण मेरा । मन्दिरदान होहि तिहिं बेरा ॥ ६ ॥

अष्ट महामद बुरके साथी । ए कुकर्म कुदृष्टाके हाथी ॥

इनको त्याग करै जो कोई । गजदातार कहावै सोई ॥ ७ ॥

मनतुरंग चढ़ ज्ञानी दौरइ । लखै तुरंग औरमैं औरइ ॥

निज दृगको निजरूप गहावै । सो तुरंगको दान कहावै ॥ ८ ॥

अविनाशी कुलके गुण गावै । कुल कलित्र सहुद्धि कहावै ॥

बुद्धि अतीत धारणा फैली । वहै कलत्रदानकी सैली ॥ ९ ॥

ब्रह्मविलास तेल खलि माया । मिश्रपिण्ड तिल नाम कहाया ॥

पिण्डरूप गहि द्विविधा मानी । द्विविधा तजै सोइ तिलदानी ॥१०॥

जो व्यवहार अवस्था होई । अन्तरभूमि कहावै सोई ॥

तज व्यवहार जो लिश्रय मानै । भूमिदानकी विधि सो जानै ॥

शुक्ल ध्यान रथ चढ़ै सयाना । मुक्तिपन्थको करै पयाना ॥
 रहै अजोग जोगसों यागी । वहै महारथ रथको त्यागी ॥ १२ ॥
 ये दशदान जु मैं कहे, सो शिवशासनमूल ।
 ज्ञानवन्त सूक्ष्म गहै, मूढ़ विचारै थूल ॥ १३ ॥
 ये ही हित चित जानको, ये ही अहित अजान ।
 रागरहित विधिसहित हित, अहित आनकी आन ॥ १४ ॥

इति दशदानविधान.

अथ दश बोल लिख्यते.

चौपाई.

जिनकी मांति कहों समुझाई । जिनपद कहा सुनो रे भाई ॥
 धर्म स्वरूप कहावै ऐसा । सो जिनधर्म बखानौ जैसा ॥ १ ॥
 आगम कहो जिनागम सांचा । वरणों वचन और जिन वाचा ॥
 मत भाषहुँ जिनमत समुझावहुं । ये दश बोल जथारथ गावहुँ ॥ २ ॥

जिन-दोहा ।

सहज बन्धवन्दक रहित, सहित अनन्तचतुष्ट ।
 जोगी जोगअतीत मुनि, सो जिन आतम सुष्ट ॥ ३ ॥

जिनपद ।

विभि निषेध जानै नहीं, जहँ अखंड रस पान ।
 विमल अवस्था जो धरै, सो जिनपद परमान ॥ ४ ॥

धर्म ।

लहिये वस्तु अवस्तुमें, यथा अवस्थित जोय ।
 जो स्वभाव जाँमै सधै, धर्म कहावै सोय ॥ ५ ॥

जिनधर्म ।

पुरुष प्रमाण परंपरा, वचन बीज विस्तार ।
धैर्य अर्थकी अगमता, यह आगमकी द्वार ॥ ६ ॥

जिनआगम ।

जहां द्रव्य पट तत्त्व नव, लोकालोक विचार ।
विवरण करै अनंत नय, सो जिन आगम सार ॥ ७ ॥

वचन ।

कहुं अक्षर मुद्रा धैर्य, कहूं अनक्षर धार ।
मृषा सत्य अनुभव उभय, वचन चार परकार ॥ ८ ॥

जिनवचन ।

जाकी दशा निरक्षरी, महिमा अक्षर रूप ।
स्यादवादजुत सत्यमय, सो जिनवचन अनूप ॥ ९ ॥

मत ।

थापै निज मतकी क्रिया, निन्दै परमतरीति ।
कुलचारसों बाँधि रहै, यह मतकी परतीति ॥ १० ॥

जिनमत ।

अर्हत् देव सुसाधु गुरु, दया धर्म जहँ होय ।
केवल भाषित रीति जहँ, कहिये जिनमत सोय ॥ ११ ॥

इति दशबोल.

अथ पहेली लिख्यते.

कहरानामाकी चाल.

कुमति सुमति दोऊ ब्रजवनिता, दोऊको कन्त अवाची ।
 वह अजान पति मरम न जानै, यह भरतासों राची ॥ १ ॥
 यह सुबुद्धि आपा परिपूरण, आपापर पहिचानै ।
 लख लालनकी चाल चपलता, सौतसाल डर आनै ॥ २ ॥
 करै विलास हास कौतूहल, अगणित संग सहेली ।
 काहू समय पाय सखियनसों, कहै पुनीत पहेली ॥ ३ ॥
 मोरे आंगन विरवा उलझो, विना पवन झकुलाई ।
 ऊँचि डाल बड पात सघनवाँ, छाहँ सौतके जाई ॥ ४ ॥
 बोलै सखी बात मैं समुझी, कहूं अर्थ अव जो है ।
 तोरे घर अन्तरघटनायक, अदमुत विरवा सो है ॥ ५ ॥
 ऊँची डाल चेतना उद्धत, बड़े पात गुण भारी ।
 ममता बात गात नहिं परसै, छकनि छाह छत नारी ॥ ६ ॥
 उदय स्वभाव पाय पद चंचल, यातैं इत उत डोलै ।
 कबहूँ घर कबहूँ घर बाहिर, सहज सरूप कलोलै ॥ ७ ॥
 कबहूँ निज संपत्ति आकर्षै, कबहूँ परसै माया ।
 जब तनको त्यागनार करै तब, परै सौति पर छाया ॥ ८ ॥

१ इसको कवियों ने सार छन्द माना है, नरेन्द्र (जोगीरासा) की राह पर भी यह चलता है.

तोरे हिये डाह यों आवै, हौं कुलीन वह चेरी ।
कहै सखी सुन दीनदयाली; यहै हियाली तेरी ॥ ९ ॥

दोहा.

हिय आंगनमें प्रेम तरु, सुरति डार गुणपात ।
मगनरूप है लहलहै, विना द्वन्ददुखवात ॥ १० ॥
भरमभाव ग्रीषम भयो, सरस भूमि चितमाहिं ।
देश दशा इक सम भई, यहै सौतघर छाहिं ॥ ११ ॥

इति पहेली.

अथ प्रश्नोत्तरदोहा लिख्यते.

प्रश्न-कौन वस्तु वपु माहिं है, कहाँ आवै कहाँ जाय ।
ज्ञानप्रकाश कहा लखै, कौन ठौर ठहराय ॥ १ ॥
उत्तर-चिदानंद वपुमाहिं है, भ्रममाहिं आवै जाय ।
ज्ञान प्रकट आपा लखै, आपमाहिं ठहराय ॥ २ ॥
प्रश्न-जाको खोजत जगतजन, कर कर नानामेष ।
ताहि वतावहु, है कहा जाको नाम अलेख ॥ ३ ॥
उत्तर-जग शोधत कछु औरको, वह तो और न होय ।
वह अलेख निरमेष मुनि, खोजन द्वारा सोय ॥ ४ ॥
प्रश्न-उपजै विनसै थिररहै, वह अविनाशी नाम ।
भेदी तुम भारी मला!, मोहि वतावहु ठाम ॥ ५ ॥
उत्तर-उपजै विनसै रूप जड़, वह चिट्ठूप अखंड ।
जोग जुगति जगमें लसै, वसै पिण्ड ब्रह्मंड ॥ ६ ॥

प्रश्न-शब्द अगोचर वस्तु है, कष्टू कहौ अनुमान ।

जैसी गुरु आगम कही, तैसी कहौ सुजान ॥ ७ ॥

उत्तर-शब्द अगोचर कहत है, शब्दमाहिं पुनि सोय ।

स्यादवाद शैली अगम, विरला बूझै कोय ॥ ८ ॥

प्रश्न-वह अरूप है रूपमें, दुरिकै कियो दुराव ।

जैसे पावक काठमें, प्रगटे होत लखाव ॥ ९ ॥

उत्तर-हुतो प्रगट फिर गुपतमय, यह तो ऐसो नाहि ।

है अनादि ज्यों खानिमें, कंचन पाहनमाहि ॥ १० ॥

इति प्रश्नोत्तर दोहा.

अथ प्रश्नोत्तरमाला लिख्यते.

नमत शीस गोविन्दसों, उद्धव पूछत एम ।

कै विधि यम कै विधि नियम, कहो यथावत जेमा ॥ १ ॥

समता कैसी दम कहा, कहा तितिक्षा भाव

धीरज दान जु तप कहा, कहा सुभट विवसाव ॥ २ ॥

कहा सत्यरति है कहा, शौच त्याग धन इष्ट ।

यज्ञ दक्षिणा वलि कहा, कहा दया उतकिष्ट ॥ ३ ॥

कहा लाम विद्या कहा, लज्जा लक्ष्मी मूढ ।

सुख अरु दुख दोऊ कहा, को पंडित को मूढ ॥ ४ ॥

पंथ कुपंथ कहो कहा, स्वर्ग नरक चिंतौन ।

को बंधव अरु गृह कहा, धनी दरिद्री कौन ॥ ५ ॥

कौन पुरुष कहिये कृपण, को ईश्वर जग माहि ।

ये सब प्रश्न विचार मन, कही मधुप हरिपाहि ॥६॥

नारायण उत्तर कहै, सुन उद्धव मन लाय ।

द्वादश यम द्वादश नियम, कहूं तोहि समुझाय ॥७॥

दया सत्य धिक्ता क्षमा, अभय अचौर्य सुमौन ।

लाज असंग्रह अस्तिमत, संग त्याग तियबौन ॥ ८ ॥

हरि पूजा संतोष गुरु, भक्ति होम उपकार ।

जप तप तीरथ द्विविधि शुचि, श्रद्धा अतिथि अहार

सोरठा ।

कहे भेद चौवीस, भिन्न २ यम नियमके ।

रहे प्रश्न चौवीस, तिनके उत्तर अब सुनहु ॥ १० ॥

समता ज्ञान सुधारस पीजे । दम इन्द्रिनको निग्रह कीजे ॥

संकटसहन तितिक्षा वीरज । रसना मदन जीतवो धीरज ॥ ११ ॥

दान अमय जहँ दंड न दीजे । तप कामनानिरोध कहीजे ॥

अन्तरविजयसूरता सांची । सत्यब्रह्म दर्शन निरवाची ॥ १२ ॥

रतु अनक्षरी ध्वनि जहँ होई । करम अभाव शौचविध सोई ।

त्याग परम सत्यास विधाना । परम धरम धन इष्ट निधाना ॥ १३ ॥

ध्रुव धारणा यज्ञकी करनी । हित उपदेश दक्षिणा वरनी ॥

प्राणायाम बोधवल अक्षा । दया अशेष जन्तुकी रक्षा ॥ १४ ॥

लाम भावशुभगतिपरकाशा । विद्या सो जु अविद्यानाशा ॥

लाज कुकर्म गिलानि कहावै । लक्ष्मी नाम निराशा पावै ॥ १५ ॥

सुखदुःखत्यागबुद्धि सुखरेखा । दुःखं विषयारस भोगविशेषा ॥
 पंडित बंध मोक्ष जो जानै । मूरख देहादिक निज मानै ॥ १६ ॥
 मारग श्रीमुख आगम भाषा । उत्तपथ कुधी कुमन अभिलाषा ॥
 सुकृतिवासना स्वर्गविलासा । दुरित उछाह नर्क गतिवासा ॥ १७ ॥
 बंधव हितू स्वर्ग सुख दाता । गृह मानुषी शरीर विख्याता ॥
 धनी सो जु गुणरत्नमंडारी । सदा दरिद्री तृष्णाधारी ॥ १८ ॥
 कृपण सो जु विषयारसलोभी । ईश्वर त्रिगुणातीत अछोभी ॥
 बहुत कहां लगि कहों विचक्षण । गुण अरु दोष दोहुके लक्षण १९

दोहा ।

दृष्टि सुगुन अरु दोषकी, दोष कहावै सोय ।
 गुण अरु दोष जहां नहीं, तहाँ गुन परगट होय ॥ २० ॥
 इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धवहरिसंवाद ।
 भाषा कहत बनारसी, भानुसुगुरुपरसाद ॥ २१ ॥

इति प्रश्नोत्तरमालिका.

अथ अवस्थाष्टक लिख्यते.

दोहा ।

चेतनलक्षण नियतनय, सबै जीव इकसार ।
 मूढ़ विचक्षण परमसों, त्रिविधि रूप व्यवहार ॥ १ ॥
 मूढ़ आतमा एक विधि, त्रिविधि विचक्षण जान ।
 द्विविधि भाव परमात्मा, षट्विधि जीव बखान ॥ २ ॥

विधि निषेध जानै नहीं, हित अनहित नहि सूझ ।

विषयमगन तन लीनता, यहै मूढकी वृद्ध ॥ ३ ॥

जो जिनमापित सरदहै, अम संशय सब सोय ।

समकितवंत असंजमी, अधम विचक्षण सोय ॥ ४ ॥

वैरागी त्यागी दमी, स्वपर विवेकी होय ।

देशसंजमी संजमी, मध्यम पंडित दोय ॥ ५ ॥

अप्रमाद गुण थानसों, क्षीणभोहलों दौर ।

श्रेणिवारणा जो धरै, सो पंडित त्रिरमौर ॥ ६ ॥

जो केवल पद आचरै, चढ़ि सयोगिगुणधान ।

सो जंगम परमात्मा, भववासी भगवान ॥ ७ ॥

जिहिंपदमें सबपद मगन, ज्यों जलमें जल बुन्द ।

सो अविचल परमात्मा, निराकार निरदुन्द ॥ ८ ॥

इति अवस्थाष्टक.

अथ षट्दर्शनाष्टक लिख्यते.

शिवमत बौद्ध रुं वेदमत, नैयायिक मतदक्ष ।

मीमांसकमत जैनमत, षट्दर्शन परतक्ष ॥ १ ॥

शैवमत ।

देव रुद्र जोगी सुगुरु, आगम शिवमुख भाख ।

गनै कालपरणति धरम, यह शिवमतकी साख ॥ २ ॥

बौद्धमत ।

देव बुद्ध गुरु पाधड़ी, जगत वस्तु छिन औष ।
शून्यवाद आगम भजै, चारवाक मत वौष ॥ ३ ॥

वेदान्तमत ।

देव ब्रह्म अद्वैत जग, गुरु वैरागी भेष ।
वेद ग्रन्थ निश्चय धरम, मत वेदान्तविशेष ॥ ४ ॥

न्यायमत ।

देव जगतकरता पुरुष, गुरु सन्यासी होय ।
न्याय ग्रन्थ उद्यम धरम, नैयायिक मत सोय ॥ ५ ॥

मीमांसकमत ।

देव अलख दरवेश गुरु, मानें कर्म गिरंथ ।
धर्म पूर्वकृतफलउदय, यह मीमांसक पंथ ॥ ६ ॥

जैनमत ।

देव तीर्थकर गुरु यती, आगम केवलि वैन ।
धर्म अनन्त नयातमक, जो जानै सो जैन ॥ ७ ॥
ए छहमत छै भेदसों, भये छूट कछु और ।
प्रतिषोढस पाखंडसों, दशा छ्यानवे और ॥ ८ ॥

इति षट्दर्शनाष्टक.

अथ चातुर्वर्ण लिख्यते.

जो निश्चय मारग गहै, रहै ब्रह्म गुणलीन ।
ब्रह्मदृष्टि सुख अनुभवै, सो ब्राह्मण परवीन ॥ १ ॥

जो निश्चय गुण जानकै, करै शुद्ध व्यवहार ।
 जीतै सेना मोहकी, सो क्षत्री मुजमार ॥ २ ॥
 जो जानै व्यवहार नय, दृढ व्यवहारी होय ।
 शुभ करणीसों रम रहै, वैश्य कहावै सोय ॥ ३ ॥
 जो मिथ्यामत आदरै, रागद्वेषकी खान ।
 विनविवेक करणी करै, शूद्रवर्ण सो जान ॥ ४ ॥
 चार भेद करतूतिसों, ऊंच नीच कुलनाम ।
 और वर्णसंकर सबै, जे मिश्रित परिणाम ॥ ५ ॥

इति चातुर्वर्णं.

अथ अजितनाथजीके छंद.

गोयमगणहरपय नमो, सुमरि सुगुरु रविचन्द ।
 सरसुति देवि प्रसादलहि, गाऊं अजित जिनन्द ॥ १ ॥

छन्द.

श्रीअवध्यापुर देश सुहाबाजी ।

राजै तहं जितशत्रू रायाजी ॥

राया सुधर्म निधान सुन्दर, देवि विजया तसु धरै ।

तसु उदर विजय विमान सुरवर, स्वप्न सूचित अवतरै ॥

तव जन्म उत्सव करहिं वासव, मधुर धुनि गावाहिं सुरी ।

आनन्द त्रिसुवन जन वनारसि, धन्य श्रीअवध्यापुरी ॥ २ ॥

महियल राजिड अजित जिनंदाजी ।

गज वर लच्छन निर्मल चंदाजी ॥

चन्द्रा उदित इक्ष्वाक वंशहि, कुमति तिमर विनासिये ।
 सय साठ चार सुचाप परिमित, देह कंचन भासिये ॥
 दिढ़ पालिराज सु गहिय संजम, मुकति पथ रथ साजियो ।
 उत्पन्न केवल सुख बनारसि, अजित महियल राजियो ॥ ३ ॥

गढ़ योजनमहि रचें सुदेवाजी ।

अष्ट प्रतीहार करहिं सु सेवाजी ॥

सेवहिं अशोक प्रसून वरसत, दिव्यघुनि तहँ गाजहिं ।

चामर सिंहासन प्रभामंडल, छत्र तीन विराजहिं ॥

नवदेव दुंदभि सभा बारह, चौतिसों अतिशय सही ।

सुर असुर किन्नरगण बनारसि, रचित गढ़ योजन मही ॥ ४ ॥

लक्ष वहन्तरि पूरव आया जी ।

भोग सु जिनवर शिवपद पायाजी ॥

शिवपद विनायक सिद्धि दायक, कर्म महारिपु भंजनो ।

वरणे शिषैराबाद मंडन, भविक जनमनरंजनो ॥

सोलैसै सत्तर समय आश्वनि, मास सितपख वारसी ।

विनवत दुहं कर जोर सेवक, सिरीमाल बनारसि ॥ ५ ॥

इति श्रीअजित नाथके छन्द.

अथ शान्तिनाथजिनस्तुति.

वाकीमहम्मद खानके चंदवाकी द्वाला ।

सहि एरी ! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नाहि घरे ।
 सहि एरी ! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह घरे ॥
 चन्द जिवां मेरा बल्लम सोहै, नैन चकोरहिं सुक्खं करै ।
 जगज्योति सुहाई कीरतिछाई, बहु दुख तिमरवितान हरै ॥
 सहु कालविनानी अम्रतवानी, अरु मृगका लंछन कहिए ।
 श्रीशान्ति जिनेशनरोत्तमको प्रभु, आज मिला मेरी सहिए ! १
 सहि एरी ! तू परम सयानी, सुरज्ञानी रानी राजत्रिया ।
 सहि एरी ! तू अति सुकुमारी, वरन्यारी प्यारी प्राणप्रिया ॥
 प्राणप्रिया लखि रूप अचंभा, रति रंभा मन लाज रहीं ।
 कलधौत कुरंग कौल करि केसरि, ये सरि तोहि न होंहि कहीं ॥
 अनुराग सुहाग भाग गुन आगरि, नागरि पुन्यहिं लहिये ।
 मिलिं या तुझ कन्त नरोत्तमको प्रभु, धन्य सयानी सहिये ! २

बोहा ।

विश्वसेन कुलकमलरवि, अचिरा उर अवतार ।

धनुष सु चालिस कनकतन, वन्दहुं शान्ति कुमार ॥ ३ ॥

त्रिभंगी छन्द. (१०, ८, ८, ६)

गजपुर अवतारं, शान्ति कुमारं, शिवदातारं, सुखकारं ।

निरुपम आकारं, रुचिराचारं, जगदाधारं, जितमौरं ॥

१ सखि । ये, २ कमल, ३ समान, ४ कामदेवके जीतनेवाले.

कृतअरिसंहारं, महिमापारं, विगतविकारं, जगसारं ।
परहितसंसारं, गुणविस्तारं, जगनिस्तारं, शिवधारं ॥ ४ ॥

सकल सुरेश नरेश अरु, किन्नरेश नागेश ।
तिनिगणवन्दित चरणजुग, बन्दहुं शान्ति जिनेश ॥ ५ ॥
श्रीशान्तिजिनेशं, जगतमहेशं, विगतकलेशं, भद्रेशं ।
मविकमलदिनेशं, मतिमहिशेशं, मदनमहेशं, परमेशं ॥
जनकुमुदनिशेशं, रुचिरादेशं, धर्मधरेशं, चक्रेशं ।
भवजलपोतेशं^१ महिमनगेशं, निरुपमवेशं, तीर्थेशं ॥ ६ ॥

करत अमरनरमधुप जसु, वचन सुधारसपान ।
बन्दहुं शान्तिजिनेशवर, वदन निशेश समान ॥ ७ ॥
वररूप अमानं, अरितमभानं, निरुपमज्ञानं, गतमानं ।
गुणनिकरस्थानं, मुक्तिवितानं, लोकनिदानं, सध्यानं ॥
भवतारनयानं, कृपानिधानं, जगतप्रधानं, मतिमानं ।
प्रगटितकल्याणं, वरमहिमानं, शिवपददानं, मृगजानं ॥ ८ ॥

भवसागर भयभीत बहु, भक्तलोकप्रतिपाल ।
बन्दहुं शान्ति जिनाधिपति, कुगतिलताकरवाल ॥ ९ ॥
भंजितभवजालं, जितकलिकालं, कीर्तिविशालं, जनपालं ।
गतिविजितमरालं, अरिकुलकालं, वचनरसालं, वरभालं ॥
मुनिजलजमृणालं, भवभयशालं, शिवउरमालं, सुकुमालं ।
भवितरुषतमालं, त्रिभुवनपालं, नयनविशालं, गुणमालं ॥ १० ॥

कलश-छप्पय ।

हीर हिमालय हंस, कुन्द शरदम्ब निशाकर ।

कीर्तिकान्तिविस्तार, सार गुणगणरत्नाकर ॥

दुःकृति संतति धाम, कामविद्वेषिविदारण ।

मानमतंगजसिंह, मोहतर्दलन सुवारण ॥

श्रीशान्तिदेव जय जितमदन, वानारसि वन्दत चरण ।

भवतापहारिहिमकर वदन, शान्तिदेव जय जितकरण ॥ ११ ॥

इति श्रीशान्तिनाथ जिनस्तुति.

अथ नवसेनाविधान लिख्यते.

बेसरी छन्द ।

प्रथमहिं पत्ति नाम दल लेन । तासों त्रिगुण कहावै सेन ॥

सेन त्रिगुण सेनामुख ठीक । सेनामुखसों त्रिगुण अनीक ॥ १ ॥

कीजे त्रिगुण वाहिनी सोइ । वाहनि त्रिगुण चमूदल होइ ॥

त्रिगुण बरूथनि दल परचंड । तासों त्रिगुण कहावै दंड ॥ २ ॥

बोहा ।

दंड कटक दशगुण करहु, तव अछौहिणी जान ।

हयगय रथ पायक सहित, ये तव कटक बखान ॥ ३ ॥

पत्ति ।

एक मतंगज एक रथ, तीन तुरंग प्रधान ।

सुमट पंच पायक सहित, पत्ति कटक परवान ॥ ४ ॥

सेना । चौपाई.

नव तुरंग रथ तीन सुभायक । हस्ती तीन पंचदश पायक ।
बल चतुरंग और नहिं लेन । यह परवान कहावै सेन ॥ ५ ॥

सेनामुख ।

सत्ताइस घोड़े नव हाथी । पैतालिस पायकनर साथी ।
नवरथ सहित कटक जो होई । दल सेनामुख कहिये सोई ॥ ६ ॥

अनीकनी ।

मत्त मतङ्ग सात अरु बीस । पवन वेग रथ सत्ताईस ।
अनुग एकसौ पैतिस ठीक । हय इक्यासी सहित अनीका ॥ ७ ॥

बाहिनी । आभाजक छन्द ।

इक्यासी गजराज घोरघन गाजने ।

इक्यासी परमान महारथ राजने ॥

तीन अधिक चालीस तुरंगम दोयसो ।

अनुग चारसौपंच बाहिनी होय सो ॥ ८ ॥

चम्पू । गीता छन्द ।

गज दोयसैतेताल रथवर, दोयसौ तेताल ।

है सातसो उन्तीस परमित, जातिवन्त रसाल ॥

जहँ सुमट बारह सौ सुपायक, अधिक दश अरु पंच ।

सो चमूदल चतुरंग शोभित, सहित नर तिरजंच ॥ ९ ॥

विरूथिनी ।

रथ सातसै उनतीस कुंजर, सातसै उनतीस ।

हय एक विंशति सै सतासी, चपल उन्नत सीस ॥

छत्तीससौ बलवंत पायक, अधिक पैतालीस ।
सो है बरूथनि कटक दुर्द्धर, चटक सुन्दर दीस ॥ १० ॥

दंड-रोला ।

कुंजर दोय हजार एक सौ असी सात गनि ।
जेते गज तेते प्रमान रथराज रहे बनि ॥
नवसौ पैतिस दशहजार पायक प्रचंड बल ।
पैसठसै इकसठ तुरंग यह दंड नाम दल ॥ ११ ॥

अक्षौहिणी-छप्पय ।

गज इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर गज्जहिं ।
रथ इकवीस हजार, आठ सौ सत्तर सज्जहिं ॥
एक लाख अरु नवहजार नर सुमट सुभायक ।
तिस ऊपर तीनसौ अधिक पंचास सुपायक ॥
सोहत तुरंग पैसठ सहस, छसौ अधिक दश और लिय ।
इहिविधि अभंग चतुरंग दल, अक्षौहिणी प्रमाण किय ॥ १२ ॥

इति नवसेना विधान.

अथ नाटकसमयसारसिद्धान्तके पाठान्तर
कलशोंका भाषानुवाद.

मनहर ।

प्रथम अज्ञानी जीव कहै मैं सदीव एक,
दूसरों न और मैं ही करता करमको ।

अन्तर विवेक आयो आपापर भेद पायो,
 भयो बोध गयो मिट भारत भरमको ॥
 भासे छह द्रव्यनके गुण परजाय सव,
 नाशे दुख लख्यो मुख पूरण परमको ।
 करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड,
 आप करतार भयो आतम धरमको ॥ १ ॥

दोहा ।

जीव चेतना संजुगत, सदाकाल सव ठौर
 तातैं चेतनभावको, कर्ता जीव न और ॥ २ ॥

गीतिका ।

जे पूर्वकर्मजदयविषयरस, भोगमगन सदा रहैं ।
 आगम विषयसुख भोग वांछहिं, ते न पंचमगति लहैं ॥
 जिस हिये केवल वृक्ष अंकुर, शुद्ध अनुभव दीप है ।
 किरिया सकल तज होहिं समरस, तिनहिं मोक्ष समीप है ॥ ३ ॥
 कौऊ विचक्षण कहै मो हिय, शुद्ध अनुभव सोहये ।
 मैं भावि नय परिमाण निर्मल, निराशी निरमोहये ॥
 समध्यान देवल माहिं केवल देव परगट भासहीं ।
 कर अष्टयोग विभावपरिणति, अष्ट कर्म विनाशहीं ॥ ४ ॥

इति नाटक कलश भाषानुवाद.

अथ मिथ्यामतवाणी.

मनहर ।

नारायण देवको कहैं कि परनारी रत्न,
 ब्रह्माको कहैं कि इन कन्या निज वरी है ।
 सिद्धको कहैं कि फिर फिर अवतारं धरै,
 शंकरको कहैं याकी मारी सृष्टि मरी है ।
 अचला कहावै भूमि सो कहैं पताल गर्ह,
 अनन्त बाराहरूप धरिके उद्धरी है ।
 ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
 पापकी कहानी दुखदानी दोषमरी है ॥ १ ॥
 संतान उपजै नर देवके संजोगसेती,
 कनककी लंका कहैं अगनिसें जरी हैं ।
 शास्वतो सुमेरु सो उखारि कहैं मध्यो सिन्धु,
 इन्द्रको कहत गौतमकी नारि धरी है ॥
 भीम हारे हाथी ते अकाशमें फिरैं सदीव,
 वायस भुशुंड अविनाशी काया करी है ।
 ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
 पापकी कहानी दुखदानी दोषमरी है ॥ २ ॥
 मैलकी बनाई मुद्रा सो कहैं गणेश भयो,
 सरिताको कहैं सूरजसें अवतरी है ।

द्रोपदी सतीको कहें याके पंच सरतार,
 कुन्तीह्वको कहें पांच वार व्यभिचरी है ॥
 रामसे विवेकीको कहें सुगंध अवतार,
 ढामको सँवारो सुत नाम कुशहरी है ।
 ऐसी मिथ्यामतवानी मूढ़नके मनमानी,
 पापकी कहानी दुखदानी दोषमरी है ॥ ३ ॥

गाथा ।

कुमाहगहगहियाणं मूढो जो देइ धम्मउचएसो ।
 सो चम्मासी कुक्कर वयणंमि खोइ कप्पूरं ॥ ४ ॥

इति मिथ्यामतवाणी.

अथ प्रास्ताविक फुटकर कविता लिख्यते.

मनहर ।

पूरव कि पश्चिम हो उच्चर कि दक्षिण हो,
 दिशि हो कि विदिश कहउ तहां घाइये ।
 पड़िये पड़ाइये कि गंड़िये गड़ाइये कि,
 नाचिये नचाइये कि गाइये गवाइये ॥
 न्हाये विन खाइये कि न्हायकर खाइये कि,
 खाय कर न्हाइये कि न्हाइये न खाइये ।
 जोग कीजे भोग कीजे दान दीजे छीन लीजे,
 जिहि विधि जाने जाहु सो विधि बताइये ॥ १ ॥

दिशि औ विदिशि दोऊ जगतकी भरजाद,
 पहिये शब्द गढ़िये सु जड़ साज है ।
 नाचिये सुचित्त चपलाय गाइये सुधुनि,
 न्हाइये सुजन शुचि खाइये सुनाज है ॥
 परको संजोग सुतो योग विषै स्वाद भोग,
 दीजे लीजे मायासो तो भरमको काज है ।
 इनतें अतीत कोऊ चेतनको पुंज तोमें,
 ताके रूप जानवेको जानवो इलाज है ॥ २ ॥
 लोभवन्त मानुष जो औगुण अनन्त तामें,
 जाके हिये दुष्टता सो पापी परधीन है ।
 जाके मुख सत्यबानी सोई तपको निधानी,
 जाकी मनसा पवित्र सो तीरथधान है ॥
 जामैं सज्जनकी रीति ताकी सबहीसों प्रीति,
 जाकी मली महिसां सो आयरणवान है ।
 जामें है सुविद्या सिद्धि ताही के अट्टट्ठाद्धि,
 जाको अपजस सो तो मृतक समान है ॥ ३ ॥
 कंचनमंदार पाय रंच न भगन हूजे,
 पाय नवयोवना न हूजे जोवनारसी* ।

छ पुस्तकमें बीचके दो पाद ऐसे हैं—

* ऐसी अतिधारा कालपत्रमके बीचपड़ी,
 धारा जिनीकूप बीच पड़ी छु बनारसी ।

काल असिधारा जिन जगत बनाए सोई,
 कामिनी कनक मुद्रा दुहुंको बनारसी ॥
 दोऊ विनाशी सदीव तूहै अविनाशीजीव,
 या जगत कूपवीच ये ही डोबनारसी ।
 इनको तू संगत्याग कूपसों निकसि भाग,
 प्राणी भेरे कहे लाग कहत बनारसी ॥ ४ ॥
 (पादान्त्यमक).

जीवके वधैया वामविद्याके सधैया दावा,
 नलके दधैया वन आखेटक करमी ।
 जुआरी लवार परधनके हरनहार,
 चौरीके करनहार दारीके अशरमी ॥
 मांसके भलैया सुरापानके चलैया,
 परबधूके ललैया जिनके हिये न नरमी ।
 रोषके गहैया परदोषके कहैया येते,
 पापी नर नीच निरदै महा अधरमी ॥ ५ ॥

सत्तगयन्द ।

सम्यक ज्ञान नहीं उर अन्तर, कीरतिकारण भेष बनावें ।
 भौन तजें वनवास गहें मुख, मौन रहें तपसों तन जावें ॥
 जोग अजोग कछू न विचारत, मूर्ख लोगनको भरमावें ।
 फैल करें बहु जैन कथा कहि, जैन बिना नर जैन कहावें ॥ ६ ॥

माईवंधु दारासुत कुटुंबके लोक सब,
 इनके समत्वको तू त्यागरे बनारसी ।

वीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी ।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अतिभासी ॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी ।
भाव कुटुंब सदा जिनके द्विग, यों मुनिको कहिये गृहवासी ॥७॥

मनहर ।

मानुष जनम लह्यो सम्यक् द्रष्टृ गह्यो,
अजहं विपै विलास त्याग मन वावरे ।
संपति विपति आये हरप विषाद छोड़,
ताही ओर पीठ ओढ़ जैसी बहै वावरे ॥
भौथिति निकट आई समता सुखाह पाई,
गयो है निधति जल मिथ्यात डुबावरे ।
टूटैगो करम फास छूटैगो जगत बास,
केवल उदै समीप आयो परेवा वरे ॥ ८ ॥

(पादान्तयमक)

जामें सदा उत्पत्त रोगनसों छीजै गात,
कलू न उपाय छिन छिन आयु खपनो ।
कीजे बहु पाप औ नरक दुख चिन्ता व्याप,
आपदा कलापमें विलाप ताप तपनो ॥
जामें परिगहको विषाद मिथ्या वक्ताद,
विपैभोग सुखको सवाद जैसो सपनो ।
ऐसो है जगतबास जैसो चपल विलास,
तामें तूं मगन भयो त्याग धर्म अपनो ॥ ९ ॥

मत्तगयंद ।

पुण्य सँजोग जुरे रथ पायक, माते मतंग तुरंग तवेले ।
मान विमौ अँग यो सिरमार, कियो विसतार परिग्रह ले ले ॥
बंध बढ़ाय करी थिति पूरण, अंत चले उठ आप अकेले ।
हारि हमालकी पोदसी डारिके, और दिवारकी ओट ब्रै खेले १०

छप्पय व्है.

धान यान मिष्टान, मोम मादक नवनिजै ।
लवण हिंगु घृत तैल, वनिजकारण नहिं लिजै ॥
पशुभाड़ा पशुवणिज, शल विक्रय न करिजै ।
जहां निरन्तर अग्नि करम, सो वणिज न किजै ॥
मधु नील लाख विप वणिज तज, कूप तलाव न सोखिये ।
लहिये न धरम गृह वासवस, हिंसक जीव न पोखिये ॥११॥

सुकताको स्वामी चन्द मृगानाथ महीनन्द
गोमेदक राजा राहु लीलापति शनी है ।
केतु लहसुनी सुरपुण्य राग देव गुरु,
पद्माको अधिप बुध शुक्र हीरा धनी है ॥
याही क्रम कीजे घेर दक्षिणावरत फेर,
माणिक सुमेरवीच प्रभु दिन मनी है ।
आठों दल आठ ओर, करणिका मध्य ठोर
कौलकेसे रूप नौ गृही अनूप वनी है ॥ १२ ॥
बालक दशाकी मरजाद दश वरस लों,
बीस लों बढ़ति तीसलों सुछवि रही है ॥

चालीस लों चतुराई पंचास लों धूलताई,
साठ लग लोचनकी दृष्टि लहलही है ॥
सत्तर लों श्रवण असी लों पुरुषत्व निर्या-
नवे लग इंद्रिजकी शक्ति उमही है ।
सौलें चित चेत एक सौ दशोत्तरलों आयु,
मानुष जनम ताकी पूरीधिति कही है ॥ १३ ॥

चौदह विद्याओंके नाम यथा—

छप्पय ।

ब्रह्मज्ञान चातुरीवान, विद्या हय वाहन ।
परम धरम उपदेश, बाहुबल जल अबगाहन ॥
सिद्ध रसायन करन, साथि सप्तमसुर गावन ।
वर सांगीत ग्रमान, नृत्य बाजिन्त्र दजावन ॥
व्याकरण पाठ मुख वेद धुनि, ज्योतिष चक्र विचारचित ।
वैद्यक विधान परवीनता, इति विद्या दशचार मित ॥ १४ ॥

छत्तीस पौन (जाति) के नाम कवित्त.

शीसगर दरजी तंवोली रंगवाल ग्वाल,
बढ़ई संगतरास तेली घोषी धुनियाँ ।
कंदोई कहार काछी कुलाल कलाल माली,
कुंदीगर कामदी किसान पटुनियाँ ॥
चितेरा बिधेरा बारी लखेरा ठठेरा राज,
पटुवा छप्परबंध नाई मारसुनियाँ ।

सुनार लोहार सिकलीगर हवाईगर,

धीवर चमार एही छत्तीस पवुनियाँ ॥ १५ ॥

एक सौ अड़तालीस प्रकृति

वस्तु छन्द.

सत्तुट्टहि सत्तुट्टहि तुरीय गुण थान ।

तहं तीन व्युच्छतिभई नवठाण छत्तीस जानहु ।

दशमें पुनि इक लोभ वारमें सोलह खिपानहु ।

वहत्तर तेरम नसै, तेरह चौदम एवि ।

एम पैडि अड़ताल सौ, होय सिद्ध तोडेवि ॥ १६ ॥

छप्पय ।

एक जान द्वै तोरि, तीन रम चार न भासहु ।

पंच जीत पटराख, सात तज आठ विनाशहु ॥

नव संभारि दश धारि, ग्यारमहिं वारह भावहु ।

तेरह तिर चौदहें चढ़त, पन्द्रह विलगावहु ॥

सोलहन भेटि सत्रह भजहु, अठ्ठारह कंहं करहु छय ।

सम गणि उनीस वीसहिं विरचि, वानारसि आनंद मय १७

तात्पर्य—दोहा ।

शुद्ध आतमा एक जिन, राग द्वेष द्वय बंध ।

तीन शुद्ध ज्ञानादि गुण, चारों विकथा धंध ॥ १८ ॥

प्रबल पंच इन्द्री सुभट, षट विधि जीवनिकाय ।

जुआ आदि सातों व्यसन, अष्टकर्म समुदाय ॥ १९ ॥

ब्रह्मचर्यकी बाढ़ि नव, दश मुनिधर्मविचार ।

म्यारह प्रतिमा श्रावकी, बारह भावन सार ॥ २० ॥

तेरह थानक जीव के, चौदह गुण ठानाइ ।

पन्द्रह जोग शरीरके, सोलह भेद कहाइ ॥ २१ ॥

सत्रह बिधि संयम सही, जीव समास उनीस ।

दोष अठारह जान सब, पुढलके गुण बीस ॥ २२ ॥

इति प्रस्ताविक फुटकर कविता ।

अथ गोरखनाथके वचन.

चौपाई ।

जो भग देख भामिनी मानै । लिङ्ग देख जो पुरुष प्रमानै ॥

जो बिन चिह्न नपुंसक जोवा । कह गोरख तीनों घर खोवा ॥ १ ॥

जो घर त्याग कहावे जोगी । घरवासीको कहै जु भोगी ।

अन्तरभाव न परखै जोई । गोरख बोलै मूरख सोई ॥ २ ॥

पढ़ ग्रन्थहिं जो ज्ञान बखानै । पवन साध परमारथ मानै ।

परम तत्त्वके होहिं न मरमी । कह गोरख सौ महाअधर्मी ॥ ३ ॥

माया जोर कहै मैं ठाकर । माया गये कहावै चाकर ।

माया त्याग होय जो दानी । कह गोरख तीनों अज्ञानी ॥ ४ ॥

क्रोमल पिंड कहावै चेला । कठिन पिंडसों ठेला पेला ।

जूना पिंड कहावै बूढा । कह गोरख ए तीनों मूढा ॥ ५ ॥

विन परिचय जो वस्तु विचारै । ध्यान अग्नि विनतन परजारै ।
 ज्ञानमगन विन रहै अबोला । कह गोरख सो बाला मोला ॥६॥
 सुनरे बाचा चुनियाँ मुनियाँ । उलट वेधसों उलटी दुनियाँ ।
 सतगुरु कहै सहजका धंधा । वाद विवाद करै सो अंधा ॥७॥

इति गोरखनाथके वचन.

अथ वैद्य आदिके भेद.

वैद्यलक्षण.

कर्म रोगकी प्रकृती पावै । यथायोग्य औषधि फरमावै ।
 उदय नाडिकाकी गति जानै । सो सुवैद्य मेरे मन मानै ॥१॥

ज्योतिषीलक्षण.

नवरस रूप गिरह पहिचानै । बारह राशि भावना भानै ॥
 सहज संक्रमण साधै जोई । ज्योतिषराय ज्योतिषी सोई ॥२॥

वैष्णवलक्षणदोहा ।

तिलक तोष माला विरति, मति मुद्रा श्रुति छाप ।

इन लक्षणसों वैष्णव, समुझै हरि परताप ॥ ३ ॥

जो हरि घटमें हरि लखै, हरि बाना हरि वोइ ।

हरि छिन हरि सुमरन करै, विमल वैष्णव सोइ ॥४॥

मुसलमानलक्षण.

जो मन मूसै आपनो, साहिबके रूस होय ।

ज्ञान मुसल्ला गह टिकै, मुसलमान है सोय ॥ ५ ॥

गह्वर लक्षण.

जो मन लावे मरमसो, परम प्राप्ति कहैं सोय ।

जहँ विवेकको वर गयो, गवर कहावै सोय ॥ ६ ॥

एक रूप हिन्दू तुलक, दूजी दशा न कोय ।

मनकी द्विविधा मानकर, मये एकसो दोय ॥ ७ ॥

दोऊं मूले मरममें, करें वचनकी टेक ।

राम राम हिन्दू कहैं, तुर्क सलामालेक ॥ ८ ॥

इनके पुस्तक बाँचिये, वेहू पढ़ें कितेव ।

एक वस्तुके नाम द्वय, जैसे शोभा, जेव, ॥ ९ ॥

तिनको द्विविधा-जे लखें, रंग विरंगी चाय ।

मेरे नैनन देखिये, घट घट अन्तर राम ॥ १० ॥

यहै गुप्त यह है प्रगट, यह बाहिर यह माहिं ।

जब लग यह कछु है रहा, तब लग यह कछु नाहिं ११

ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उड़हिं सुमति सग होय ।

यथाशक्ति उद्यम करहिं, धार न पावहिं कोय ॥ १२ ॥

गढ़ वस्तु सोचै नहीं, आगम चिंता नाहिं ।

वर्तमान वरतै सदा, सो ज्ञाता बगमाहिं ॥ १३ ॥

जो बिलसै सुख संपदा, गये ताहिं दुख होय ।

जो धरती बहु तृणवती, जै अग्निसो सोय ॥ १४ ॥

धन पाये मन लहलहै, गये करै चित शोक ।

मोजन कर केहरि लखै, वरुचि कैसो वोके ॥ १५ ॥

माया छाया एक है, घटै बढै छिनमाहिं ।

इनकी संगति जे लगै, तिनहिं कहीं सुख नाहिं ॥ १६ ॥

जे मायासों राचिके, मनमें राखहिं वोझ ।

कै तो तिनसों खर भलो, कै जंगलको रोझ ॥ १७ ॥

इस माया के कारणै, जेर कटावहिं सीस ।

ते मूरख क्यों कर सकैं, हरिभक्तनकी रीस ॥ १८ ॥

लोभ मूल सब पापको, दुखको मूल सनेह ।

मूल अजीरण व्याधिको, मरणमूल यह देह ॥ १९ ॥

जैसी मति तैसी दशा, तैसी गति तिह पाहिं ।

पशु मूरख भूपर चलहिं, खग पंडित नभमाहिं ॥ २० ॥

सम्यकदृष्टी कुक्रिया, करै न अपने वश्य ।

पूरव कर्म उदोत है, रस दे जाहिं अवश्य ॥ २१ ॥

जो महंत है ज्ञानविन, फिरै फुलाये गाल ।

आप मत्त और न करै, सो कलिमाहिं कलाल ॥ २२ ॥

ज्यों पावक विन नहिं सरै, करै यदपि पुर दाह ।

त्यों अपराधी मित्रकी, होय सबनको चाह ॥ २३ ॥

कर्त्ता जीव सदीव है, करै कर्म स्वयमेव ।

यह तन कृत्रिम देहरा, तामें चेतन देव ॥ २४ ॥

केवलज्ञानी कर्मको, नहिं कर्त्ता विन प्रेम ।

देह अकृत्रिम देहरा, देव निरंजन एम ॥ २५ ॥

भूमि यान घन धान्य गृह, साजन कुप्य अपार ।
 सयनासन चौपद द्विपद, परिगह दश परकार ॥ २६ ॥
 खान पान परिधान पट, निद्रा मूत्र पुरीस ।
 ये षट् कर्म सर्वाहिं करे, राजा रंक सरीस ॥ २७ ॥
 उचित वसन सुरुचित असन, सलिल पान सुख सैन ।
 बड़ी नीति लघुनीतिसों, होय सबनको चैन ॥ २८ ॥

चतुर्दश नियम

विगै दरब तंबोल पट, शील सचित्त स्नान ।
 दिशि अहार पान रु पुहुप, सयन विलेपन यान ॥ २९ ॥
 शीलवन्त मंडै न तन, अधि पद गहै न संत ।
 पिताजात न हर्ने पिता, सती न मारहि कंत ॥ ३० ॥
 कामी तन मंडन करै, दुष्ट गहै अधिकार ।
 नारजात मारहि पिता, असति हर्ने भरतार ॥ ३१ ॥
 ज्ञानहीन करणी करै, यों निजमन आमोद ।
 ज्यों छेरी निज खुरहितें, छुरी निकासै खोद ॥ ३२ ॥
 राजक्रद्धि सुख भोगवें, ऐसे मूढ़ अजान ।
 महा सन्निपाती करहि, जैसें शरबत पान ॥ ३३ ॥
 जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संशय तहँ सोग ।
 सतगुरु विन भागें नहीं, दोऊ जालिम रोग ॥ ३४ ॥
 जे आशाके दास ते, पुरुष जगतके दास ।
 आशा दासी जास की, जगत दास है तास ॥ ३५ ॥

संसारी उद्धार तज, धरै रोक पर प्यार ।
 ज्ञानी रोक न आदरै, करै दरब उद्धार ॥ ३६ ॥
 कारण काल न जो लखै, भेद अमेद न जान ।
 वस्तुरूप समुझै नहीं, सो मूरख परधान ॥ ३७ ॥
 देव धर्म गुरु ग्रन्थ मत, रत्न जगतमें चार ।
 सांचे लीजे परखिके, झूठे दीजे डार ॥ ३८ ॥
 अठ्ठारहदूषणरहित, देव सुगुरु निरग्रन्थ ।
 धर्म दया पूरवअपर,—मतअविरोधि सुग्रन्थ ॥ ३९ ॥
 सुनिकै वाणी जैनकी, जैन धरै मन ठीक ।
 जैनधर्म विन जीवकी, जैन न होय तहकीक ॥ ४० ॥
 उपजै उर सन्तुष्टता, दग दुष्टता न होय ।
 मिटै मोहमदपुष्टता, सहज सुष्टता सोय ॥ ४१ ॥

इति वैद्यलक्षणादि प्रस्ताविक कविता.

अथ परमार्थवचनिका लिख्यते ।

एक जीवद्रव्य ताके अनंत गुण अनन्त पर्याय. एक
 एक गुणके असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशनिविष्ट अनन्त
 कर्मवर्गणा, एक एक कर्मवर्गणाविष्ट अनन्त अनन्त पुद्गल परमाणु
 एक एक पुद्गल परमाणु अनन्त गुण अनंत पर्यायसहित
 विराजमान. यह एक संसारावस्थित जीव पिंडकी अवस्था.
 याहीभांति अनन्त जीवद्रव्य सर्पिडरूप जानने. एकजीव द्रव्य

अनंत अनन्त पुद्गलद्रव्यकरि संयोगित (संयुक्त) मानने ।
ताको व्यौरौ,—

अन्य अन्यरूप जीवद्रव्यकी परनति; अन्य अन्यरूप
पुद्गलद्रव्यकी परनति, ताको व्यौरौ—

एक जीवद्रव्य जा भांतिकी अवस्थालिये नानाकाररूप
परिनमै सो भांति अन्य जीवसों मिलै नाहीं । वाकी और
भांति । आहीभांति अनंतानंत स्वरूप जीवद्रव्य अनन्तानंत
स्वरूप अवस्थालिये वर्तहिं । काहु जीवद्रव्यके परिनाम
काहु जीवद्रव्य औरस्यों मिलइ नाहीं । याही भांति एक
पुद्गल परवानू एक समयमाहिं जा भांतिकी अवस्था धरै, सो
अवस्था अन्य पुद्गल परवानू द्रव्यसों मिलै नाहीं । तातैं
पुद्गल (परमाणु) द्रव्यकी मी अन्य अन्यता जाननी ।

अथ जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य एक छेत्रावगाही अनादिका-
लके, तामैं विशेष इतनौ जु जीवद्रव्य एक, पुद्गलपरवानू
द्रव्य अनंतानंत चलाचलरूप आगमनगमनरूप अनंताकार
परिनमनरूप बंधमुक्तिशक्तिलिये वर्तहिं ।

अथ जीवद्रव्यकी अनन्त अवस्था तामैं तीन अवस्था
मुख्य थापी । एक अशुद्ध अवस्था, एक शुद्धाशुद्धरूप
मिश्र अवस्था, एक शुद्ध अवस्था, ए तीन अवस्था संसारी
जीवद्रव्यकी । संसारातीत सिद्ध अनवस्थितरूप कहिये ।

अब तीनहुं अवस्थाकौ विचार—एक अशुद्ध निश्चया-

त्मक द्रव्य, एक शुद्धनिश्चयात्मक द्रव्य, एक मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य । अशुद्धनिश्चय द्रव्यको सहकारी अशुद्ध व्यवहार, मिश्रद्रव्यको सहकारी मिश्र व्यवहार, शुद्ध द्रव्यको सहकारी शुद्धव्यवहार ।

अब निश्चय व्यवहार को विवरण लिख्यते ।

निश्चय तो अमेदरूप द्रव्य, व्यवहार द्रव्यके यथास्थित भाव । परन्तु विशेष इतनो जु यावत्काल संसारावस्था तावत्काल व्यवहार कहिये. सिद्ध व्यवहारातीत कहिये, यातें जु संसार व्यवहार एकरूप दिसायौ. संसारी सो व्यवहारी, व्यवहारी सो संसारी ।

अब तीनहुं अवस्थाको विवरण लिख्यते ।

यावत्काल मिथ्यात्व अवस्था, तावत्काल अशुद्ध निश्चयात्मक द्रव्य अशुद्धव्यवहारी । सम्यग्दृष्टी होत मात्र चतुर्थ गुणस्थानकर्यौ द्वादशम. गुणस्थानकर्यन्त मिश्रनिश्चयात्मक द्रव्य मिश्रव्यवहारी । केवलज्ञानी शुद्धनिश्चयात्मक शुद्धव्यवहारी ।

अब निश्चय तौ द्रव्यको स्वरूप, व्यवहार संसारावस्थित भाव, ताको विवरण कहै हैं,—

मिथ्यादृष्टी जीव अपनौ स्वरूप नहीं जानतौ तातें परस्वरूपविषै भगन होय करि कार्य मानतु है ता कार्य करतौ छतौ अशुद्धव्यवहारी कहिए । सम्यग्दृष्टी अपनौ स्वरूप परोक्ष प्रमानकरि अनुभवतु है । परसत्ता परस्वरूपसौ अ-

पनौ कार्य नाही मानतौ संतौ जोगद्वारकरि अपने स्वरूपको ध्यान विचाररूप किया करतु है, ता कार्य करतौ मिश्र व्यवहारी कहिए. केवलज्ञानी यथास्यात्चारित्र्यके बलकरि शुद्धात्मस्वरूपको रमनशील है ताँतें शुद्धव्यवहारी कहिए. जोगारूढ अवस्था विद्यमान है ताँतें व्यवहारी नाम कहिए। शुद्धव्यवहारकी सरहद त्रयोदशम गुणस्थानकसँ लेइकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यंत जाननी। असिद्धत्वपरिणमनत्वात् व्यवहारः।

अथ तीनहुं व्यवहारको स्वरूप कहै हैं—

अशुद्ध व्यवहार शुभाशुभाचाररूप, शुद्धाशुद्धव्यवहार शुभोपयोगमिश्रित स्वरूपाचरनरूप, शुद्धव्यवहार शुद्धस्वरूपाचरनरूप। परन्तु विशेष इनको इतनौ जु कोऊ कहै कि—शुद्धस्वरूपाचरणात्म तौ सिद्धहृविषै छतौ है. उहां भी व्यवहार संज्ञा कहिए—सो यौ नाही—जाँतैं संसारी अवस्थापर्यन्त व्यवहार कहिए। संसारावस्थाके मिटत व्यवहार भी मिटी कहिए। इहां यह थापना कीनी है ताँतें सिद्धव्यवहारातीत कहिए। इति व्यवहारविचार समाप्तः।

अथ आगमअध्यात्मको स्वरूप कथ्यते।

आगम—वस्तुको जु स्वभाव सो आगम कहिए। आत्माको जु अधिकार सो अध्यात्म कहिए। आगम तथा अध्यात्म स्वरूप भाव आत्मद्रव्यके जानने। ते दोऊभाव संसार अवस्थाविषै त्रिकालवर्ती मानने। ताको न्यौरै—आगमरूप

कर्मपद्धति, अध्यात्मरूप शुद्धचेतनापद्धति । ताको व्यौरै-
कर्मपद्धति पौद्गलीकद्रव्यरूप अथवा भावरूप, द्रव्यरूप
पुद्गलपरिणाम, भावरूप पुद्गलाकारआत्माकी अशुद्धपरि-
णतिरूप, परिणाम—ते दोऊपरिणाम आगमरूप थापे । अव
शुद्धचेतनापद्धति शुद्धात्मपरिणाम सो भी द्रव्यरूप अथवा
भावरूप । द्रव्यरूप तौ जीवत्वपरिणाम—भावरूप ज्ञानद-
र्शन सुखवीर्य आदि अनन्तगुणपरिणाम, ते दोऊ परिणाम
अध्यात्मरूप जानने । आगम अध्यात्म दुहुं पद्धतिविषै
अनन्तता माननी ।

अनन्तता कहा ताको विचार—

अनन्तताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखाइयतु है जैसे—
वटवृक्षको बीज एक हाथविषै लीजै. ताको विचार दीर्घ
दृष्टिसौं कीजै तो वा वटके बीजविषै एक वटको वृक्ष है.
सो वृक्ष जैसो कछु भाविकाल होनहार है तैसो विस्तारलिये
विद्यमान चारै वास्तवरूप छतो है. अनेक शाखा प्रशाखा
पत्र पुष्पफलसंयुक्त है फल फलविषै अनेक बीज होंहि । या
मांतिकी अवस्था एक वटके बीजविषै विचारिए । भी और
सूक्ष्मदृष्टि दीजै तो जे जे वा वट वृक्षविषै बीज हैं ते ते
अंतर्गर्भित वटवृक्षसंयुक्त होंहि । याहीमांति एकवटविषै अनेक
अनेक बीज, एक एक बीज विषै एक एक वट, ताको विचार
कीजै तौ भाविनयप्रवानकरि न वटवृक्षनिकी मर्यादा पाइए

न बीजनिर्मी मर्यादा पाइए । याही भांति अनंतताको स्वरूप जाननौ । ता अनंतताके स्वरूपको केवलज्ञानी पुरुष भी अनन्तही देखै जाणै कहै—अनन्तको ओर अंत है ही नाही जो ज्ञानविषै भासै । तातैं अनंतता अनंतहीरूप प्रति भासै, या भांति आगम अध्यात्मकी अनंतता जाननी. तामैं विशेष इतनौ जु अध्यात्मको स्वरूप अनंत आगमको स्वरूप अनंतानंतरूप, यथापना प्रवानकरि अध्यात्म एक द्रव्याश्रित । आगम अनंतानन्त पुद्गलद्रव्याश्रित । इन दुहुंको स्वरूप सर्वथा प्रकार तौ केवलगोचर, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानप्राप्त तातैं सर्वथाप्रकार आगमी अध्यात्मी तो केवली, अंशमात्र मतिश्रुतज्ञानी, ज्ञातादेशमात्र अवधिज्ञानी मनःपर्यय ज्ञानी, ए तीनों यथावस्थित ज्ञानप्रमाण न्यूनाधिकरूप जानने । मिथ्यादृष्टी जीव न आगमी न अध्यात्मी है । कोहैतैं यातैं जु कथन मात्र तौ ग्रंथपाठके बलकरि आगम अध्यात्मको स्वरूप उपदेशमात्र कहै परन्तु आगम अध्यात्मको स्वरूप सम्यक् प्रकार जानैं नहीं । तातैं मूढ जीव न आगमी न अध्यात्मी, निर्वेदकत्वात् ।

अब मूढ तथा ज्ञानी जीवको विशेषपणौ और भी सुनो,—

ज्ञाता तो मोक्षमार्ग साधि जानै. मूढ मोक्षमार्ग न साधि जानै काहे—यातैं सुनो—मूढ जीव आगमपद्धतिको व्यवहार कहै अध्यात्मपद्धतिको निश्चय कहै तातैं आगम

अंग एकान्तपनौ साधिकै मोक्षमार्ग दिखावै अध्यात्म अंगको व्यवहारै न जानै यह मूढ़दृष्टीको स्वभाव, बाहि याही भांति सूझै काहेतैं ?—यातैं—जु आगम अंग वाह्यक्रियारूप प्रत्यक्ष प्रमाण है ताको स्वरूप साधिवो सुगम । ता वाह्यक्रिया करतौ संतौ आपकूं मूढ़ जीव मोक्षको अधिकारी मानै, अन्तरगर्भित जो अध्यात्मरूप क्रिया सो अंतरदृष्टिग्राह्य है सो क्रिया मूढ़जीव न जानै । अन्तरदृष्टिके अभावसँ अन्तर क्रिया दृष्टिगोचर आवै नाहीं, तातैं मिथ्यादृष्टी जीव मोक्षमार्ग साधिवेको असमर्थ ।

अब सम्यग्दृष्टीको विचार सुनौ—

सम्यग्दृष्टी कहा सो सुनो—संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाहीं सो सम्यग्दृष्टी । संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्तकरि दिखायतु है सो सुनो—जैसेँ चार पुरुष काहु एकस्थानकविषै ठाढ़े । तिन्ह चारिहुँके आगे एक सीपको खंड किनही और पुरुषनै आनि दिखायो । प्रत्येक प्रत्येकतैं प्रश्न कीनी कि यह कहा है सीप है कै रूपौ है. प्रथमही एक पुरुष संशैवालो बोल्यो—कछु सुध नाहीन परत, किधौ सीप है किधौ रूपौ है मेरी दिष्टिविषै याकौ निरधार होत नाहिनै । भी दूजो पुरुष विमोहवालो बोल्यो कि—कछू मोहि यह सुधि नाही कि तुम सीप कौनसँ कहतु है रूपौ कौनसँ कहतु है मेरी दृष्टिविषै कछु आवतु नाही तातैं हम नाहिनै जानत कि

तू कहा कहतु है अथवा चुप है रहै बोलै नाही गहरूपसौं ।
 भी तीसरो पुरुष विभ्रमवालो बोल्यो कि—यह तौ प्र-
 त्यक्षप्रमाण रूपो है याको सीप कौन कहै मेरी दृष्टिविषै तौ
 रूपो सूझतु है तातैं सर्वथाप्रकार यह रूपो है । सो तीनों
 पुरुष तौ वा सीपको स्वरूप जान्यौ नाही । तातैं तीनों मिथ्या-
 वादी । अब चौथौ पुरुष बोल्यो कि यह तौ प्रत्यक्ष प्रमाण
 सीपको खंड है यामैं कहा घोखो, सीप सीप सीप, निरधार सीप,
 याको जु कोई और वस्तु कहै सो प्रत्यक्षप्रमाण आमक अथवा
 अंध. तैसें सम्यग्दृष्टीको स्वरूपस्वरूपविषै न संसै न विमोह
 न विभ्रम अथार्थ दृष्टि है तातैं सम्यग्दृष्टी जीव अन्तरदृष्टिकरि
 मोक्षपद्धति साधि जानै । बाह्यभाव बाह्यनिमित्तरूप मानै, सो
 निमित्त नानारूप, एक रूप नाही, अन्तरदृष्टिके प्रमाण मो-
 क्षमार्ग साधै. सम्यग्ज्ञान स्वरूपाचरनकी कनिका जगो मोक्ष-
 मार्ग सांचौ । मोक्षमार्गकौ साधिवो यहै व्यवहार, शुद्धद्रव्य
 अक्रियारूप सो निश्चै । जैसें निश्चय व्यवहारकौ स्वरूप सम्य-
 ग्दृष्टी जानै. मूढ़ जीव न जानै न मानै । मूढ़ जीव बंधपद्धति-
 को साधिकरि मोक्ष कहै, सो बात ज्ञाता मानै नाही । काहेतैं
 यातैं जु बंधके साधते बंध सधै, मोक्ष सधै नाही । ज्ञाता
 जब कदाचित् बंधपद्धति विचारै तब जानै कि या पद्धतिसौं
 मेरो द्रव्य अनादिको बन्धरूप चलयो आयो है—अब या पद्ध-
 तिसौं मोहतौरि वहै तौ या पद्धतिको राग पूर्वकी त्यों हे

नर कहे करौ ? । छिन मात्र भी बन्धपद्धतिविषै मगन होय
 नाहीं सो ज्ञाता अपनो स्वरूप विचारै अनुभवै ध्यावै गावै
 श्रवन करै नवधामक्ति तप क्रिया अपने शुद्धस्वरूपके सन्मुख
 होइकरि करै । यह ज्ञाताको आचार, याहीको नाम
 मिश्रव्यवहार ॥

अब हेयज्ञेयउपादेयरूप ज्ञाताकी चालताको विचारलिख्यते—

हेय—त्यागरूप तौ अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ज्ञेय—विचार
 रूप अन्यषट्द्रव्यको स्वरूप, उपादेय—आचरण रूप
 अपने द्रव्यकी अशुद्धता, ताको व्यौरौ—गुणस्थानक प्रमान
 हेयज्ञेयउपादेयरूप शक्ति ज्ञाताकी होइ । ज्यों ज्यों ज्ञाताकी हेय
 ज्ञेयउपादेयरूप शक्ति वर्द्धमान होय त्यों त्यों गुणस्था-
 नककी बढवारी कही है. गुणस्थानकप्रवान ज्ञान गुणस्थानक
 प्रमान किया । तामैं विशेष इतनौ जु एक गुणस्थानकवर्ती
 अनेक जीव होंहि तौ अनेक रूपको ज्ञान कहिए, अनेक
 रूपकी क्रिया कहिए । मित्र मित्रसत्ताके प्रवानकरि एकता
 मिलै नाहीं । एक एक जीव द्रव्यविषै अन्य अन्य रूप उदी-
 क भाव होंहि तिन उदीकभावानुसारी ज्ञानकी अन्य अन्यता
 जाननी । परंतु विशेष इतनौ जु कोऊ जातिको ज्ञान ऐसो न
 होइ जु परसत्तावलंबनशीली होइकरि मोक्षमार्ग साक्षात् कहै
 काहेतैं अवस्थाप्रवान परसत्तावलंबक है । ज्ञानको परस-
 तावलंबी परमार्थता न कहै । जो ज्ञान होय सो स्वसत्तावलंबन.

शीली होइ ताको नाउ ज्ञान । ता ज्ञानकी सहकारमूत निमि-
चरूप नाना प्रकारके उदीकभाव होहि । तिन्ह उदीकभाव-
नको ज्ञाता तमासगीर । न कर्त्ता न भोक्ता न अवलंबी तातैं
कोऊ यों कहै कि या भांतिके उदीकभाव होहि सर्वथा तौ
फलानौ गुणस्थानक कहिये सो झूठो । तिनि द्रव्यकौ स्वरूप
सर्वथा प्रकार जान्यौ नाहीं । काहेतैं—यातैं जु और गुणस्थानक
निकी कौन बात चलावै केवलीके सी उदीकभावनिकी नाना-
त्वता जाननी । केवलीके सी उदीकभाव एकसे होय नाहीं ।
काह् केवलीकौ दंड कपाटरूप क्रिया उदै होय काह् केवली कौ
नाहीं । तौ केवलीविषे भी उदैकी नानात्वता है तो और गुणस्थान
ककी कौन बात चलावै । तातैं उदीक भावनिके मरोसे ज्ञान नाहीं
ज्ञान स्वशक्तिप्रधान है । स्वरूपप्रकाशक ज्ञानकी शक्ति शायक
प्रमाण ज्ञान स्वरूपाचरनरूप चारित्र यथा अनुभव प्रमाण यह
ज्ञाताको सामर्थ्यपनौ । इन बातनको व्यौरो कहाताई लिखिये कहां
ताई कहिए । वचनातीत इन्द्रियातीत ज्ञानातीत, तातैं यह विचार
बहुत कहा लिखिहि । जो ज्ञाता होइगो सो भौरी ही लिख्यो
बहुतकरि समुझैगो जो अज्ञानी होयगो सो यह चिन्नी सुनैगो
सही परन्तु समुझैगा नहीं यह—वचनिका यथाका यथा
सुमतिप्रधान केवलिवचनानुसारी है । जो याहिसुनैगो समुझै-
गो सरदहैगो ताहि कल्याणकारी है भाग्यप्रमाण ।

इति परमार्थवचनिका.

अथ उपादान निमित्तकी चिट्ठी लिख्यते—

प्रथम हि कोई पूछत है कि निमित्त कहा उपादान कहा ताको व्यौरौ—निमित्त तौ संयोगरूप कारण, उपादान वस्तुकी सहज शक्ति । ताको व्यौरौ—एक द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान, एक पर्यायार्थिक निमित्त उपादान, ताको व्यौरौ—द्रव्यार्थिक निमित्त उपादान गुणभेदकल्पना । पर्यायार्थिक निमित्त उपादान परजोगकल्पना । ताकी चौभंगी. प्रथम ही गुणभेद कल्पनाकी चौभंगीको विस्तार कहौं सो कैसैं,—ऐसैं—सुनौ—जीवद्रव्य ताके अनन्त गुण, सब गुण असहाय स्थाधीन सदाकाल । तामैं दोय गुण प्रधानमुख्य थापे, तापर चौभंगीको विचार एक तौ जीवकौ ज्ञानगुण दूसरो जीवको चारित्रगुण ।

ए दोनौ गुण शुद्धरूप भाव जानने । अशुद्धरूप भी जानने यथायोग्य स्थानक मानने ताको व्यौरौ—इन दुहूकी गति न्यारी न्यारी, शक्ति न्यारी न्यारी, जाति न्यारी न्यारी, सत्ता न्यारी न्यारी ताको व्यौरौ,—ज्ञानगुणकी तौ ज्ञान अज्ञानरूप गति, स्वपरप्रकाशक शक्ति, ज्ञानरूप तथा मिथ्यात्वरूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता, परंतु एक विशेष इतनौ जु ज्ञानरूप जातिको नाश नाही, मिथ्यात्वरूप जातिको नाश, सम्यग्दर्शन उत्पत्ति पर्यंत, यह तौ ज्ञान गुणको निर्णय भयो । अब चारित्र गुणको व्यौरौ कहै हैं,—संकलेस

विशुद्धरूप गति, शिरता अधिरता शक्ति, मंदी तीव्ररूप जाति, द्रव्यप्रमाण सत्ता । परंतु एक विशेष जु मंदताकी स्थिति चतुर्दशम गुणस्थानपर्यन्त । तीव्रताकी स्थिति पंचम-गुणस्थानक पर्यन्त । यह तौ दुहुकौ गुण मेद न्यारौ न्यारौ क्रियौ । अब इनकी व्यवस्था न ज्ञान चारित्रके आधीन न चारित्र ज्ञानके आधीन । दोऊ असहाय रूप यह तौ मर्यादा बंध ।

अथ चौमंगीको विचार—ज्ञानगुण निमित्त
चारित्रगुण उपादान रूप ताको व्यौरौ—

एक तो अशुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान दूसरो अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान । तीसरो शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान, चौथो शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान, ताको व्यौरौ—सूक्ष्मदृष्टि देहकरि एक समयकी अवस्था द्रव्यकी लेनी समुच्च-वरूप मिथ्यात्व सम्यक्त्वकी बात नाहीं चलावनी । काहू समै जीवनकी अवस्था या भांति होतु है जु ज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध चारित्र, काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान संकलेस रूप चारित्र, काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान संकलेस चारित्र, जा समै अज्ञानरूप गति ज्ञानकी, संकलेसरूप गति चारित्रकी तासमै निमित्त उपादान दोऊ अशुद्ध । काहू समै अज्ञानरूप ज्ञान विशुद्ध रूप चारित्र तासमै अशुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान । काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान संकलेसरूप चारित्र तासमै शुद्ध निमित्त अशुद्ध उपादान । काहू समै ज्ञानरूप ज्ञान

विशुद्ध रूप चारित्र तासमै शुद्ध निमित्त शुद्ध उपादान या भांति
 अन्य २ दशा जीवकी सदाकाल अनादिरूप, ताकौ व्यौरौ—जान
 रूप ज्ञानकी शुद्धता कहिए विशुद्धरूप चारित्रकी शुद्धता
 कहिए । अज्ञान रूप ज्ञानकी अशुद्धता कहिए संकेश रूप चारि-
 त्रकी अशुद्धता कहिये । अब ताकौ विचार सुनो—
 मिथ्यात्व अवस्था विषै काहू समै जीवको ज्ञान गुण जाण
 रूप है तब कहा जानतु है ? ऐसो जानतु है—कि लक्ष्मी
 पुत्र कलत्र इत्यादिक मौसौ न्यारे हैं प्रत्यक्ष प्रमाण । हौं
 मरुंगो ए इहां ही रहैंगे सो जान तु है । अथवा ए जाहिंगे,
 हौं रहूंगो, कोई काल इन्हस्यौ मोहि एक दिन विजोग है
 ऐसो जानपनौ मिथ्यादृष्टीको होतु है सो तो शुद्धता क-
 हिए. परन्तु सम्यक् शुद्धता नाही गर्भितशुद्धता जब
 वस्तुकौ स्वरूप जानै तब सम्यक् शुद्धता सो ग्रंथिभेद विना
 होई नाही परंतु गर्भित शुद्धता सौ भी अकाम निर्जरा है
 वाही जीवको काहू समै ज्ञान गुण अज्ञान रूप है गहलरूप,
 ताकरि केवल बंध है. याही भांति मिथ्यात्व अवस्था
 विषै काहू समै चारित्र गुण विशुद्धरूप है तातैं चारित्रावर्ण
 कर्म मंद है । ता मंदताकरि निर्जरा है । काहूसमै चारित्र
 गुण संकलेशरूप है तातैं केवल तीव्रबंध है । या भांति
 करि मिथ्या अवस्थाविषै जासमै जानरूप ज्ञान है और विशु-
 तारूप चारित्र है ता समै निर्जरा है । जा समै अज्ञानरूप

ज्ञान है संकलेश रूप चारित्र है तासमें बंध है तामें विशेष इतनौ जु अल्प निर्जरा बहु बंध, तातैं मिथ्यात अवस्थाविषै केवल बन्ध कह्यो । अल्पकी अपेक्षा जैसैं—काहू पुरुषकौ नफो थोड़ो टोटो बहुत सो पुरुष टोटाउ ही कहिए । परंतु बंध निर्जरा विना जीव काहू अवस्थाविषै नाही । दृष्टान्त ऐसो—जु विशुद्धताकरि निर्जरा न होती तौ एकेन्द्री जीव निगोद अवस्थास्यौ व्यवहारराशि कौनके बल आवतौ? उहां तौ ज्ञान गुन अज्ञानरूप गहलरूप है अबुद्धरूप है तातैं ज्ञानगुनको तौ बल नाहीं । विशुद्धरूप चारित्रके बलकरि जीव व्यवहार राशि चढतु है । जीवद्रव्यविषै कषाहकी मंदता होतु है ताकरि निर्जरा होतु है । वाही मंदता प्रमान शुद्धता जाननी । अब और भी विस्तार सुनो—

जानपनौ ज्ञानको अरु विशुद्धता चारित्रकी दोऊ मोक्षमार्गानुसारी है तातैं दोऊविषै विशुद्धता माननी । परन्तु विशेष इतनौ जु गर्भित शुद्धता प्रगट शुद्धता नाहीं । इन दुहं गुणकी गर्भित शुद्धता जबताई अंधिमेद होय नाहीं तबताई मोक्षमार्ग न सधै । परन्तु ऊरधताको करहि अवश्य करि ही । ए दोऊ गुणकी गर्भित शुद्धता जब अंधिमेद होइ तब इन दुहंकी शिखा फूटै तब दोऊ गुन धाराप्रवाहरूप मोक्षमार्गकौ चलहि । ज्ञानगुनकी शुद्धताकरि ज्ञान गुण निर्मल होहि । चारित्र गुणकी शुद्धता करि चारित्र गुण निर्मल होइ । वह केवल ज्ञानको अंकूर, वह जथाख्यातचारित्रको अंकूर ।

इहां कोऊ उटंकना करतु है,—कि तुम कह्यो जु ज्ञानको जाणपनौ अरु चारित्रकी विशुद्धता दुहुंस्यो निर्जरा है सु ज्ञानके जाणपनौ सो निर्जरा यह हम मानी । चारित्रकी विशुद्धतासों निर्जरा कैसे? यह हम नहीं समुझी—ताको समाधान,—

सुनि भैया ! विशुद्धता थिरतारूप परिणामसों कहिये सो थिरता जथाख्यातको अंश है तातैं विशुद्धतामें शुद्धता आई ॥ भी वह उटंकनावारो बोल्यौ—तुम विशुद्धतासों निर्जरा कही, हम कहतु है कि विशुद्धतासों निर्जरा नहीं शुभवन्ध है—ताको सामाधान,—कि सुन भैया यह तौ तू सांचो. विशुद्धतासों शुभवन्ध, संक्लेशतासों अशुभवन्ध, यह तो हम भी मानी परन्तु और भेद यामैं है सो सुनि—अशुभपद्धति अधोगतिको परणमन है शुभपद्धति उर्द्धगतिको परनमन है तातैं अधोरूपसंसार उर्द्धरूप मोक्षस्थान पकरि, शुद्धता वामैं आई मानि मानि, यामैं धोलौ नहीं है । विशुद्धता सदा काल मोक्षको मार्ग है परन्तु ग्रन्थभेद विना शुद्धताको जोर चलत नाहीनै? जैसे कोऊ पुरुष नदीमें डुबक मारै फिर जब उछलै तब दैवजोगसों ऊपर ता पुरुषकै नौका आय जाय तौ यद्यपि तारु पुरुष है तथापि कौन भांति निकलै? वाको जोर चलै नाहि, बहुतेरा कलबल करै पै कछु बसाइ नाही, तैसें विशुद्धताकी भी ऊर्द्धता जाननी । ता वास्तै गर्भित शुद्धता कही । वह गर्भित शुद्धता ग्रंथिभेद भये मोक्षमार्गको चली । अपने स्वभाव

करि वर्द्धमानरूप भई तब पूर्ण जथाख्यात प्रगट कहायो ।
विशुद्धताकी जु ऊर्द्धता वहै बाकी शुद्धता ।

और सुनि जहां मोक्षमार्ग साध्यौ तहां कबौ कि 'सम्य-
भर्द्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' और यौ भी कबौ कि
"ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः" ताको विचार-चतुर्थ गुणस्थानकस्युं
लेकरि चतुर्दशम गुणस्थानकपर्यन्त मोक्षमार्ग कबौ ताको
व्यौरौ, सम्यक् रूप ज्ञानधारा विशुद्धरूप चारित्रधारा दोऊ
धारा मोक्षमार्गको चली सु ज्ञानसौं ज्ञानकी शुद्धता क्रियासौं
क्रियाकी शुद्धता । जो विशुद्धतामें शुद्धता है तौ जथाख्यात
रूप होत है । जो विशुद्धतामें ता न होती तौ ज्ञान गुण
शुद्ध होतो क्रिया अशुद्ध रहती केवली विषै, सो यौ तौ
नहीं वामें शुद्धता हती ताकरि विशुद्धता भई । इहां कोई
कहेगो कि ज्ञानकी शुद्धताकरि क्रिया शुद्ध भई सो यौ
नाहीं । कोऊ गुण काहू गुणके सारै नहीं सब असहाय रूप
है । और भी सुनि जो क्रियापद्धति सर्वथा अशुद्ध होती
तौ अशुद्धताकी एती शक्ति नाहीं जु मोक्षमार्गको चलै तातैं
विशुद्धतामें जथाख्यातको अंश है तातैं वह अंश क्रम क्रम
पूरण भयौ । ए भइया उटकनावारे—तैं विशुद्धतामें शुद्धता
मानी कि नाहीं । जो तौ तैं मानी तौ कछु और कहिवेकौ
कार्य नाहीं । जो तैं नाहीं मानी तौ तेरौ द्रव्य याहीभांतिकौ
परनयौ है हम कहा करि हैं जो मानी तौ स्यावासि । यह
तौ द्रव्याश्रिककी चौमंगी पूरन भई ।

निमित्त उपादान शुद्ध अशुद्धरूप विचार—

अत्र पर्यायार्थिककी चौभंगी मुनौ एक तौ वक्ता अज्ञानी; श्रोता भी अज्ञानी, सो तौ निमित्त भी अशुद्ध उपादान भी अशुद्ध । दूसरो वक्ता अज्ञानी श्रोता ज्ञानी सो निमित्त अशुद्ध और उपादान शुद्ध । तीसरो वक्ता ज्ञानी श्रोता अज्ञानी सो निमित्त शुद्ध उपादान अशुद्ध । चौथो—वक्ता ज्ञानी श्रोता भी ज्ञानी सो तो निमित्त भी शुद्ध २ उपादान भी शुद्ध । यह पर्यायार्थिककी चौभंगी साखी ।

इति निमित्तउपादान शुद्धाशुद्धरूपविचार वचनिका.

अथ निमित्तउपादानके दोहे लिख्यते ।

दोहा ।

गुरुउपदेश निमित्त विन, उपादानबलहीन ।

ज्यों नर दूजे पांव विन, चलवेको आधीन ॥ १ ॥

हौं जानै था एक ही, उपादानसों काज ।

थकै सहाई पौन विन, पानीमाहिं जहाज ॥ २ ॥

दोनों दोहोंका उत्तर,

ज्ञान नैन किरिया चरन, दोऊ शिवमगधार ।

उपादान निहचै जहाँ, तहँ निमित्त ब्योहार ॥ ३ ॥

उपादान निज गुण जहाँ, तहँ निमित्त पर होय ।

भेद ज्ञान परवान विधि, विरला बूझै कोय ॥ ४ ॥

उपादान बल जहँ तहाँ; नहिँ निमित्तको दाव ।

एक चक्रसौँ रथ; चलै, रविको यहै स्वभाव ॥ ५ ॥

सधै वस्तु असहाय जहँ, तहँ निमित्त है कोन ।

ज्यों जहान परवाहमें, तिरै सहज बिन पौन ॥ ६ ॥

उपादान विधि निरवचन, है निमित्त उपदेस ।

वसै जु जैसे देशमें, करै खु तैसे मेस ॥ ७ ॥

इति निमित्त उपादानके दोहे.

अथ अध्यात्मपदपंक्ति लिख्यते.

(१)

राग भैरव

या चेतनकी सब सुधि गई ।

व्यापत मोहि विकलता भई, या चेतनकी० टेक
है जडरूप अपावन देह ।

तासौँ राखै परमसनेह, या चेतनकी० ॥ १ ॥

आइ मिले जन स्वारथबंध ।

तिनहिँ कुरंग कहै जा बंध ॥

आप अकेला जनमै मरै ।

सकल लोककी भमता धरै, या चेतनकी० ॥ २ ॥

१ इस रागमेंसे टेक निकाल दी जावे तो खासी १५ मात्राकी चौपाई हो जाती है ।

होत विभूति दानके दिये ।

यह परपंच विचारै हिये ।

भरमत फिरै न पावइ ठौर ।

ठानै मूढ औरकी और, या चेतनकी० ॥ ३ ॥

बंध हेतको करै जुखेद ।

जानै नहीं मोक्षको भेद ।

मिटै सहज संसार निवास ।

तब सुख लहै बनारसिदास, या चेतनकी० ॥ ४ ॥

(२)

राग रामकली—

चेतन तू तिहुकाल अकेला,

नदी नावसंजोग मिलै ज्यों, त्यों कुटंबका मेला, चेतन० ॥ टेक ॥

यह संसार असार रूप सब, ज्यों पटपेखन खेला ।

सुखसंपति शरीर जलबुदबुद, विनशत नाहीं बेला, चेतन० ॥ १ ॥

मोहमगन आतमगुन भूलत, परी तोहि गलजेला ।

मै मैं करत चहुं गति डोलत, बोलत जैसें छेला, चेतन० ॥ २ ॥

कहत बनारसि मिथ्यामत तज, होय सुगुरुका चेला ।

तास वचन परतीत आन जिय, होइ सहज सुरझेला, चेतन० ॥ ३ ॥

(३) .

राग रामकली ।

मगन है आराधो साधो ! अलख पुरुष प्रभु ऐसा ॥ टेक ॥
 जहाँ जहाँ जिस रससौं राचै, तहाँ तहाँ तिस भेसा, मगन० ॥ १ ॥
 सहजप्रवान प्रवान रूपमें, संसैमें संसेसा ।
 धरै चपलता चपल कहावै, लै विधानमें लै सा, मगन० ॥ २ ॥
 उद्यम करत उद्यमी कहिये, उदयसरूप उदै सा ।
 व्यवहारी व्यवहार करममें, निहचैमें निहचै सा, मगन० ॥ ३ ॥
 पूरण दशा धरै संपूरण, नय विचारमें तैसा ।
 दरवित सदा अखै सुखसागर, भावित उत्पति खैसा, मगन० ४ ॥
 नाहीं कहत होइ नाहीं सा, है कहिये तौ है सा ।
 एक अनेक रूप है वरता, कहौ कहाँ लौं कैसा, मगन० ॥ ५ ॥
 वह अपार ज्यों रतन अमोलक, बुधि दिवेक ज्यों पैसा ।
 कल्पित वचन विलास 'बनारसि' वह जैसेका तैसा, मगन० ॥ ६ ॥

(४)

दोहा—

जिनप्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागम माहिं ।
 पै जाके दूषण लगै, बंदनीक सो नाहिं ॥ १ ॥
 भेटी मुद्रा अवधिसों, कुमती कियो कुदेव ।
 विघन अंग जिनविबकी, तजै समकित्ती सेव ॥ २ ॥

(५)

राग विलावल ।

इहि विधि देव अदेवकी, मुद्रा लखलीजे,
 गुन लच्छन पहिचानकै, पद पूजा कीजै ॥ टेक ॥
 पट भूषन पहरे रहै, प्रतिमा जो कोई ।
 सो गृहस्थ मायामयी, मुनिराज न होई ॥ २ ॥
 जाके तिय संगति नहीं, नहीं वसन न भूषन ।
 सो छवि है सर्वज्ञकी, निर्मल निरदूषन ॥ ३ ॥
 वाम अंग जाके त्रिया, अथवा अरधंगी ।
 सो तो प्रगट कुदेव है, विषयी रसरंगी ॥ ४ ॥
 निरद्वंदी निरपरिगृही, जोगासन ध्यानी ।
 सो है मूर्ति सिद्धकी, कै केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
 जो प्रचंड आयुध लिये, कर ऊरध बाह ।
 प्रगट विनोदी देवता, मारैगा काह ॥ ६ ॥
 जो न कछू करनी करै, नहीं आयुध पानी ।
 सो प्रतिमा भगवंतकी, निरवैर निशानी ॥ ७ ॥
 जो पशुरूपी पशुमुखी, पशुवाहनधारी ।
 ते सब असुर अवंदनी, निरदय संसारी ॥ ८ ॥

(६)

राग विलावल ।

ऐसैं क्यों प्रभु पाइये, सुन मूरख प्राणी ।

जैसैं निरख मरीचिका, मृग मानत पानी । ऐसैं ० ॥ १ ॥

ज्यों पकवान चुँरैलका, विषयारस त्यों ही ।
 ताके लालच तू फिरै, भ्रम भूलत यों ही, ऐसैं० ॥ २ ॥
 देह अपावन खेटकी, अपनी करि मानी ।
 भाषा मनसा करमकी, तैं निजकर जानी । ऐसैं० ॥ ३ ॥
 नाव कहावति लोककी, सो तौ नहिं भूलै ।
 जाति जगतकी कल्पना, तामैं तू झूलै । ऐसैं० ॥ ४ ॥
 माटी भूमि पद्धारकी, तुह संपति सूझै ।
 प्रगट पहेंली मोहकी, तू तऊ न बूझै । ऐसैं० ॥ ५ ॥
 तैं कबहु निज गुनविषै, निजदृष्टि न दीनी ।
 पराधीन परवस्तुसों, अपनायत कीनी, ऐसैं० ॥ ६ ॥
 ज्यों सृगताभि सुवास सों, द्वंद्वत बन दौरै ।
 त्यों तुझमें तेरा घनी, तू खोजत औरै, ऐसैं० ॥ ७ ॥
 कतता भरता भोगता, घट सो घटमाहीं ।
 ज्ञान बिना सदगुरु बिना, तू समुझत नाहीं । ऐसैं० ॥ ८ ॥

(७)

राग विलावल ।

ऐसैं यों प्रसु पाइये, सुन पंडित प्रानी ।
 ज्यों मथि माखन काढिये, दधि मेलि मथानी, ऐसैं० ॥ १ ॥
 ज्यों रसलीन रसायनी, रसरीति अराधै ।
 त्यों घटमें परमारथी, परमारथ साधै, ऐसैं० ॥ २ ॥

जैसे वैद्य विधा लहै, गुण दोष विचारै ।

तैसे पंडित पिंडकी, रचना निरवारै, ऐसैं० ॥ ३ ॥

पिंडस्वरूप अचेत है, प्रभुरूप न कोई ।

जानै मानै राम रहै, घट व्यापक सोई, ऐसैं० ॥ ४ ॥

चेतन लच्छन है धनी, जड़ लच्छन काया ।

चंचल लच्छन चित्त है, अम लच्छन माया, ऐसैं० ॥ ५ ॥

लच्छन भेद विलेच्छको, सु विलच्छन वेदै ।

सत्तसरूप हिये धरै, अमरूप उछेदै, ऐसैं० ॥ ६ ॥

ज्यों रजसोयै न्यारिया, धन सौ मनकी लै ।

त्यों मुनिकर्म विपाकमें, अपने रस झीलै, ऐसैं० ॥ ७ ॥

आप लखै जव आपको, दुविधापद भेटै ।

सेवक साहिव एक है, तव को किहि भेटै? ऐसैं० ॥ ८ ॥

(८)

राग आसावरी ।

तू आत्म गुन जानि रे जानि,

साधु वचन मनि आनि रे आनि, तू आत्म० ॥ १ ॥

भरत चक्रपति षटखंड साधि,

भावना भावति लही समाधि, तू आत्म० ॥ २ ॥

प्रसनचंद्ररिषि भयो सरोष,

मन फेरत फिर पायो मोष, तू आत्म० ॥ ३ ॥

रावन समक्षित भयो उदोत,
 तव वांघ्यो तीर्थकर गोत, तू आत्म० ॥ ४ ॥
 सुकल ध्यान धरि गयो सुकुमाल,
 पहुँच्यो पंचमगति तिहँ काल, तू आत्म० ॥ ५ ॥
 दिढ प्रहारकरि हिंसाचार,
 गये मुक्ति निजगुण अवधार, तू आत्म० ॥ ६ ॥
 देखहु परतछ भृंगी ध्यान,
 करत कीट भयो ताहि समान, तू आत्म० ॥ ७ ॥
 कहत 'वनारसि' वारंवार,
 और न तोहि छुड़ावनहार, तू आत्म० ॥ ८ ॥

(९)

राग आसावरी ।

रे मन ! कर सदा सन्तोष,
 जातैं मिटत सब दुखदोष, रे मन० ॥ १ ॥
 बढत परिगृह मोह वाढत, अधिक तृषना होति ।
 बहुत इंधन जरत जैसैं, अगनि ऊंची जोति, रे मन ॥ २ ॥
 लोभ लालच सूढजनसो, कहत कंचन दान ।
 फिरत आरत नहिं विचारत, धरम धनकी हान, रे मन० ॥ ३ ॥
 नारकिनके पाइ सेवत, सकुच मानत संक ।
 ज्ञानकरि वृक्ष 'वनारसि' को नृपति को रंक, रे मन० ॥ ४ ॥

(१०)

राग, बरवा ।

बालम तुहुं तन चितवन गागरि फूटि ।

अँचरा गौ फहराय सरम गै छूटि, बालम ॥ १ ॥

हं तिक रहं जे सजनी रजनी घोर ।

घर करकेउ न आनै चहुदिसि चोर, वा० ॥ २ ॥

पिउ सुधियावत वनमें पैसिउ पेलि ।

छाडउ राज डगरिया भयउ अकेलि, वा० ॥ ३ ॥

संवरौ सारदसामिनि औ गुरु भान ।

कछु बलमा परमारथ करौ बखान, वा० ॥ ४ ॥

काय नगरिया भीतर चेतन भूप ।

करम लेप लिपटा बल ज्योति स्वरूप, वा० ॥ ५ ॥

दर्शन ज्ञान चरणमय चेतन सोय ।

पियरा गरुब सचीकन कंचन होय, वा० ॥ ६ ॥

चेतन चित अवधार सुगुरु उपदेश ।

कछु इक जागलि ज्योति ज्ञान गुन लेस, वा० ॥ ७ ॥

अथिररूप सब देखिसि छिन वैराग ।

चेतन आपुहि आप बुझावै लाग, वा० ॥ ८ ॥

चेतन तुहु जनि सोवहु नींद अघोर ।

चार चौर घर मूसहि सरबस तोर, वा० ॥ ९ ॥

चेतन तुहुं बनसावज कोलकिरात ।

निसिदिन करै अहेर अचानक बात, वा० ॥ १० ॥

चेतनहो तुहं चेतहु परम पुनीत ।
 तजहु कनक अरु कामिनि होहु नचीत ॥ ११ ॥
 परेहु करमवस चेतन ज्यों नटकीस ।
 कौउ न तोर सहाय छाडि जगदीस ॥ १२ ॥
 चेतन वृझि विचार धरहु सन्तोष ।
 राग दोष दुइ बंधन छूटत मोष ॥ १३ ॥
 मोहजालमें चेतन सब जग जानि ।
 तुहु कुबाज तुहु बाझहु सकत भुलान ॥ १४ ॥
 चेतन भयेहु अचेतन संगति पाय ।
 चकमकमें आगी देखी नहिं जाय ॥ १५ ॥
 चेतन तुहि लपटात प्रेमरस फांद ।
 जस राखल धन तोपि विमलनिशिचांद ॥ १६ ॥
 चेतन तोहि न भूल नरक दुख वास ।
 अगनि श्रम तरुसरिता करवत पास ॥ १७ ॥
 चेतन जो तुहि तिरजग जोनि फिराउ ।
 बांध पांच ठग वेग तोर अब दाउ ॥ १८ ॥
 देवजोनि सुख चेतन सुरग बसेर ।
 ज्यों बिन नीव घौरहर खसत न वेर ॥ १९ ॥
 चेतन नर तन पाय बोध नहिं तोहि ।
 पुनि तुहु का गति होइहि अचरज मोहि ॥ २० ॥
 आदि निगोद निकेतन चेतन तोर ।
 भव अनेक फिरि आयेहु कतहु न ओर ॥ २१ ॥

विषय महारस चेतन विष समतूल,
 छाडहु वेगि विचारि पापतरुमूल ॥ २२ ॥
 गरभवास तुहुं चेतन ऊरध पांव,
 सो दुख देख विचार धरमचित लाव ॥ २३ ॥
 चेतन यह भवसागर धरम जिहाज,
 तिह चढ वैठो छोड लोककी लाज ॥ २४ ॥
 दह या दुहु अव चेतन होहु उचाट,
 कह या जाउ मुक्तिपुरि संजम वाट ॥ २५ ॥
 उधवागाय सुनायेहु चेतन चेत,
 कहत बनारसि थान नरोत्तम हेत ॥ २६ ॥

(११)

राग धनाश्री ।

चेतन उलटी चाल चले, जड़संगततैं जड़ता व्यापी निज
 गुन सकल टले, चेतन० टेक ॥ १ ॥ हितसों विरचि-
 ठगनिसों राचे, मोह पिसाच छले । हँसि हँसि फंद सवारि आ-
 प ही, मेलत आप गले, चेतन० ॥ २ ॥ आये निकसि निगोद
 सिंधुतें, फिर तिह पंथ टले । कैसैं परगट होय आग जो
 दवी पहारतले, चेतन० ॥ ३ ॥ भूले भवभ्रम वीचि बनारसि'
 तुम सुरज्ञान मले । धर शुभध्यान ज्ञाननौका चढि, वैठे ते
 निकले, चेतन० ॥ ४ ॥

(१२)

पुनः राग धनाश्री ।

चेतन तोहि न नेक संभार, नख सिखलें दिढबंधन बेदे

कौन करै निरवार, चेतन० ॥ १ ॥ जैसे आग पपान काठमें
लखिय न परत लुगार। मदिरापान करत मतवारो, ताहि न कछू
विचार, चेतन० ॥ २ ॥ ज्यों गजराज पखार आप तन, आ-
प हि डारत छार। आप हि उगलि पाटको कीरी, तनहिं ल-
पेटत तार, चेतन० ॥ ३ ॥ सहज कबूतर लोटनको सो, खु-
लै न पेच अपार। और उपाय न वनै 'वनारसि' सुमरन म-
जन आधार, चेतन० ॥ ४ ॥

(१३)

राग सारंग।

दुविधा कब जै है या मनकी दु०। कब निजनाथ निरंजन
सुमिरौ, तज सेवा जन जनकी, दुविधा० ॥ १ ॥ कब रुचि-
सौं पीवै दृगचातक, वृंद अखयपद धनकी। कब शुमध्यान,
घरौ समता गहि, करूं न ममता तनकी, दुविधा० ॥ २ ॥
कब घट अंतर रहै निरन्तर, दिढता सुगुरु वचनकी। कब
सुख लहाँ भेद परमारथ, मिटै धारना धनकी, दुविधा० ॥ ३ ॥
कब घर छाँड़ होहुं एकाकी, लिये लालसा वनकी। ऐसी दशा
होय कब मेरी, हौं वलिवलि वा छनकी, दुविधा० ॥ ४ ॥

(१४)

राग सारंग।

हम बैठे अपनी मौनसौं। दिन दशके महिमान जगत जन

१ रेखामका कीड़ा गलेके नीचेसे तार निकाल कर उससे अपने
शरीरके चारों ओर कोशा बनाकर आप बन्द हो जाता है।

बोलि विगारैं कौनसौं, हम बैठे० ॥ १ ॥ गये विलाय भरमके
बादर, परमारथपथपौनसौं । अब अंतरगति भई हमारी,
परचे राधारौनसौं, हम बैठे० ॥ २ ॥ प्रघटी सुधापानकी
महिमा, मन नहिं लागै वैनसौं । छिन न सुहायँ और रस
फ्रीके, रुचि साहिवके लैनसौं, हम बैठे० ॥ ३ ॥ रहे अघाय
पाय सुखसंपति को निकसै निज मौनसौं । सहज भाव सदगु-
रुकी संगति, सुरझै आवागौनसौं, हम बैठे० ॥ ४ ॥

(१५)

राग सारंग वृंदावनी ।

जगतमें सो देवनको देव । जासु चरन परसैं इन्द्रादिक
होय मुक्ति स्वयमेव, जगतमें० ॥ १ ॥ जो न छुधित न तृपित
न भयाकुल, इन्द्रीविषय न वेव । जनम न होय जरा नहिं
व्यापै, मिटी मरनकी टेव, जगतमें० ॥ २ ॥ जाकै नहिं वि-
षाद नहिं विस्मय । नहिं आठों अहमेवैं । राग विरोध मोह
नहिं जाकै, नहिं निद्रा परसेवैं, जगतमें० ॥ ३ ॥ नहिं तन
रोग न श्रम नहिं चिंता, दोष अठारह भेव । मिटे सहज जाके
ता-प्रभुकी, करत 'वनारसि' सेव, जगतमें० ॥ ४ ॥

(१६)

धुनः राग सारंग वृंदावनी ।

विराजै रामायण घटमाहि । मरमी होय मरम सो जानै,

१ खानुभवहूपी राधारमणसे. २ वमन-छदि. ३ अष्टप्रमाद.

४ पसेव-पसीना.

मूरख मानै नाहि, विराजै रामायण० ॥१॥ आतम राम ज्ञान
गुन लछमन सीता सुमति समेत । शुभपयोग वानरदल
मंडित, वर विवेक रणखेत, विराजै० ॥ २ ॥ ध्यान धनुष
टंकार शोर सुनि, गई विषयदिति^१ माग । भई भस्म मिथ्या-
मत लंका उठी धारणा आग, विराजै० ॥ ३ ॥ जरे अज्ञान
भाव राक्षसकुल, लरे निकांछित सूर । जूझे रागद्वेष से-
नापति संसै गढ़ चक्रचूर, विराजै० ॥४॥ विलखत कुंभकरण
भवविभ्रम, पुलकित मन दरयाव । थकित उदार वीर महि-
रावण, सेतुबंध सममाव, विराजै० ॥ ५ ॥ मूर्छित मंदो-
दरी दुराशां, सजग चरन हनुमान । घटी चतुर्गति पर-
णति सेना, छुटे छपकगुण वान, विराजै० ॥ ६ ॥
निरखि सकति गुन चक्रसुदर्शन उदय विभीषण दीन ।
फिरै कबंध मही रावणकी, प्राणभाव शिरहीन, विराजै०
॥ ७ ॥ इह विधि सकल साधुघटअंतर, होय सहज सं-
ग्राम, यह विवहारदृष्टि रामायण, केवल निश्चय राम,
विराजै० ॥ ८ ॥

(१७)

आलाप, दोहा ।

जो दातार दयाल है, देय दीनको भीख ।

त्यों गुरु कौमल भावसौं, कहै मूढको सीख ॥ १ ॥

१ सूर्यनखा राक्षसी. २ सम्यक्चारित्र.

सुगुरु उचारै मूढसौं, चेत चेत चित चेत ।

समुझ समुझ गुरुको शब्द, यह तेरो हित हेत ॥ २ ॥

शुक सारी समुझैं शब्द, समुझि न भूलहि रंच ।

तू मूरति नारायणी, वे तो खग तिरजंच ॥ ३ ॥

होय जोंहरी जगतमें, घटकी आखें खोलि ।

तुला सँवार विवेककी, शब्द जवाहिर तोलि ॥ ४ ॥

शब्द जवाहिर शब्द गुरु, शब्द ब्रह्मको खोज ।

सब गुण गर्भित शब्दमें, समुझ शब्दकी चोर्न ॥ ५ ॥

समुझ सकै तो समुझ अब, है दुर्लभ नर देह ।

फिर यह संगति कब मिलै, तू चातक हों मेह ॥ ६ ॥

(१८)

राग गौरी ।

भौंदू भाई ! समुझ शब्द यह मेरा, जो तू देखै इन आँखि-
नसौं तामैं कछू न तेरा, भौंदू० ॥ १ ॥ ए आँखें भ्रमहीसां

उपजीं, भ्रमहीके रस पागी । जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको
भ्रम, तू इनहीको रागी, भौंदू भाई० ॥ २ ॥ ए आँखें दोट

रची चामकी, चाम हि चाम विलोवै । ताकी ओट मोह
निद्रा जुत, सुपनरूप तू जोवै, भौंदू भाई० ॥ ३ ॥ इन आँ-

खिनकौ कौन भरोसो, ए विनसैं छिन माहीं । है इनको पुदगलसों
परचै, तू तो पुदल नाहीं, भौंदू भाई० ॥ ४ ॥ पराधीन बल

इन आँखिनको, विनु परकाश न सझै । सो परकाश अगनि

रवि शशिको, तू अपनों कर बूझै, मौदू भाई० ॥ ५ ॥ खुले
पलक ए कलुहक देखहिं, मुदे पलक नहिं सोऊ । कवहुं जाहिं
होहिं फिर कवहुं, आमक आँखें दोऊ, मौदू भाई० ॥ ६ ॥
जंगमकाय पाय ए प्रगटै, नहिं आवरके साथी । तू तो इन्हें
मान अपने दग, भयो भीमको हाथी, मौदू भाई० ॥ ७ ॥
तेरे दग मुद्रित घट अंतर, अन्धहृष तू डोलै । कै तो सहज
खुलै वे आँखें, कै गुरु संगति खोलै, मौदू भाई ! समुझ अवद
यह मेरा ॥ ८ ॥

(१९)

राग गौरी ।

मौदू भाई ते हिरदै की आँखें, जे करपै अपनी सुख
संपति अमकी संपति नाखें, मौदू भाई० ॥ १ ॥ जे आँखें
अमृतरस वरखैं, परखैं केवलिवानी । जिन्ह आँखिन बिलोक
परमारत्र, होहिं कुतारय प्रानी, मौदू भाई० ॥ २ ॥ जिन आं-
खिनहिं दशा केवलकी, कर्मलेप नहिं लागै । जिन आँखिनके
प्रगट होत घट, अलख निरंजन जागै, मौदू भाई० ॥ ३ ॥
जिन आँखिनसौं निरखि भेद गुन; ज्ञानी ज्ञान विचारै । जिन
आँखिनसौं लखिस्वरूप मुनि, ध्यानधारणा धारै, मौदू भाई०
॥ ४ ॥ जिन आँखिनके जगे जगतके, लगे काज सब झूठें ।
जिनसौं गमन होइ शिवसनमुख, विषय विकार अपूठे, मौदू
भाई० ॥ ५ ॥ जिन आँखिनमें प्रसा परमकी, परसहाय नहिं

लेखै । जे समाधिसौं लखै अखंडित, ठकै न पलक निमेषै,
भौंदू भाई० ॥६॥ जिन आंखिनकी ज्योति प्रगटकैं, इन आं-
खिनमें भासै । तब इनहूकी मिटै विपमता, समता रस पर
गासै, भौंदू भाई० ॥ ७ ॥ जे आंखैं पूरनस्वरूप धरि, लोका-
लोक लखावै । ए वे यह वह सब विकल्प तजि, निरविकल्प
पदपावै, भौंदू भाई० ॥ ८ ॥

(२०)

राग काफी ।

तू अम भूल ना रे प्राणी, तू० टेक । धर्म वितारि विषयमुख
सेवत, वे मति हीन अज्ञानी, तू अम० ॥ १ ॥ तन धन सुत
जन जीवन जोवन, डाम अनी ज्यों पानी, तू अम० ॥ २ ॥
देख दगा परतच्छ 'वनारसि' ना कर होड़ विरानी, तू
अम० ॥ ३ ॥

(२१)

पुनः राग काफी ।

चिन्तामन स्वामी सांचा साहिब मेरा, शोक हरै तिहुं लो-
कको, उठ लीजतु नाम सवेरा, चिन्तामन० ॥ १ ॥ सूरसमान
उदोत है, जग तेज प्रताप घनेरा । देखत मूरत भावसौं, मिट जात
मिथ्यात अंधेरा, चिन्तामन स्वामी० ॥ २ ॥ दीनदयाल नि-
वारिये, दुख संकट जोनि वसेरा । मोहि अभयपद दीजिये, फिर
होय नहीं भवफेरा, चिन्तामन० ॥ ३ ॥ विंव विराजत आगरे,

थिर थान थयो शुभवेरा । ध्यान धैर विनती करै, वानारसि
बंदा तेरा, चिन्तामनं० ॥ ४ ॥

इति अध्यातमपदपंक्ति ।

अथ परमारथहिंडोलना लिख्यते ।

सहज हिंडना हरख हिंडोलना, झुलत चेतनराव ।
जहाँ धर्म कर्म सँजोग उपजत, रस स्वभाव विभाव ॥ टेक ॥
जहाँ सुमनरूप अनूप मंदिर, सुरचि भूमि सुरंग ।
तहाँ ज्ञान दर्शन खंभ अविचल, चरन आड अमंग ॥
मरुवा सुगुन परजाय विचरन, मौर विमल विवेक ।
व्यवहार निश्चय नय सुदंडी, सुमति पटली एक । सहज० ॥ १ ॥
पट कील जहां पडद्रव्य निर्णय, अभय अंग अडोल ।
उद्यम उदय मिलि देहिं झोटा, शुभ अशुभ कछोल ॥
संवेग संवर निकट सेवक, विरत वीरे देत ।
आनंदकंद सुखंद साहिव, सुख समाधि समेत, सहजहिं ॥ २ ॥
जहाँ खिपक उपशम चमर ढारइ, धर्म ध्यान वजीर ।
आगम अध्यातम अंगरक्षक, शान्तरस वरवीर ॥
गुनथान विधि दश चार विद्या, शक्तिनिधिविस्तार ।
संतोष मित्र खवास धीरज, सुजस खिजमतगार, सहज ॥ ३ ॥
धारना समिता क्षमा करुणा, चारसखि चहुँ ओर ।
निर्जरा दोरु चतुरदासी, करहिं खिजमत जोर ॥

जहँ विनय मिलि सातों सुहागनि, करत धुनि झनकार ।
 गुरुबचनराग सिद्धान्तधुरपद, ताल अरथ विचार, सहज० ॥४॥
 श्रद्धहन सांची मेघमाला, दाम गर्जत घोर ।
 उपदेश वर्षा अति मनोहर, भविक चातक मोर ॥
 अनुमृति दामनि दमक दीसै, शील शीत समीर ।
 तप भेद तपत उछेद परगट, भावरंगत चीर, सहज० ॥५॥
 कबहुं असंख प्रदेश पूरन, करत वस्तु समाल ।
 कबहुं विचारै कर्म प्रकृती, एकसौ अड़ताल ॥
 कबहुं अवंध अदीन अशरन, लखत आपहि आप ।
 कबहुं निरंजन नाथ मानत, करत सुमरन जाप, सहज० ॥६॥
 कबहुं गुनी गुन एक जानत, नियत नय निरधार ।
 कबहुं सुकरता करम किरिया, कहत विधि व्यवहार ॥
 कबहुं अनादि अनंत चिंतित, कबहुं करहि उपाधि ।
 कबहुं सु आतम गुणसँभारत, कबहुं सिद्ध समाधि, सहज० ॥७॥
 इहिभांति सहज हिंडोल झूलत, करत आतम काज ।
 भवतरनतारन दुखनिवारन, सकल मुनिसिरताज ॥
 जो नर विचच्छन सदयलच्छन, करत ज्ञानविलास ।
 करजोर भगति विशेष विधिसौं, नमत काशीदास ॥ ८ ॥

इति परमायहिंडोलना ।

अथ मलार तथा सोरठ राग ।

देखो भाई ! महाविकल संसारी, दुखित अनादि मोहके
 कारन, राग द्वेष अम भारी, देखो भाई महाविकल संसारी ॥ १ ॥
 हिसारंभ करत सुख समुझै, मृषा बोलि चतुराई । परधन हरत
 समर्थ कहावै, परिग्रह बढत बढाई, देखो भाई ॥ २ ॥ वचन
 राख काया दृढ राखै, मिटै न मनचपलाई । याँतै होत औरकी
 औरै, शुभ करनी दुखदाई, देखो भाई ॥ ३ ॥ जोगासन
 करि कर्म निरोधै, आतम दृष्टि न जागै । कथनी कथत महंत
 कहावै, ममता मूल न त्यागै, देखो भाई ॥ ४ ॥ आगम वेद
 सिद्धान्त पाठ सुनि, हिये आठमद आनै । जाति लाभ कुल
 बल तप विद्या, प्रमुता रूप बखानै, देखो भाई ॥ ५ ॥ जड-
 सौं राचि परमपद साधै, आतमशक्ति न सूझै । विना विवेक
 विचार दरबके, गुण परजाय न बूझै, देखो ॥ ६ ॥
 जसवाले जस सुनि संतोषै, तप वाले तन सोपै । गुनवाले
 परगुनको दोषै, मतवाले मत पोषै, देखो ॥ ७ ॥ गुरु
 उपदेश सहज उदयागति, मोहविकलता छूटै । कहत वना-
 रसि है करुनारसि, अलख अखय निधि छटै, देखो ॥ ८ ॥

इत्यष्टपदी मल्हार सम्पूर्ण ।

तीननये पद जो हमने संग्रह किये हैं.

नयापद १ ला

मूलन, वेटा जायोरे साधो, मूलन० जाने खोजकुटुंब सब
खायोरे साधो० मूलन० ॥ टेक ॥ जन्मत माता ममता
खाई, मोहलोभ दोइ भाई । कामक्रोध दोइ काका खाये,
खाई तृषणादाई, साधो० ॥ १ ॥ पापीपापपरोसी खायो,
अशुभकरम दोइ मामा । मान नगरको राजा खायो, फैल परो-
सबगामा, साधो० ॥ २ ॥ दुर्मति दादी दादो,
मुखदेखत ही मूओ । मंगलाचार वधाये वाजे, जव यो बाल-
क हूओ, साधो० ॥ ३ ॥ नाम धरचो बालकको सूघो, रूप
वरन कलु नाहीं । नामधरते पांडे खाये, कहत बनारसि
भाई, साधो० ॥ ४ ॥

नयापद २ रा

राग जंगला.

वा दिनको कर सोचजिय! मनमें । वा दि० टेक ।

वनज किया व्यापारी तूने, टांडा लदा भारीरे । ओछी पूंजी
जूआ खेला, आखिर बाजी हारीरे ॥ आखिर बाजी हारी, करले
चलनेकी तय्यारी । इकदिन डेरा होयगा वनमें, वादिन० ॥ १ ॥
झूठे नैना उलफत बांधी, किसका सोना किसकी चांदी । इकदिन
पवन चलेगी आंधी, किसकी बीबी किसकी बांदी, नाहक चित्त
लगावै धनमें, वादिन० ॥ २ ॥ मिट्टीसेती मिट्टी मिलियौ,

१ इस रागके पदकर्मोंको हम समझ नहीं सके ।

पानीसे पानी । मूरखसेती मूरख मिलियौ, ज्ञानीसे ज्ञानी ।
यह मिट्टी है तेरे तनमें, वादिन० ॥ ३ ॥ कहत वनारसि
सुनि भवि प्राणी, यह पद है निरवानारे । जीवन मरन किया
सो नाही, सिरपर काला निशाना रे । सूझ पड़ेगी बुढापेपनमें,
वादिन० ॥ ४ ॥

नयापद ३ रा

कित गये पंच किसान हमारे । कित० ॥ टेक ॥
बोयो बीज खेत गयो निरफल, भर गये खाद पनारे । कपटी
लोगोंसे सांझाकर, ...हुए आप विचारे ॥ १ ॥ आप दिवाना
गह गह बैठो लिखलिख कागद डारे । वाकी निकसी पक्रे
मुकद्दम, पांचो होगये न्यारे ॥ २ ॥ रुकगयो कंठ शब्द नहिं
निकसत, हा हा कर्मसों हारे । वानारसि या नगर न वसि-
ये, चलगये सींचनहारे ॥ ३ ॥

वनारसीविलासके संग्रहकर्त्ता.

नगर आगरेमें अगरवाल आगरो जो,
गर्ग गोत आगरेमें नागर नवलसा ।
संघवी प्रसिद्ध अमैराज राजमान नीके,
पंच वाला नलनिमें भयो है कँवलसा ॥
ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संघइन
जाके जिनमारग बिराजत धवलसा ।

ताहीको सपूत जगजीवन सुदिढ जैन,
 वानारसी वैन जाके हियेमें सवलसा ॥ १ ॥

समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयो,
 ज्ञानिनकी मंडलीर्म जिसको विकास है ।
 तिननें विचार कीना नाटक बनारसीका,
 आपुके निहारिवेको आरसी प्रकाश है ॥

और काव्य घनी खरी करी है बनारसीने,
 सो भी क्रमसे एकत्र किये ज्ञान भास है ।
 ऐसी जानि एक ठौर, कीनी सब भाषा जोर,
 ताको नाम धरयो यो बनारसीविलास है ॥ २ ॥

दोहा ।

सत्रहसै एकोत्तरै, समय चैत्र सित पाख ।
 द्वितियामें पूरन भई, यह बनारसी भाख ॥ ३ ॥

इति श्रीकविवर बनारसीदासकृत बनारसी
 विलास समाप्त ।

